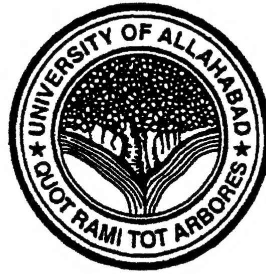
डॉ० धर्मवीर भारती का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0 फिल्0
उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध



निर्देशक
डॉ0 रूद्रदेव
एम0ए0, डी0फिल्0
रीडर, हिन्दी–विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोधकर्त्ता
अजय शुक्ल
एम0ए0 (हिन्दी), एम0एड0
हिन्दी–विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

हिन्दी–विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
2002

आमुख

डॉ0 धर्मवीर भारती का स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी साहित्य के इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान है। उन्होने साहित्य की लगभग सभी विधाओ–कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध, पत्रकारिता, आलोचना मे लिखा है। हिन्दी नवलेखन के समर्थ रचनाकार एवं प्रबुद्ध चितक के रूप में उनकी एक विशेष ख्याति रही है। छायावादोत्तर हिन्दी कविता के विकासक्रम में अज्ञेय ने अह के विस्तार, सौन्दर्य चेतना के प्रसार, सांस्कृतिक–बोध, भाषा और मनोविश्लेषण के विविध आयामों की गहन मीमांसा में और मुक्तिबोध ने यथार्थ के गहन–बोध, फंतामी की रचना और अपने समय की भयावह पीडा को व्यक्त करने की क्षमता में नए–नए प्रयोग किए थे। डॉ0 धर्मवीर भारती ने भी प्रयोग किए। उनके प्रयोग अपने समकालीन रचनाकारो अज्ञेय और मुक्तिबोध से मित्र है। सन् 1951 ई0 में प्रकाशित 'दूसरा–सप्तक' की भूमिका में डॉ0 धर्मवीर भारती की स्थापना है कि केवल परम्परा तोडने के लिए प्रयोग करना सार्थक नहीं है। जीवन की अनुभूतियॉ और विश्वास लिखने के लिए प्रेरित करें, तभी लेखन की सार्थकता है। इसीलिए डॉ0 भारती ने मानवीय चेतना के नये स्तरो के उद्भावना के लिए प्रयोग की आवश्यकता का अनुभव किया। उनके प्रयोग वस्तु एवं शिल्प की दृष्टि से अर्थ–गर्भपूर्ण है जिसमें परम्परागत लेखन से आगे परिवर्तित होते हुए समकालीन जीवन–सदर्भो में नए मूल्यों, नए भावबोधों और नए अभिव्यंजना–शिल्प को अन्वेषित करने का यत्न है। डॉ0 भारती के पास युगबोध और भावबोध, आस्था और संकल्प, संघर्ष और प्रगतिशील से समन्वित एक गहरी अन्तर्दृष्टि रही है, जो उनके कृतित्व में सर्वत्र परिलक्षित होती है। दूसरे शब्दों में कहा जाये तो अपने कृतित्व में भारती ने यथार्थ के धरातल पर जीवन की गहन संवेदात्मक लय को पहचानने की कोशिश की है। वे 'असाधारण अनुभूति को साधारण और साधारण को असाधारण' बना देने वाले अद्वितीय रचनाधर्मी थे।

डॉ0 भारती की काव्यरचना–प्रक्रिया एवं साहित्य चिंतन–दृष्टि जीवन जीने की प्रक्रिया की तरह सुख–दु ख, हर्ष–शोक, उल्लास–अवसाद को नैसर्गिक ढंग से समाहित किए हुए परिलक्षित होती है। परिणामत डॉ0 भारती अपनी रोमानी भावुकता और आधुनिकता दोनों

में सहज है। मूल्यो के सकट के बीच आस्था की खोज भारती की रचना-प्रक्रिया की स्पृहणीय उपलब्धि है-

"सुनो। मेरे मन हारो मत
दूर कहीं लोग जीवित है
यात्राये करते है, मजिल है उनकी।"

(सातगीत वर्ष-पृ0 65)

डॉ0 धर्मवीर भारती नई कविता के समर्थ रचनाकार एव चिंतक थे। नई कविता आधुनिकता बोध की कविता है जिसमे जीवन के वर्तमान की अनुभूति को ही गौरव मिला है। अत· डॉ0 भारती साहित्य मे आधुनिकता के पक्षधर है। आधुनिकता से उनका अभिप्राय सिर्फ काल प्रवाह नहीं, बल्कि जीवन में भोगी जाती वर्तमान जीवन की समस्याओं से है। वस्तुत आधुनिकता चितन की प्रक्रिया है जो अपने परिवेश-बोध, भाव-बोध और दार्शनिक बोध के कारण प्रसूत होती है। डॉ0 भारती ने इसके कारक तत्त्वों में विज्ञान की प्रगति, जनसंख्या की बढती हुई भीड और पूँजीवादी संस्कृति को दिया है। भारती ने आधुनिकता को 'संकट बोध' के रूप में विश्लेषित किया है। उनकी मान्यता है कि आधुनिकता पाश्चात्य प्रभाव है किन्तु आज विज्ञान की प्रगति ने मानव-नियति को एक कर दिया है। अत· उनके अनुसार इसे पूर्व और पश्चिम के चिंतन शिविरों में विभाजित नहीं करना चाहिए। डॉ0 भारती की आधुनिकता वर्तमान सदर्भो मे पूर्णता की खोज है। भारती का विचार है कि आधुनिकता का अर्थ केवल विघटन और विवशता का चित्र देना मात्र न होकर अनास्था और पीडा से गुजर कर आस्था की खोज करना है- 'अंधेरे में ज्योति की खोज।' डॉ0 भारती की काव्यरचानाओं और गद्यविधा की कृतियों मे रोमानीपन, भावुकता का आग्रह अवश्य दिखता है किन्तु उनमें समस्या के प्रति आधुनिकता की दृष्टि भी परिलक्षित होती है। युग की पीड़ा, विघटन, सत्रास, कुंठा आदि विकृतियों के चित्रण के बीच उनकी रचना-दृष्टि मानवतावादी एवं आस्था-विश्वास से सयुक्त है। अत भारती का मानवतावादी चिंतन जब बौद्धिकता की दृष्टि ग्रहण कर लेता है तो युग के व्यापक हित में मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा करता है ओर संभवतः इसी दृष्टि के कारण भारती की कविता चमत्कार-वैचित्र्य एवं दुरुहता की नकली

शब्दावलियाँ गढ़कर युग के पहरेदार होने के खोखले दावे नहीं करती अपितु वह रचना के दायित्त्व से युक्त होकर अनुभूति एद अभिव्यक्ति की सुगठित एव सार्थक प्रयोगान्विति है।

डॉ0 धर्मवीर भारती की काव्य रचनाओ एव गद्यलेखन मे रोमानीपन, भावुकता का आग्रह तथा युगीन समस्याओं के प्रति बौद्धिक दृष्टिकोण का विलक्षण सयोग परिलक्षित होता है। यही उनकी स्वतंत्र मौलिक काव्यरचना-प्रकृति एव चिंतनदृष्टि है। उन्होने अपनी काव्यकृतियों एवं गद्यलेखन मे मूल्य के धरातल पर व्यक्ति-स्वातन्त्र्य, विवेक और दायित्त्व को स्वीकारा है। वैयक्तिकता को वे मूल्यो के ग्रहण और विकास मे स्वचालित यत्न मानते थे जिसमें व्यक्ति-स्वातंत्र्य, विवेक और दायित्त्व का आतरिक विकासोन्मुख समन्वय विद्यमान है। ऐसे महान् रचनाकार एवं प्रबुद्ध चितक के व्यक्तित्त्व एव कृतित्त्व पर अपेक्षाकृत बहुत कम लिखा गया है। डॉ0 धर्मवीर भारती के जीवन एव कृतित्त्व से अधिकाश हिन्दी पाठक अवगत नहीं है। इसीलिए ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय को मैनें शोध-प्रबन्ध का विषय बनाया।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध को आठ अध्यायो में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय में डॉ0 धर्मवीर भारती के जीवनवृत्त-जन्मतिथि, माता-पिता, वंशवृक्ष, सम्मान आदि को विश्लेषित किया गया है। द्वितीय अध्याय में छायावादोत्तर परिदृश्य और डॉ0 भारती की रचनायात्रा का विवेचन है। तृतीय अध्याय में डॉ0 धर्मवीर भारती की काव्यकृतियों का समीक्षात्मक अनुशीलन करने का यत्न किया गया है। इसके अन्तर्गत (क) डॉ0 भारती की काव्यकृतियों का वस्तुपरक विवेचन (ख) डॉ0 भारती की काव्यकृतियों का शिल्पपरक विवेचन का विशद् विश्लेषण किया गया है। चतुर्थ अध्याय मे डॉ0 भारती के कथा-साहित्य का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। इसके अन्तर्गत (क) डॉ0 भारती के उपन्यासों का अनुशीलन, (ख) डॉ0 भारती की कहानियों का अनुशीलन को रेखाङ्कित किया गया है। पचम अध्याय में डॉ0 भारती के काव्यनाटक एवं एकांकी पर प्रकाश डाला गया है। षष्ठ अध्याय में डॉ0 भारती का साहित्य-चिंतन तथा गद्य की विविध विधाओं में लेखन को मूल्यांकित करने का प्रयास किया गया है। सप्तम अध्याय में हिन्दी पत्रकारिता के विकास में डॉ0 भारती के योगदान को निरूपित करने का यत्न किया गया है। अष्टम अध्याय में उपसंहार के रूप में निष्कर्ष को प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार डॉ0 धर्मवीर भारती के व्यक्तित्त्व

शब्दावलियाँ गढ़कर युग के पहरेदार होने के खोखले दावे नहीं करती अपितु वह रचना के दायित्त्व से युक्त होकर अनुभूति एव अभिव्यक्ति की सुगठित एव सार्थक प्रयोगान्विति है।

डॉ0 धर्मवीर भारती की काव्य रचनाओ एव गद्यलेखन मे रोमानीपन, भावुकता का आग्रह तथा युगीन समस्याओ के प्रति बौद्धिक दृष्टिकोण का विलक्षण सयोग परिलक्षित होता है। यही उनकी स्वतंत्र मौलिक काव्यरचना-प्रकृति एव चितनदृष्टि है। उन्होने अपनी काव्यकृतियों एवं गद्यलेखन मे मूल्य के धरातल पर व्यक्ति-स्वातत्र्य, विवेक और दायित्त्व को स्वीकारा है। वैयक्तिकता को वे मूल्यों के ग्रहण और विकास मे स्वचालित यत्न मानते थे जिसमें व्यक्ति-स्वातंत्र्य, विवेक और दायित्त्व का आतरिक विकासोन्मुख समन्वय विद्यमान है। ऐसे महान् रचनाकार एवं प्रबुद्ध चितक के व्यक्तित्त्व एव कृतित्त्व पर अपेक्षाकृत बहुत कम लिखा गया है। डॉ0 धर्मवीर भारती के जीवन एव कृतित्त्व से अधिकांश हिन्दी पाठक अवगत नहीं है। इसीलिए ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय को मैनें शोध-प्रबन्ध का विषय बनाया।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध को आठ अध्यायो मे विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय में डॉ0 धर्मवीर भारती के जीवनवृत्त-जन्मतिथि, माता-पिता, वशवृक्ष, सम्मान आदि को विश्लेषित किया गया है। द्वितीय अध्याय मे छायावादोत्तर परिदृश्य और डॉ0 भारती की रचनायात्रा का विवेचन है। तृतीय अध्याय में डॉ0 धर्मवीर भारती की काव्यकृतियों का समीक्षात्मक अनुशीलन करने का यत्न किया गया है। इसके अन्तर्गत (क) डॉ0 भारती की काव्यकृतियों का वस्तुपरक विवेचन (ख) डॉ0 भारती की काव्यकृतियों का शिल्पपरक विवेचन का विशद् विश्लेषण किया गया है। चतुर्थ अध्याय में डॉ0 भारती के कथा-साहित्य का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। इसके अन्तर्गत (क) डॉ0 भारती के उपन्यासों का अनुशीलन, (ख) डॉ0 भारती की कहानियों का अनुशीलन को रेखाङ्कित किया गया है। पंचम अध्याय में डॉ0 भारती के काव्यनाटक एवं एकांकी पर प्रकाश डाला गया है। षष्ठ अध्याय में डॉ0 भारती का साहित्य-चिंतन तथा गद्य की विविध विधाओं में लेखन को मूल्यांकित करने का प्रयास किया गया है। सप्तम अध्याय में हिन्दी पत्रकारिता के विकास में डॉ0 भारती के योगदान को निरूपित करने का यत्न किया गया है। अष्टम अध्याय में उपसंहार के रूप में निष्कर्ष को प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार डॉ0 धर्मवीर भारती के व्यक्तित्त्व

एव कृतित्त्व के विविध पक्षों को लक्षित कर शोधपरक विश्लेषण करने की कोशिश की गई है।

अध्ययन-अन्वेषण के क्रम में मुझे अपने निर्देशक श्रद्धेय गुरुवर डॉ0 रुद्रदेव त्रिपाठी जी की वैदुष्य-दृष्टि का लाभ सदैव मिला है। उनका स्नेहपूर्ण आशीर्वाद एव मार्ग-दर्शन यदि मुझे सहज सुलभ न हो पाता तो मै इस कार्य को कभी भी सपन्न न कर सकता। इसके लिए मै अपने पूज्य गुरुवर तथा श्रीमती त्रिपाठी जी के प्रति श्रद्धावनत हूँ। तथ्यों के सकलन के सदर्भ मे जिन मनीषी विद्वानो की पुस्तको से मुझे विशेष रूप से सहायता मिली है उनमें से अज्ञेय, मुक्तिबोध, डॉ0 रामविलास शर्मा, डॉ0 नामवर सिह, डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ0 इन्द्रनाथ मदान, डॉ0 रमेशकुंतल मेघ, श्री विजयदेव नारायण साही, श्री अजित कुमार, डॉ0 सूर्यप्रसाद दीक्षित, डॉ0 रामदरश मिश्र, डॉ0 हुकुमचन्द राजपाल, प्रो0 केसरी कुमार, प्रो0 प्रेमशकर, डॉ0 कुमार विमल, डॉ0 ललित शुक्ल, डॉ0 परमानंद श्रीवास्तव, डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के नाम उल्लेखनीय है।

श्रद्धेय गुरुवर प्रो0 राजेन्द्र कुमार (अध्यक्ष हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) के सत्परामर्शो ने मुझे विशेष रूप से लाभान्वित किया है, जिसके लिए मै उनका अत्यत आभारी हूँ। शोधकार्य की इस अन्तर्यात्रा की सफलता का श्रेय पूज्य पिताश्री पं0 रमाकान्त जी शुक्ल एवं ममतामयी माँ श्रीमती राजपती देवी, श्रद्धेय अग्रज डॉ0 अभय शुक्ल तथा भाभी श्रीमती (डॉ0) लक्ष्मी शुक्ला को है, जिन्होने इस कार्य को करने के लिए मुझे पारिवारिक दायित्त्वो से मुक्त रखा। आदरणीय अग्रज डॉ0 सर्वज्ञराम मिश्र एव भाभी श्रीमती राजलक्ष्मी मिश्रा जी के प्रोत्साहन एव सहयोग के लिए सदैव ऋणी रहूँगा।

प्रस्तुत शोध ग्रथ को पूर्ण करने में मुझे गुरुवर प्रो0 सत्यप्रकाश मिश्र जी के व्यक्तिगत चर्चा से विशेष सहायता मिली है, जिसके लिए मैं उनका अत्यंत आभारी हूँ। इलाहाबाद विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग के गुरुजनों प्रो0 पारसनाथ तिवारी, प्रो0 मोहन अवस्थी, प्रो0 आशा गुप्ता, प्रो0 राजेन्द्र कुमार वर्मा, डॉ0 योगेन्द्र प्रताप सिंह, डॉ0 मीरा श्रीवास्तव, डॉ0 मालती तिवारी, डॉ0 प्रेमकांत टंडन, डॉ0 रामकिशोर शर्मा, डॉ0 शैल पाण्डेय, डॉ0 किशोरी लाल, डॉ0 मीरा दीक्षित के स्नेह एवं संवेदनापूर्ण दृष्टिकोण के प्रति श्रद्धानत हूँ, जिन्होनें सदैव उत्साहित किया और शोध-प्रबन्ध के निमित्त अपने बहुमूल्य विचार दिए।

प्रस्तुत शोध ग्रंथ को पूर्ण करने मे प्रो0 त्रिभुवन नाथ शुक्ल (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर–म0प्र0) जी का प्रोत्साहन एवं सहयोग बहुमूल्य रहा हैं, जिसके लिए मै उनका अत्यन्त आभारी हूँ। सदर्भ–ग्रथो के अध्ययन के निमित्त इलाहाबाद विश्वविद्यालय लाइब्रेरी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन एव हिन्दुस्तारी एकेडमी के पुस्तकालयो के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनसे अनेक सुविधाएँ मिली है। मैं अपने उन सभी स्वजनो, प्रियजनों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ, जिनकी सहायता मुझे किसी न किसी रूप मे मिलती रही है।

अजय शुक्ल 20.08.02

शोध छात्र

हिन्दी विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय,

इलाहाबाद

इलाहाबाद

बसंत पंचमी; 2002

अनुक्रम

प्रथम अध्याय

डॉ0 धर्मवीर भारती का जीवन-वृत्त एवं रचना-यात्रा

डॉ0 धर्मवीर भारती की रचना-प्रक्रिया आस्था, विश्वास, संशय, प्रीति, राष्ट्रीयता, क्राति, व्यक्ति-स्वातत्र्य तथा मानव मूल्यों के सृजनधर्मी दायित्व के सघर्ष से सपृक्त है। वे एक ऐसे प्रतिभाशाली रचनाकार थे, जिन्होने कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध, पत्रकारिता, आलोचना के साथ ही अनेक नूतन विधाओं की शुरूआत की। वस्तुत· डॉ0 भारती हिन्दी नवलेखन के समर्थ रचनाकार एव प्रबुद्ध चितक थे। उनकी काव्यरचना-प्रक्रिया एवं चितनदृष्टि रोमानी भावबोध से विकसित होकर उनके अपने समय के परिवर्तित होते हुए मानवीय संबधो के विघटन तथा नए मानव मूल्यों की खोज एव संघर्ष की छटपटाहट को रेखाकित करती है। युगबोध के विकास की यह प्रक्रिया सिर्फ उनकी काव्य-रचनाओ में ही नहीं अपितु साहित्य की अन्य विधाओं के लेखन में भी परिलक्षित होती है। डॉ0 धर्मवीर भारती के अनुसार जीवन मूल्यो का संकट वैश्विक है। इसीलिए मूल्यों के इस व्यापक सकट के बीच उनकी रचनादृष्टि ने व्यक्ति-स्वातत्र्य, विवेक और मानवीय दायित्व जैसे मूल्यों को प्रतिष्ठा करने की चेष्टा की है। इसे ही डॉ0 भारती ने अपनी रचना-प्रक्रिया में 'नयी मर्यादा का उदय' के रूप मे सबोधित किया है। अत परपरागत रचना के ध्वंशावशेष पर भारती की रचना-दृष्टि नए मानव मूल्यो की प्रतिष्ठा मे सक्रिय परिलक्षित होती है-

"क्या हुआ दुनिया अगर मरघट बनी
अभी मेरी आखिरी आवाज बाकी है
हो चुकी हैवानियत की इंतेहा
आदमीयत का अभी आगाज़ बाकी है
लो, तुम्हे मै फिर नया विश्वास देती हूँ
नया इतिहास देती हूँ
कौन कहता है कि कविता मर गई?"[1]

डॉ0 धर्मवीर भारती का जन्म 26 दिसम्बर सन् 1926 ई0 को इलाहाबाद मे हुआ था। उस समय इनका परिवार इलाहाबाद के अतरसुइया मुहल्ले में रहता था। इनके पिता का नाम श्री चिरंजीव लाल वर्मा और माता का नाम श्रीमती चन्दा देवी था। पिता श्री

चिरंजीव लाल पॉच भाई थे और शाहजहॉपुर के निकट खुदागज कस्बे के पुराने जमींदार परिवार से संवधित थे। भारती की कुल परपरा का विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है किन्तु उनके पितामह (नाम अज्ञात) ने "मलका विक्टोरिया" के जमाने में एक मकान वनवाया था जिसमें सवसे ऊपर लिखवाया था "ओम् सत्यमेव जयते नानृतम" ओर उसके नीचे लिखवाया था' "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरोपा"[2] भारती के पिता श्री चिरजीव लाल वर्मा स्वतंत्र चेता निकले। उन्होने पुश्तैनी सुख-साजएव जमींदारी रहन-सहन को छोडकर रूडकी से ओवर सियरी की शिक्षा प्राप्त की। पिता श्री चिरजीव लाल वर्मा ने कुछ समय तक वर्मा में सरकारी नौकरी तथा ठेकेदारी की, फिर वहॉ से वे लौट्कर पहले मिर्जापुर और बाद में स्थायी रूप से इलाहाबाद मे बस गए। इसके अतिरिक्त डॉ0 भारती की कुल परंपरा का कोई विवरण प्राप्त नहीं होता है।

भारती जी प्रारम्भ में ही कुलानुगत पहिचान से दूर गए। विद्यालयीय जीवन में ही उन्होने नाम के साथ 'वर्मा' के स्थान पर 'भारतीय' जोड दिया था। सम्भवत वही भारतीय साहित्य क्षेत्र मे रूपान्तरित होकर 'भारती' बन गया। बाल्यकाल में यह दुलार से 'बच्चन' नाम से भी पुकारे जाते रहे है। इनकी माता चन्दा देवी में आर्य-समाजी सस्कार थे। वह मर्यादा और अनुशासन की देवी थी। वे पुत्र पर अपने संस्कारो का प्रभाव डालना चाहती थी। स्वतंत्र प्रकृति पुत्र बच्चन और फिर 'भारती' दोनों पर यह प्रभाव कथमपि आभासित नहीं होता है। प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा माता के सानिध्य में घर पर ही सम्पन्न हुई। 'भारती' पर उनकी मॉं के सस्कार प्रभावी न हो सके। इस परिप्रेक्ष्य में में डॉ0 चन्द्रभान सोनवणे की टिप्पणी है- "इस प्रकार का प्रयत्न जड अनुशासन बनकर रह गया होगा। सम्भवतः इसी कारण भारती का बालकमन लालनाश्रयिनो दोषा· समझने वाली आर्यसमाजी मा के प्रति लगाव का अनुभव नहीं कर सका। भारती के साहित्य में कहीं भी मा का भाव-भीना स्मरण नहीं दिखायी देता। सम्भवत· भारती की मां की थोडी सी झलक 'यह मेरे लिए नहीं' शीर्षक कहानी में विद्यमान है।"[3]

भारती जी की विद्यालयीय शिक्षा का प्रारम्भ डी0ए0वी0 हाईस्कूल इलाहाबाद में हुआ। यही विद्यालय उनके निवास स्थान से सन्निकट भी था। भारती जी होनहार एवं प्रखर

बुद्धि के छात्र थे। दुर्भाग्य यह है कि वे जब आठवीं कक्षा में थे तभी पिता की सुख छाया से वचित हो गए। शिक्षा मे व्यवधान अवश्यसभावी था परन्तु हुआ नहीं। मामा अभय कृष्ण जौहरी ने उत्तरदायित्व का निर्वहन किया और शिक्षाक्रम व्यवधान रहित चलता रहा। हॉ, इण्टर उत्तीर्ण करने के पश्चात् दो वर्ष का व्यतिक्रम हुआ। कारण 1942 के 'भारत छोड़ो' राष्ट्रीय आन्दोलन में उनकी सक्रिय सहभागिता थी। तत्पश्चात् 1945 मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी0ए0 की परीक्षा उत्तीर्ण की। हिन्दी में सर्वाधिक अक प्राप्त किया, जिससे 'चिन्तामणि घोष' पदक से सम्मानित हुए। सन् 1947 में हिन्दी एम0ए0 मे प्रथम श्रेणी प्राप्त की। तदुपरान्त डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा के निर्देशन मे 'सिद्ध साहित्य' विषय पर शोध कार्य में सलग्न हुए।

पिताजी के निधनोपरान्त यद्यपि मामा अभयकृष्ण जौहरी ने भारती की शिक्षा में व्यतिक्रम नहीं आने दिया, तथापि अर्थाभाव उनके जीवन का प्रमुख अंग बन गया। वह जब बी0ए0 में पढ रहे थे तभी से स्वावलम्बी होने का सकल्प ले लिए थे। अपनाव्यय भार ट्यूशन से प्राप्त रूपयों द्वारा ढोने लगे थे। एम0ए0 की शिक्षा अवधि के अन्तराल में वह 'अभ्युदय' से सम्बद्ध हो गए थे। अंशकालीन पत्रकारिता द्वारा अर्थोपार्जन करके उन्होनें अपनी पढाई को अबाध चलाया। सन् 1948 में 'सिद्ध साहित्य' विषय पर शोध प्रारम्भ किया। सन् 1948 से 1950 की अवधि में भारती ने शोध कार्य पूरा किया। इस अवधि में भारती 'सगम' (साप्ताहिक-पत्र) के सह-सम्पादक के रूप में कार्यरत रहे। उनके साथ ओंकार शरद भी रहे। सनृ 1950 ई0 में वह शोधोपाधि 'डी0फिल0' से अलंकृत हो गये। तदुपरान्त इलाहाबाद विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग में डॉ0 भारती प्राध्यापक नियुक्त हुए। सन् 1960 में टाइम्स ऑफ इण्डिया संस्थान के विशेष आग्रह पर उन्होनें भारत के सर्वाधिक लोकप्रिय रगीन साप्ताहिक-पत्र 'धर्मयुग' का सम्पादकत्व स्वीकार किया। भारतीजी अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में अर्थाभाव-ग्रस्त रहे। अपनी शिक्षा उन्होंने ट्यूशन तथा 'संगम', 'अभ्युदय' पत्रों में कार्य सम्पादन द्वारा अर्जित धन से पूर्ण की। प्रारम्भिक-जीवन-संघर्ष के कारण वह चिन्तनशील बन गए। परिस्थितियॉ मनुष्य में क्रियाशीलता का संचार करती है। उनमें 'अन्धा-युग' की संरचना का उपक्रम उनकी किशोरावस्था में ही रूप धर चुका था।

द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका की अनुभूति ने उन्हें उद्वेलित कर दिया था। वगाल के अतीव भीषण अकाल ने भी भारती को द्रवित किया। विश्वविद्यालय-जीवन के एम0ए0 की अध्ययन-अवधि मे कहानियो का सकलन प्रकाशित हुआ 'मुर्दो का गाँव' (सन् 1946 ई0)। इस सग्रह की कहानियों के लेखन का प्रेरणा स्रोत उनके मनपर अकाल की घटना का प्रभाव ही है। लेखक की मनोदशा का प्रकटन देखिए-"यदि हम भूख में अंगारे चबा जाने की शक्ति नहीं रखते तो हम इसी लायक है कि हमारी लाशें नाबदानों में सडे और उन पर घिनौनी मक्खियाँ भिनभिनाएं।"[4] स्पष्ट है कि भारती जी अध्ययन, मनन, चिन्तन-अनुचिन्तन पूरे समाज पूरे लोक को समेट कर चलते हैं। वह एक सुलझे हुए विचारक ही नहीं बल्कि विषय विशेष को एक सुनिश्चित दृष्टिकोण पर आंकते थे। उनका चिन्तक व्यक्तित्व भारतीय-अभारतीय दोनो भूमियो पर विचरता प्रतीत होता है। उनके लिए आर्थिक विषयों में यदि मार्क्स का चिन्तन दिशा-बोधक रहा तो आभ्यन्तरिक विकास के लिए वह राम-कृष्ण को आदर्श स्वीकारते रहे। उनके विचार प्रधान निबन्धो मे 'पश्यन्ती', 'ठेले पर हिमालय' और 'कहनी-अनकहनी' इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

भारती जी ने प्रयाग के सामाजिक, साहित्यिक और सास्कृतिक परिवेश को छक कर भोगा था। वह सब उनकी चिन्तन-सरणि में, बुद्धि-विवेक और मन-मस्तिष्क में रच-बस गया था। वह स्वय को उन सबसे जीवन पर्यन्त पृथक न कर सके। उनकी रचनाओं में किसी न किसी रूप मे प्रयाग अथवा इलाहाबाद परिवेश अवश्य चित्रित हुआ है। "लगता है कि प्रयाग का नगर-देवता स्वर्ग के कुंजों से निर्वासित होकर कोई मनमौजी कलाकार है जिसके सृजन में हर रग के डोरे है।"[5] बंगला देश सम्बन्धी रिपोर्ताज लिपिबद्ध करते हुए भी वह अपने प्रिय नगर को विस्मृत न कर सके। वह इलाहाबाद को स्मरण करते हुए लिखते है- "इक्कीस बरस पहले गंगाजल की किश्तियों, छायादान लम्बी सडकों, कविताओं, धुले-धुले फूलों, बहस-मुबाहसों, साइकिल पर चक्कर लगाते छात्र-कवियों और बेलौस गपबाजियों और महकती-फिजाओं का एक शहर हुआ करता था।"[6] भारती जी को अपने समय के शहर में व्यतीत क्षणों का अनुस्मरण वेदना देने लगता है। उनकी वह मित्रमंडली, मित्र-गोष्ठियाँ, निर्द्वन्द्व विचरण, साहित्य-चर्चाएं स्मरणकर-तत्कालीन मित्र समुदाय का कोई भी सदस्य यही

कहेगा। डॉ0 रघुवश ने लिखा है 'मै नहीं जानता कि इसको साहित्य का इतिहासकार मानेगा या नहीं पर मुझे आज भी ऐसा ही लगता है। हमने देश की पराधीनता के युग में शुरु किया था पर हमारे चिन्तन मे स्वतंत्रता का आवेश था। प्रगतिवादियों से विरोध का मुख्य आधार यही था और तुम भारती तुम बार-बार इस स्मृति में मेरे सामने आ जाते हो। तुम्हारा वह उन्मद-उन्मद, डूवा-डूबा व्यक्तित्व सामने आता है। निरन्तर टहलते हुए अपने हाथ से अपने बडे लम्बे बालों को पीछे समेटते हुए, कुछ गहरे मर्म भरे स्वर में गुनगुनाते हुए मेरे सामने आज भी आ जाते हो। इसी तरह की योजनाएं बनायी जातीं, गोष्ठिया सयोजित की जाती उत्सव मनाएं जाते, पत्रिकाए निकाली जाती। चुनौती भाव रहता किसी भी दबाव के प्रति हमारा आक्रमण भाव रहता। कोई प्रतिष्ठान हमको मान्य नहीं रहा। हम किसी भी आश्रम के खिलाफ रहे। चाहे व प्रतिष्ठा प्राप्त साहित्यकारो का हो या अधिकार प्राप्त राजनेताओ का हो और हमारे इन सारे आन्दोलनो और आक्रमणों के नेता तुम थे। हमने पीढियो की बहस भी चलायी, हमने साहित्य के मूल्यों को मानवीय सन्दर्भ से जोडकर रखने की घोषणा भी की। हमने मानव स्वाधीनता की व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा की। गम्भीर चर्चा चलाई, घोषणाए की। तुम जिस इन सब चर्चाओं, बहसों और आन्दोलनों के केन्द्र मे रहे थे। तुम जिस भगिमाओं के साथ हमारे बीच में नेतृत्व कर रहे थे, उसकी याद आ रही है। हम बैठकर चाय पर, कॉफी पर, योजनाएं बनाते थे।, गोष्ठियों, उत्सवों, समारोहों की और पत्रिका निकालने की। आगे बढाने की शक्ति के रूप मे तुम हमारे पास थे।"[7] भारती जी के व्यक्तित्व निर्माण में जहाँ माता चन्दा देवी का संस्कार रहा-वहाँ उनके शोधकार्य निर्देशक डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा की गम्भीरता, मौलिकता, स्वतत्र तथा निर्भीक चिन्तनधारणा का अकूत योगदान रहा है। उनका साहित्यकार रूप तो प्रयाग की ही देन कही जा सकती है। प्रमुखत. अतरसुइया मोहल्ले के मध्य एवं निम्न वर्गीय परिवेश ने उनकी रचनाओं को जीवन्त बनाया है। "अतरसुइया के मध्यमवर्गीय और निम्न मध्यवर्गीय जीवन के गहन अनुभवों के आधार पर उन्होंर्ने अपनी कथाकृतियों 'गुनाहों का देवता', 'सूरज का सातवां घोडा', 'चाँद और टूटे हुए लोग', 'बन्द गली का आखिरी मकान' का निर्माण किया है। 'गुलकी बन्नो' जैसा पात्र अतरसुइया में ही हो सकता था 'कहीं' अन्य नहीं। भारती के

परवर्ती काव्य की रूपाशक्ति और प्रण्यगत अतृप्ति भी अनुभूत है। प्राय. उन पर यह आरोप लगाया जाता है कि उनमे रोमानी दृष्टि, श्रृगारिकता ही अधिक है। लेकिन यह उनका भोगा हुआ यथार्थ है। 'कनुप्रिया' का यथार्थ प्रणय वैष्णव काव्य की आवृत्ति न होकर कवि की जीवनानुभूतियो से नि स्तृत है। अपने प्रणय प्रसगो को भारती ने कहीं भी गोपन नहीं रखा है। न रहस्यवाद के पर्दे मे लपेट कर पेश किया है। वह उनके द्वारा सृजित कृतियों में अभिव्यक्त है किन्तु कलात्मकता की हानि उठाये बिना कहीं भी उसमें अश्लीलता और भोंडापन नहीं है।"[8]

भारती जी 'सिद्ध-साहित्य' पर शोध किया था, उसमें रमे थे। वैष्णव थे, पुत्रियों के पारमिता. प्रज्ञा 'तथा पुत्र के 'किशुंक' नाम इस तथ्य के प्रमाण है। भारती जी के जीवन में प्रणय-प्रसंग भी उनकी रचना-प्रक्रिया के लिए प्रेरणा-स्रोत रहे। दुर्भाग्य से प्रथम पत्नी कान्ता से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। पुन पुष्पा जी आजीवन उनकी जीवन-सगिनी रहीं।

भारती जी की साहित्य-यात्रा का शुभारम्भ उनके एम0ए0 और शोध-कार्य-काल में ही प्रारम्भ हुई। कथन का साक्ष्य 'मुर्दों का गाँव' कहानी-संग्रह और 'अभ्युदय', 'सगम' जैसे तत्समय के लोकप्रिय साहित्यिक पत्रों से उनकी सम्बद्धता और साथ ही साथ दोनों पत्रों के सम्पादकों पण्डित पद्मकान्त मालवीय एवं इलाचन्द्र जोशी का सान्निध्य कहा जा सकता है। संगम (साप्ताहिक) वर्ष 4 अंक 25 में 'निवेदन कविता' और कहानी-'कलंकित उपासना' प्रकाशित हुई भी। 'गुनाहो का देवता' उपन्यास सन् 1946 में प्रकाश में आ चुका था। यह उपन्यास ही साहित्य-यात्रा में भारती का प्रथम चरण-विन्यास है। इस प्रथम चरण विन्यास ने यात्रा-पथ पर निजगतिशीलता का अभिज्ञान अंकित कर दिया। 'गुनाहों का देवता' उपन्यास सामाजिक रूढ़िग्रस्तता पर प्रहार करता है। उपन्यासकार का कथन है- ''यह मध्यवर्गीय जीवन की कहानी है जो अपनी कलात्मक अपरिपक्वता के बावजूद पाठ्कों को पसंद है। इस उपन्यास का लिखना मेरे लिए वैसा ही रहा- जैसे पीडा के क्षणों में पूरी आत्मा से प्रार्थना करना।''[9] यह मध्यवर्गीय जीवन की कथा है। राग-अनुराग और भावुक मन का चरम इस उपन्यास में रेखांकित किया गया है। भारती जी, साहित्य-यात्रा में गतिशील तो हुए परन्तु गन्तव्य की निश्चित रेख न बना पा रहे थे। 'आवाज का नीलाम'

एकाकी 1947 में रच उठा था। उपन्यास 'गुनाहों का देवता' के वाद भारती अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'दूसरा सप्तक' मे सम्मिलित हुए। इसमें इनकी बारह कवितायें समायोजित की गई। प्रथमत कवि के रूप में भारती जी पाठकों के समक्ष आये। यह 1951 का वर्ष था। इसमे सग्रहीत अपनी कविताओं के विषय मे भारती जी ने स्वत लिखा है- "मैनें सबसे पहले लिखे सरलतम भाषा मे रग-बिरगी चित्रात्मकता से समन्वित साहसपूर्ण उन्मुक्त रूपोवासना और उद्दाम यौवन के सर्वथा मासल गीत जो न मन की प्यास को झुठलाये और न उसके प्रति कोई कुठा प्रकट करें। जो सीधे ढंग से पूरी ताकत से अपनी बात आगे रक्खे। आदमी की सरल और सशक्त अनुभूतियों के साथ निडर खेल सकें बोल सकें।"[10] साहित्य-यात्रा का यह पथी भारती रूपाशक्ति उद्वेलित उद्दाम यौवनोद्रेक और प्रणयोन्माद में गतिशील रहा।

भारती जी की प्रथम स्वतत्र काव्यकृति 'ठडा लोहा' है। यह रचना-सन् 1952 ई0 में प्रकाशित हुई। भारती जी के कवि-व्यक्तित्व पर टिप्पणी करने वालों का अनुमान है कि इस सग्रह की कविताओं में प्रथम पत्नी 'कान्ता' से सम्बन्ध विच्छेद वाले छह वर्षों का एकाकीपन मुखर हो उठा है। कवि ने भूमिका में लिखा है- "सभी मेरी कविताएं है। मेरे विकास और परिपक्वता के साथ उनके स्वर बदलते गए है। पर आप जरा सा ध्यान से देखेंगे तो सभी में मेरी आवाज-पहिचानी-सी लगेगी। प्रणय रूपाशक्ति की गलियों से गुजर कर अपने से बाहर की सच्चाई एक जनवादी भावभूमि की खोज कवि का लक्ष्य रहा। मेरी परिस्थितियाँ मेरे जीवन में आने और आकर चले जाने जाने वाले लोग, मेरा समाज मेरा वर्ग, मेरे संघर्ष, मेरी समकालीन राजनीति और समकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों, इन सभी का मेरे और मेरी कविता के रूपगठन और विकास में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष योग रहा है।"[11] इस संग्रह में 'तुम्हारे चरण', 'उदास तुम', 'डोले के गीत', 'बेला महका', 'फिरोजी होंठ', 'सांसों का इसरार', और मुग्धा आदि उन्तालिस (39) कविताएं संकलित है। सभी रागानुराग और श्रृंगार भावों से परिपूर्ण है। इसी क्रम में सन् 1955 में भारती जी ने हिन्दी साहित्य को एक नाट्य-काव्य दिया-'अन्धायुग'। यह महाभारत के कथानक पर आधारित एक उत्कृष्ट कृति है। इस कृति के संदर्भ में स्वयं भारती जी का कथन है- "महाभारत के युद्धोपरान्त

यह अन्धायुग अवतरित हुआ जिसमे मनुष्य की स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ और अवस्थायें विकृति हो गयी है। इस युद्ध में लडने वाले सभी अन्धे है, पथ भ्रष्ट है। आत्महारा है अपने अन्तर की अन्ध गुफा के वासी है।''[2] यह कृति अत्यन्त लोकप्रिय हुई। तत्पश्चात् उपन्यास 'सूरज का सातवां घोडा' प्रकाशित हुआ। इसकी भी प्रेरणा भूमि वही मध्य और निम्न मध्यवर्गीय समाज रहा। इस उपन्यास के सन्दर्भ में लेखक का कथन हैं-''मेरी पहली रचना 'गुनाहों का देवता' है दूसरी कृति 'सूरज का सातवां घोडा' है। इसके कालक्रम का अन्तर होने के अलावा उन बिन्दुओ मे भी अन्तर आ गया है जिस पर खडे होकर मैंने समस्याओं का विश्लेषण किया है। मार्क्सवाद के अध्ययन से मुझे बडी शान्ति, बल और आशा मिलती है। अपनी जनता के दुख-दर्द के प्रति हमारी सामाजिकता बढती गयी है। मै जो कुछ लिखता हूँ उसमें सामाजिक उद्देश्य अवश्य रहता है।''[3] भारती जी के यह दोनों ही उपन्यास तत् समय के समाज का सयत विश्लेषण और सजीव चित्रण प्रस्तुत करते है।

साहित्य-यात्री के रूप मे भारती जी सजग पथिक के सदृश अपने अडिग मार्ग और पाथेय को हर क्षण स्मरण रखते है। विराम देते है तो पूर्व यात्रा की उपलब्धियों का, उसके शिव-अशिव पक्ष का आकलन कर लेते है। पुनः अग्रसर होते है। यही कारण है कि उनकी प्रत्येक कृति का प्रकाशन एक अन्तराल के पश्चात् ही सम्भव हो सका है। 'अन्धायुग' के चार वर्ष पश्चात् दो कृतियां 'सात गीत वर्ष' और 'कनुप्रिया' का प्रकाशन हुआ। सृजन अनुभूति के प्रणय, राग-अनुराग-पटल पर ही हुआ प्रतीत होता है। भाव-बोध का विस्तार सयमित है, मर्यादित है। काव्य-संकलन-'सात गीत वर्ष' एक ओर सृजन के क्षण का महत्व उद्घाटित करता है तो दूसरी ओर काव्य सृजन-प्रक्रिया के विविध आयामों का संकेत भी करता है। यह स्वयं कवि का वक्तव्य है। संकलित इक्यावन (51) कविताएं इस कथन का सत्य उद्घाटित करती है। कविताओं का भाव बोध चिन्तन की विविध पगडण्डियों से होकर अभिव्यक्ति का रूप ग्रहण करता है। इन कविताओं में आस्था-अनास्था के भाव-वैविध्य, वैयक्तिक चेतना के भावोद्रेक, समष्टिगत चेतना का दिग-स्पर्श, परिवेश का संगायन और युग बोध का सत्य विवेचित है। 'कनुप्रिया' का कथ्य-पूर्वराग, मंजरी परिणय, सृष्टि-संकल्प तथा इतिहास रूप में समायोजित किया गया है। यहाँ अतीत को वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में

व्याख्यायित करने का उपक्रम दृष्टिगत होता है। कृति में वाह्य परिदृश्य को नहीं वरन् अन्तस् को प्रतिष्ठित करने की ललक है। प्रणय और राग मन.स्थितियों की विविधतापूर्ण भाव भूमि पर पुष्पित होते हैं, सुरभि-सत्य उजागर करते है। इस कृति का यही सबोध है। कवि स्वय अपना पक्ष इस प्रकार प्रकट करता है- "ऐसे ही क्षण होते है जब हमें लगता है कि यह सब जो वाहर का उद्वेग है, महत्व उसका नहीं महत्व उसका है जो हमारे अन्दर साक्षात् कृत होता है। चरम तन्मयता का क्षण जो एक स्तर पर सारे वाह्य इतिहास की प्रक्रिया से ज्यादा मूल्यवान सिद्ध हुआ है। जो क्षण हमे सीधी तरह खोला गया है, इस तरह कि समस्त वाह्य-अतीत वर्तमान और भविष्य सिमटकर उस क्षण मे पुंजीभूत हो गया है और हम नहीं रहे।"[4] 'कनुप्रिया' कवि भारती की रागायित मानसिकता का जीवन्त रूप है। वह रूप जो पुरूष और नारी के मानवीय-सम्बन्ध को दृढ करने वाले प्रणय सत्य को उन्मीलित करता है। यहॉ भारती जी के युवोन्मादित वासनोत्प्रेरित-भावों की प्रणयोंच्छृखलता नहीं वरन् रागायित भावो की गम्भीरता है जो सृष्टि का सार रूप सत्य है।

'भारती जी' कविता के साथ-साथ कथा, नाटक में भी प्रणय और रागात्मक-भाव-सन्निवेश को त्याग नहीं पाये। परिवेश-बोध को रूपायित करने का अवसर कथा में अधिक होता है। इसका समुचित संग्रहण उन्होनें किया। सन् 1955 में 25 कहानियों का एक संग्रह 'चॉद और टूटे हुए लोग' खण्ड मे हिरनाकुस और उसका बेटा, कुलटा आदि सात कहानियॉ, 'भूखा ईश्वर' खण्ड मे भूखा ईश्वर, मुर्दो का गॉव, आदि नौ कहानियॉ और कलंकित उपासना' खण्ड में कलंकित उपासना, पूजा, स्वप्नश्री और श्री रेखा आदि नौ कहानियां है। सन् 1969 ई0 में दूसरा कहानी संकलन 'बन्दगली का आखिरी मकान' प्रकाशित हुआ। इसमें चार कहानियां 'गुल की बन्नों', 'सावित्री नम्बर दो-, 'यह मेरे लिए नहीं' और 'बंद गली का आखिरी मकान' संग्रहीत है। प्रथम कहानी सन् 1955 और अन्तिम 1969 में लिखी गई। सन् 1946 में लिखी 'मुर्दो का गॉव' कहानी की भूमिका में भारती जी ने "अस्तित्व, अस्तित्व के लिए आवश्यकता है प्रगति की, प्रगति के लिए आवश्यकता है पार्थिवता की। पार्थिवता के लिए आवश्यकता है रूप की, भौतिक शरीर की" लिखकर अपनी साहित्यिक भूमिका के इस कथाकार रूप की स्थापना की। प्रथम कहानी

संकलन मे भारती जी के कवि-रूप, क्रान्तिकारी यथार्थवादी रूप में वर्णन प्रधान, पत्रात्मक, आत्म निवेदन परक, और रूपात्मक शैली के दर्शन होते है। प्रथम कहानी सग्रह 'चॉद और टूटे हुए लोग' की कहानियो का उद्देश्य मध्यवर्गीय और निम्न मध्यवर्गीय समाज की मानसिकता को उजागर करना और उसका विविध पक्षीय अकन है। दूसरा कथा संग्रह 'बन्द गली का आखिरी मकान' तो इलाहाबाद मे भोगे गए पूरे परिवेश की सास्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित कहानियो का सकलन है। यहॉ मध्यमवर्गीय समाज मे पलती आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक मनोदशा का यथार्थ सत्य उजागर हुआ है।

कवि और कथाकार भारती ने एकाकी नाटकों की भी रचना की। एकांकी संग्रह 'नदी प्यासी थी' पांच एकाकी 'नदी प्यासी थीं', 'नीली झील', 'आवाज का नीलाम', 'संगमरमर पर एक रात' तथा 'सृष्टि का आखिरी आदमी' का सकलन है। इनके एकांकी रंगमचीय है। भारती जी ने भूमिका मे लिखा है- "मैनें अपनी ओर से यही प्रयास किया है कि रंगमंच के लिए ये पूर्णतया उपयुक्त सिद्ध हों, फिर भी जहॉ तक नाटकों का सम्बन्ध है नाटककार और निर्देशक मिल कर ही उसका अन्तिम रूप स्थिर कर सकते है। यहॉ तक रिहर्सल के दौरान मे अक्सर अभिनेता कुछ ऐसा सशोधन उपस्थित करते है जो नाटक की सफलता के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध होते है।"[15] संग्रह के आवरण पृष्ठ पर प्रकाशित टिप्पणी भी विशेष रूप से कुछ सकेत देती है। "भारती जी की कलम उपन्यासों और कविताओं में गहरी और जटिल मन स्थितियों के सफल चित्रण के लिए ख्याति पा चुकी है। नाटकों में उन्होंने जीवन के कई पहलुओं को बडे ही कलात्मक ढंग से उभारा है। मार्मिक क्षणों का चुनाव और उनकी गहरी अन्तर्दृष्ठि व्यापक सहानुभूति और रसमय शैली में नाटकीय निर्वाह और प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति भारती के एकांकी नाटकों की अपनी विशेषता है।"[16]

'भारती जी' की साहित्य-यात्रा का निबन्ध लेखक कदाचित एक मोहक पडाव के रूप में ख्यातिवान रहा है। उनकी गहन चिन्तनशीलता निबन्धों में ही वस्तुत· साक्षात् हो पायी है। उनके तीन निबन्ध संकलन प्रकाशित है। 'ठेले पर हिमालय' 'पश्यन्ती' और 'कहनी-अनकहनी'। इनके प्रकाशन क्रमश 1958, 1969 तथा सन् 1970 में हुए। संकलनों में मुद्रित प्रकाशकीय वक्तव्य इन्हें ललित निबन्ध की संज्ञा देता है। प्रथम संकलन

के सभी निबन्ध लालित्य परिपूरित एव रचनाकार की वैयक्तिक झलक से पूर्ण है। कतिपय रूपक व्यग्य एव श्रद्धाजलिया भी हैं। सग्रह के तीसरे सस्करण मे मिटिंग आन द फेस, कहानी बाजार रहस्य भाग-1, आधुनिक हिन्दी कविता का पार्टीपरक इतिहास, मिलाहाबाद की डायरी और एक छोटी चमकने वाली मछली की कहानी पॉच निबन्ध और समायोजित कर दिए गए है। इस प्रकार यह बत्तीस (32) निबधों, का संकलन बन गया है। निबन्धों में निज को उद्घाटित करने की मानसिकता के ही दर्शन होते हैं। भारती जी का विचारक व्यक्ति ही प्राय निबन्धो में समाविष्ट होकर बोलता प्रतीत होता है। विषय की विविधता इस संकलन का वैशिष्ट्य कहा जा सकता है। 1957 से सन् 1967 ई0 एक दशक की कालावधि मे रचे सत्रह निबन्धो का सग्रह 'पश्यन्ती' है। ये निबन्ध आत्मकथ्य, व्यक्तित्व एवं कृतित्व, सर्वथा निजी इतिहास तथा सर्वेक्षण आदि उपशीर्षको मे रखे गए है। प्रथम सग्रह के निबन्धो की अपेक्षा इस सकलन के निबन्धो मे वैचारिक परिपक्वता, राष्ट्रीय, सामाजिक समस्यागत चिन्तनशीलता के दर्शन होते हैं। तीसरा सकलन पैतालिस निबन्धो का है- 'कहनी-अनकहनी'। भारती जी 1960 मे धर्मयुग के सम्पादक बन गए थे। इसमे संग्रहीत निबन्ध पूर्णत. साहित्यिक, विवेचनपरक एव वैचारिक है। इन ललित निबधों के विषय में संकलन की भूमिका मे लिखा है। ''समकालीन इतिहास चक्र की कोई छोटी से छोटी घटना हो-सामान्य से सामान्य समाचार हो, लेकिन मानव मूल्यों के निष्कर्ष पर उसे भी कसा जा सकता है और बहुत कुछ है जो उसके सन्दर्भ में कहा जा सकता है- बहुत कुछ उसका स्थायी मूल्य है। यह लेखन उसी दिशा में एक प्रयोग है।''[17] निबन्धों में भारती जी का व्यक्ति और साहित्यकार दोनों ही रूप के दर्शन मिलते है ''कहीं वह निजता के लिए उत्कठित कहीं स्व की इयता प्रस्थापन के लिए जाग्रत और कहीं मानव मूल्यों के क्षरण पर व्यथित है। लेखक के व्यक्तित्व की इतनी निश्छल अभिव्यक्ति उसकी किसी भी दूसरी विधा में सम्भव नहीं हुई है। "अस्तु लेखक की दृष्टि कितनी रोमानी वैयक्तिक और मूल्यपरक है, इसे पहचानने के लिए उसे निबन्धो से गुजरना होगा।''[18]

भारती जी का निबन्ध-साहित्य विशाल वैचारिकता में व्यापक और चिन्तनशीलता में सुविस्तृत है। संस्मरण सुष्ठु और प्रभावक है, यद्यपि उनमें वैयक्तिकता का निज प्रधान है।

व्यग्य सटीक, तीखे परन्तु मर्यादित भावभूमि से सश्लिष्ट है। यात्रा-वृतात रोचक एवं जीवन्त है। सस्मरणात्मक अथवा व्यंग्यात्मक निबन्धों का कोई पृथक संकलन नहीं है। हां यात्रा-वृतान्त 'मुक्तक्षेत्रे-युद्धक्षेत्रे' तथा 'चीन जैसा मैनें देखा' शीर्षकों से प्रकाशित हुए है। इसके अतिरिक्त दो यात्रा-लेख 'ठेले पर हिमालय' और 'कूर्माचल में कुछ दिन' प्रथम निबन्ध सकलन मे समायोजित हैं। 'मुक्तक्षेत्रे युद्धक्षेत्रे' धर्मयुग में रिपोर्ताज के रूप में पहले प्रकाशित हुआ था। इसमे 1971 ई0 के बगला-देश मुक्ति-सग्राम का जीवन्त चित्रण है। भारती जी धर्मयुग के अपने सपादकत्व अवधि में बंगला देश की यात्रा पर गए थे। 3 दिसम्बर से 16 दिसम्बर पर्यन्त चले इस मुक्ति-संग्राम के समय भारती जी, भारतीय जवानों के साथ रहे। 'चीन जैसा हमने देखा' भी धर्मयुग में 1978 ई0 में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था। भारती जी भी अन्य भारतीय पत्रकारों के साथ चीन की यात्रा की थी। इस यात्रा वृतान्त मे चीन का समग्र एक सधे लेखक की कलम से चित्रित हुआ है।

संस्मरणात्मक निबन्धो मे दो- 'उसने कहा था एक संस्मरण' और 'मै चांद के कलक को प्रणाम करता हूँ', 'ठेले पर हिमालय' संग्रह में तथा 'कहनी-अकहनी' सकलन मे 'जुंग एक श्रद्धांजलि' तथा 'बसंत-पचमी', 'संसद का प्रांगण', और 'निराला की याद'- ये निबन्ध समायोजित है। 'समता+स्वातत्र्य+सौन्दर्य=लोहिया' शीर्षक सस्मरण धर्मयुग के 40वें अंक में प्रकाशित हुआ।

इसी प्रकार व्यग्य-निबन्ध भी प्रथम सकलन 'ठेले पर हिमालय' में समाविष्ट है। उनके शीर्षक है गुलिवर की तीसरी यात्रा, हिन्दी भाषा और बंगाल का जादू, डाकखाना, मेघदूत, शहर दिल्ली, यू0एस0ओ0 में हिन्दी पर मुकदमा, नूतन काव्यशास्त्र, मिटिंग आन द फेस, कहानी बाजार रहस्य भाग-1, आधुनिक हिन्दी कविता का पार्टीपरक इतिहास, मिलाहाबाद की डायरी और 'अपनी मौत' पर इन निबन्धों में राजनीति, समाज और साहित्य सभी कुछ विषय बने है।

भारती जी के इतर साहित्य में मुख्य रूप से एक उपन्यासः'ग्यारह सपनों का देश', एक नया प्रयोग है। इसके दस लेखक है-उदयशंकर भट्ट, रांगेयराघव, कृष्णा सोबती

आदि। सबके एक-एक और भारती के दो अध्याय है। इस प्रकार ग्यारह सपने निर्मित हुए जो सर्वथा असफल प्रयोग बना। ग्यारह सपनों का देश दस लोगों का सपना है जो सचमुच सपना बनकर रह गया है। उपन्यास नहीं बन पाया है और उपन्यास बनना कैसे सम्भव था, दस सपनो से भला एक उपन्यास की सृष्टि कैसे सम्भव है? "कोई चाहे कि पचास खण्ड काव्यो को मिलाकर एक महाकाव्य का निर्माण किया जाय तो यह कैसे सम्भव हो सकेगा, ठीक उसी प्रकार उपन्यास मे लेखक की अपनी धारा, उसकी समस्याओं का होना आवश्यक है। तभी वह कोई बात अथवा भाव हमें ठोस रूप में दे पायेगा।"[19] इसके पश्चात् आता है अनुवाद तथा डायरी साहित्य। सन् 1960 मे भारती जी का एक काव्य संकलन प्रकाशित हुआ-'देशान्तर'। इसमे बीसवीं शताब्दी के कुल एक सौ इकसठ कवियो की कविताओ का भारती-रचित छायानुवाद सकलित है। इसमे भारतीय अभारतीय दोनो ही कवि है। भारती जी का कथन है- "पृथक सस्करण, पृथक काव्य रूढिया, पृथक बिम्ब-समूह जोडने वाले तत्व बहुत ही क्षीण रहता है और ऐसी स्थिति में सफल अनुवाद प्रस्तुत करें तो वह शाब्दिक अनुवाद नहीं हो पाता।"[20] दूसरा अनुवाद साहित्य है- 'आस्कर वाइल्ड की कहानियां'। वाइल्ड की कुल आठ कहानियो का इसमें अनुवाद संग्रहीत है। इस संकलन का प्रकाशन सन् 1959 ई0 में हुआ। 'ठेले पर हिमालय' संकलन में ही केवल कौतुकवश उचटी नींद, चादनी मे कोका बेली, एक सपना और उसके बाद, काले पत्थर की अंगूठी, क्षणों की अथाह नीलिमा, मृदुलमीत, ममता, शीर्षक भारती जी के डायरी पृष्ठ है।

इस प्रकार भारती जी की साहित्य यात्रा के विविध मोडों, पाथेयों, विभिन्न विरामों, मार्गस्थवाद-रूप-झाडों और सरस लता निकुंजों से निर्मित परिवेश का आकलन अग्रिम अध्यायों में करेंगे। हमारी प्रक्रिया विवेचन विश्लेषण परक शोधात्मक, अनुशीलन की होगी। अध्ययन सर्वपक्षीय रखने का प्रयास रहेगा।

यात्राएं :

डॉ0 धर्मवीर भारती ने सन् 1961 में कॉमनवेल्थ रिलेशन्स कमेटी के आमंत्रण पर प्रथम विदेश-यात्रा इंग्लैण्ड तथा यूरोप का भ्रमण किया। पश्चिम जर्मन सरकार के आमंत्रण पर 1964 में जर्मनी-यात्रा तथा 1966 में भारतीय दूतावास के निमंत्रण पर

इण्डोनेशिया तथा थाइलैण्ड की यात्राएं की। सितम्बर 1971 में मुक्तिवाहिनी के साथ बाग्लादेश की गुप्त यात्रा की तथा क्रान्ति का पहला ऑखों-देखा प्रामाणिक विवरण लिखा। भारत-पाक युद्ध 1971 के दौरान भारतीय स्थल-सेना के साथ वास्तविक युद्ध-स्थल पर निरन्तर उपस्थित रहकर युद्ध के वास्तविक मोर्चे के रोमाचक अनुभवों को लिपिबद्ध किया। इसके पहले ऐसा काम कभी किसी पत्रकार ने नहीं किया। भारतीय मूल की मारिशसीय जनता की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए जून 1974 में मारिशस की यात्रा की। फिर ऐफ्रो एशियाई कॉन्फ्रेन्स मे भाग लेने के लिए पुन मारिशस गये। 1978 में चीन की सिनुआ सवाद समिति के आमत्रण पर भारत सरकार के डैलीगेशन के सदस्य के रूप में चीन की यात्रा पर गये। 1991 मे परिवार के साथ अमेरिका-यात्रा पर गये और अपने भारत देश के तो हर प्रान्त मे वार-बार अनेक यात्राएं कीं। यात्राए डॉ0 भारती को वहुत सुख देती थीं।

अलंकरण तथा पुरस्कार :

डॉ0 धर्मवीर भारती ने 1972 मे पद्मश्री से अलंकृत हुए। 1997 से महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी ने हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ रचना को उनकी स्मृति में प्रतिवर्ष 51,000 रु का पुरस्कार देने की घोषणा की। पुरस्कार कानाम है- 'धर्मवीर भारती महाराष्ट्र सारस्वत सम्मान'।

1999 में युवा कहानीकार उदय प्रकाश के निर्देशन में साहित्य अकादेमी दिल्ली के लिए डॉ0 भारती पर डाक्यूमेण्ट्री फिल्म का निर्माण हुआ। अनेक पुरस्कारों में से कुछ इस प्रकार है-

1967 . संगीत नाटक अकादेमी के मनोनीत सदस्य;

1984 . हल्दी घाटी श्रेष्ठ पत्रकारिता पुरस्कार, महाराणा मेवाड़ फाउण्डेशन;

1985 . साहित्य अकादेमी रत्न सदस्यता-सम्मान;

1986 : संस्था सम्मान, उत्तर प्रदेश हिन्दी सस्थान,

1988 . सर्वश्रेष्ठ नाटककार पुरस्कार, संगीत नाटक अकादेमी दिल्ली;

1989 : डॉ0 राजेन्द्रप्रसाद शिखर सम्मान, बिहार सरकार;

1989 : गणेश शंकर विद्यार्थी पुरस्कार, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा;

1989 भारत भारती पुरस्कार, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान,

1990 महाराष्ट्र गौरव, महाराष्ट्र सरकार,

1991 साधना सम्मान, केडिया स्मृति न्यास,

1992 महाराष्ट्राच्या सुपुत्राचे अभिनन्दन सम्मान, वसन्त राव नाईक प्रतिष्ठान,

1994 व्यास सम्मान, के के बिडला फाउण्डेशन,

1996 शासन सम्मान, उत्तर प्रदेश हिन्दी सस्थान,

1997 उत्तर प्रदेश गौरव, अभियान सम्मान संस्थान।

भारती जी, जीवन के अन्तिम क्षणों तक साहित्य साधना में रत रहे। डॉ0 भारती की बहुमुखी प्रतिभा ने उन्हे आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक गौरवशाली रचनाकार एव दृष्टि-सम्पन्न प्रबुद्ध चितक के रूप में प्रतिष्ठापित कर दिया। पर काल के क्रूर कराल ने ऐसे अद्वितीय प्रतिभाशाली रचनाकार और उत्कृष्ट शैलीकार को हमारे बीच से उठा लिया। 30 सितम्बर सन् 1997 ई0 को डॉ0 भारती सदैव के लिए इस संसार से चल बसे। उनके साथ एक रचनात्मक-लय का लोप हो गया। भागवत पर रखी हुई साहित्य-रचना की बॉसुरी नियति के कर्कश स्वर में सदा के लिए गुम हो गई-

"आज माथे पर नजर में बादलों को साधकर

रख दिये तुमने सरल संगीत से निर्मित अधर

आरती के दीपको की झिलमिलाती छॉह में

बॉसुरी रक्खी हुई ज्यों भागवत के पृष्ठ पर।"[21]

सन्दर्भ : संकेत

1 डॉ0 धर्मवीर भारती ठडा लोहा, पृष्ठ 46, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन वाराणसी (द्वि0स0 1970)

2 डॉ0 धर्मवीर भारती ठेले पर हिमालय, पृष्ठ 131, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, (प्र0सं0-1958)

3 डॉ0 चन्द्रभान सोनवणे-'धर्मवीर भारती का साहित्य: सृजन के विविध रंग'-पृ0 सं0-3, उद्धृत डॉ0 पुष्पा वास्कर-'धर्मवीर भारती व्यक्ति और साहित्यकार' प्र0सं0- 1987 ई0, अलका प्रकाशन, कानपुर

4 डॉ0 धर्मवीर भारती चॉद और टूटे हुए लोग, पृष्ठ 262, किताब महल, इलाहाबाद, प्र0सं0 1955

5 डॉ0 धर्मवीर भारती गुनाहों का देवता, पृष्ठ 9, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 15वा सस्करण-1977

6 युद्ध यात्रा (टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन) - सन् 1972 ई0

7 डॉ0 रघुवश जेल और स्वतंत्रता- पृष्ठ 107-108 लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र0सं0 1978

8 डॉ0 पुष्पा वास्कर· धर्मवीर भारती - व्यक्ति और साहित्यकार; पृष्ठ 23, अलका प्रकाशन, कानपुर (प्र0सं0 1987)

9 डॉ0 धर्मवीर भारती· गुनाहों का देवता-भूमिका, पृष्ठ 1-2, भारतीय ज्ञान प्रकाशन- 15वां संस्करण-1977

10 अज्ञेय 'दूसरा सप्तक' सम्पादन-1951, पृष्ठ 178, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली

11 डॉ0 धर्मवीर भारती: ठंडा लोहा-भूमिका, पृष्ठ 1-2, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5, द्वि0 सं0-1970

12 डॉ0 धर्मवीर भारती: अन्धयुग - पृष्ठ 12, किताब महल, इलाहाबाद-सं0 1983

13 डॉ0 धर्मवीर भारती सूरज का सातवाँ घोड़ा, पृष्ठ 9, साहित्य भवन लि0, इलाहाबाद, स0- 1955 ई0

14 डॉ0 धर्मवीर भारती कनुप्रिया-भूमिका, पृष्ठ 1, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, सप्तम स0 1981 ई0

15 डॉ0 धर्मवीर भारती . नदी प्यासी थी-भूमिका, पृष्ठ 8, किताब महल इलाहाबाद- सं0- 1954

16 डॉ0 धर्मवीर भारती. नदी प्यासी थी-आवरण, पृष्ठ 1, किताब महल इलाहाबाद- सं0- 1954

17 डॉ0 धर्मवीर भारती कहनी-अनकहनी-दूसरा संस्करण-भूमिका, पृष्ठ 1, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन- 1972

18 डॉ0 हरिवश पाण्डेय-धर्मवीर भारती चितन और अभिव्यक्ति, पृष्ठ 167, अतुल प्रकाशन. कानपुर स0- 1991

19 कैलाश जोशी भारतीय उपन्यास साहित्य, पृष्ठ सख्या 26, उद्घृत- डॉ0 धर्मवीर भारती की साहित्य साधना (सपा) डॉ0 पुष्पा भारती- भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली सं0-2001

20 डॉ0 धर्मवीर भारती· देशान्तर-प्रथम संस्करण-पृष्ठ संख्या 5, भारतीय ज्ञानपीठ, स0- 1907

21 डॉ0 धर्मवीर भारती ठंडा लोहा, पृष्ठ संख्या 33, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वि सं0- 1970

द्वितीय अध्याय

छायावादोत्तर परिदृश्य और डॉ0 भारती की रचना-यात्रा

किसी भी चिन्तन-प्रक्रिया अथवा विचारधारात्मक उन्मेष के मूल में पूर्ववर्ती विचारक्रम अवश्य होते हैं। उनका अपरोक्ष प्रभाव भी उक्त प्रक्रिया से जुडा होता है। पूर्ववर्ती चिन्तन के परिपेक्ष्य में ही पारिस्थितिक ऊष्माजनित-प्रक्रिया द्वारा कुछ नवीन को प्रतिष्ठा देने का प्रयास होता है। प्राचीन और नवीन पूर्व और पर का क्रम अन्योन्याश्रित है तथा यही उनके अस्तित्व का आधार है। छायावादोत्तर परिदृश्य का संदर्शन भी छायावादी काव्यधारा के परिप्रेक्ष्य में ही सम्भव है, इतर नहीं। छायावादी काव्यधारा में शब्द अपने स्वभावगत मूल्य से दूर होकर साकेतिक बोध देते रहे। भाषा उडान सी भरती दृष्टिगत होती थी, परवर्ती काल में शब्द निजप्रकृत अर्थसधान ग्रहण करने लगे, भाषा कल्पना परी की क्रोड से उतरकर सवेदनात्मक अर्थभावी वन सास्कृतिक अतिशयता के धरातल पर स्थिर होने लगी। अब राष्ट्रीय और सास्कृतिक जागरण सश्लिष्ट होकर एक-दूसरे के प्रतिस्पर्धी बन गए। सच तो यह है कि छायावादोत्तर परिदृश्य का रेखाकन उससे पूर्व ही हो चुका था, इस काल में उसने मूर्त रूप धारण किया। सूत्र की सरचना हो चुकी थी, उसकी विवृत्ति इस काल में हुई। उस विवृत्ति में सास्कृतिक तत्व विशेषत विवेचित हुए "छायावादोत्तर काव्य के विविध रूपों में समग्र सांस्कृतिक चेतना के स्थान पर जनजीवन और उसकी विषमताओं की पहिचान तीव्रतर होती है। यों भारत के भौगोलिक राजनीतिक नक्शे में भारतजन उभरते दिखते है। जबकि छायावादी काव्य में राष्ट्रजागरण से अधिक समग्र चेतना का जागरण और आवाह्न है। उसमें अन्तर्निहित शक्ति के विकास का रचनात्मक उपक्रम है। यहाँ राष्ट्रीय से अधिक सम्पूर्ण सांस्कृतिक जागरण प्रधान है। राष्ट्रीय जागरण वस्तुत· सास्कृतिक जागरण के अंग रूप में आता है जो पुर्नजागरण की मूल प्रक्रिया के अनुरूप है। यों कह सकते है कि छायावाद की राष्ट्रीयता में आधार राजनीति की अपेक्षा संस्कृति है।"[1] जहाँ तक राष्ट्रीय सांस्कृतिक विचारधारा की जीवतंता का, उसकी प्रखर अभिव्यक्ति का प्रश्न है वह वस्तुत· छायावादोत्तर काल से पूर्व अथवा इस काल के प्रारम्भ का ही सर्जन है। "अधिकांश सर्जन छायावादोत्तर काल के पहले का है अथवा छायावादोत्तर काल के प्रारम्भ का। मैथिलीशरण गुप्त, निराला, पंत, महादेवी अपना सर्वोत्तम काव्य सन् 1936 के पहले दे गए थे। बच्चन अथवा नरेन्द्र ने अपना सर्वोकृष्ट काव्य छायावादोत्तर काल के प्रारम्भ में दिया। अपवाद एक दिनकर है जो

छायावादोत्तर काल में ही परिपक्व हुए। निराला जी की एक विशेषता यह है जहाँ उनके अधिकांश समवर्तियों का क्रमश स्पष्ट ह्रास हुआ, वहां स्वयं निराला ने अपनी सृजनशील जागरूकता बराबर कायम रखी। छायावादोत्तर कविता के मूल्याकन की दिशा में प्रसंगात् यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि इस काल में जो भी मूल्यवान काव्य आया है उसका श्रेय किन्हीं छायावादी सस्कारों को नहीं है। रागात्मक समृद्धि वहां है, जहाँ वास्तविक स्थितियो के वीच से गुजरते हुए जागरूक मानव मन की अधिक से अधिक जीवन्तता मूर्तिमान हुई है और जहाँ आज की वास्तविकता को देखने के लिए कोई विजन मिलता है। इस प्रकार रागात्मक व्यापकता पन्त के 'लोकायतन' में नहीं मुक्ति बोध के 'अंधेरे में' कविता मे है।''[2]

छायावादोत्तर काल की सर्जन का उत्स छायावाद काल ही रहा है जिसने कवियों को खूब आकर्षित किया। कारण यहाँ शब्दार्थ की वक्रता और कल्पना के लिए उन्मुक्त द्वार मिला। ''वस्तुत· छायावाद में अभिधा का एकान्त अभाव है वहाँ प्रत्येक अनुभूति व्यंजना और लक्षणा के सहारे अत्यन्त निगूढ तथा सूक्ष्म भाव-आवर्तो द्वारा संचरित होती प्रतीत होती है। यह गूढार्थ यह संगोपन और वाक्य वैचित्र्य एक विशेष प्रकार की भंगिमा को जन्म देता है।''[3] छायावादी काव्यधारा में कवियों को निज 'स्व' की प्रतिष्ठा के लिए आत्म प्रकाशन का मार्ग प्रशस्त हुआ। अपनी अनुभूतियों को चमत्कार जन्य अर्थ संकेत में समेटते रहें। वह अर्थ सकेत कहीं राष्ट्र प्रेम का बोधक बनता तो कहीं पारम्परिक नैतिक रुढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह स्वर को जन्माता। कल्पनाशीलता तदयुगीन कवियों के लिए अमोध वरदान रही। जहाँ उन्हें राष्ट्र-प्रेम के भाव प्रकटन में सफलता मिली वहीं विरोधी स्वर मुखर न हो सका। फिर वह आत्म-संवेदना बन गई और वह यथार्थ से आहत होकर पीडा की घनीभूत छाया में कवियों ने अपने व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया। आधार बना विरह-मिलन। फिर ऐसे विरह मिलन के भाव व्यक्त करने के लिए कवियों ने प्रकृति के उपादानों को माध्यम बनाया। प्रेम-सौन्दर्य को प्रकट करने के लिए प्राकृतिक उपादान पूर्ण सहायक थे। इस प्रवृत्ति से धर्मवीर भारती भी अप्रभावित न थे ''जहाँ तक भारती की प्रारम्भिक रचनाओं का सवाल है वे मूलतः रोमानीभाव-बोध की है। भारती की नयी कविता को आधुनिक

परिवेश में रोमैटिक मूड के सर्वाधिक निकट माना जा सकता है जिसमें रूप सौन्दर्य की तीखी आसवित है।''[4] यह तत्कालीन काव्यधारा का प्रवाह था जिसमें किसी किशोर का सर्जक मन बहेगा ही। अज्ञेय ने भारती के किशोर सर्जक का आकलन कर लिखा है–''उन पर किशोर कल्पना का काफी प्रभाव पडा है, अचेतन रूप मे। जब उनकी चेतना ने पंख पसारे तब छायावाद का बोलबाला था, किंतु उसे लगा कि कविता की शाहजादी इस अपार्थिव कल्पनाओ, टेढेमेढे शब्द जालों, अस्पष्ट–रूपको और उलझे हुए जीवन–दर्शन की शिलाओं में बधी उदास जलपरी की तरह कैद है और भारती को चाहिए कि वह उसे मुक्त कर सर्वथा मानवीय धरातल पर उतार लाये ताकि वह फैली–फैली वादी की बालू पर आदम की संतानों के साथ बेहिचक आँख–मिचौनी खेल सकें, उनके सीधे–सादे सुख–दु:ख, वासनाओं–कामनाओं, को समझ सकें। इसी लिए भारती ने सबसे पहले लिखें सरलतम भाषा में रंग–विरंगी चित्रात्मकता से समन्वित साहसपूर्ण उन्मुक्त रूपोपासना और उद्दाम यौवन के सर्वथा मांसल गीत जो न तो मन की प्यास को झुठलाए और न उसके प्रति कोई कुंठा प्रकट करे। आदमी की सरल और सशक्त अनुभूतियों के साथ–साथ निडर खेल सकें बोल सके।''[5] अज्ञेय का यह आकलन अत्यन्त सटीक है समीचीन है। कारण धीरे–धीरे छायावादी काव्यधारा की रागात्मकता, अतिकल्पना, अतियथार्थता, अप्रस्तुत बिंब विधानो मानवेतर रूप वर्णनों से अन्तर्मन उकताने लगा था। अदेही की पीडन–व्रीडन, राग–अनुराग, विरह–मिलन को देही में आरोपित करने की प्रक्रिया अब छलना लगने लगी थी। अत कवि मन यथार्थ और प्रस्तुत की और उन्मुख होने लगा।

यह तो एक शाश्वत् क्रम है कि पूर्ववर्ती परम्परा के दोष अथवा जटिलता परवर्ती काल में गुण या ग्राहकता बनकर उजागर हो उठ्ते है। साथ ही नवोन्मेष नवचेतना से परिपूर्ण नवसृजन, नवनिर्माण के निमित्त नवभावभूमि विनिर्मित होती है। ऐसे ही प्रक्रिया–क्रम में छायावादी–काव्यधारा इतर दिशा की ओर उन्मुख हुई। अर्थात् दार्शनिक भाव बोध के चरम, अतिवैयक्तिकता, यथार्थ–विमुखता, अपार्थिव–चित्रणों रूपोपासना–वृत्ति एवं अतिशय रागात्मकता पर जीवन की 'सांसारिकता और अस्तित्व की एकरसना अनिश्चय तथा भयाक्रांतता ने संवेदनशीलता को जन्म दिया। इस सवेदनशीलता ने छायावाद के अदेही

सौन्दर्य, रूपाकर्षण, काल्पनिक विरह–मिलन परक परिदृश्यों से सर्जकमनको विमुख होने के लिए उत्प्रेरित किया। काव्यांदोलन ने गति बदली फिर क्या था? प्रगतिवाद, छायावाद का विजेता बन गया। क्यों? इसलिए कि जीवन तथा युग के यथार्थ की अभिव्यक्ति आवश्यक बनी, छायावादी कल्पनाशीलता के कारण युग चेतना की अभिव्यक्ति देने में अब कवि असमर्थ था। डॉ0 नामवर सिह ने इसे 'परम्परा के स्वाभाविक विकास' की संज्ञा दी है। प्रगतिवाद हिन्दी साहित्य में 1930 के वाद अपने समय पर पैदा हुआ, जव कविता में कल्पना के स्थान पर ठोस वास्तविकता और वैयक्तिकता के स्थान पर सामाजिकता का आग्रह वढने लगा था। यह हिन्दी साहित्य की परम्परा का स्वाभाविक विकास है।"[6] हम अधिक स्पष्ट कर कह सकते है कि यह प्रगतिवाद हिन्दी साहित्य में 1936 के आसपास अवतरित हुआ जिसे साहित्य की वह विधा कहा गया है जो छायावादी काव्यधारा की अतिशय वैयक्तिकता तथा कल्पनाशीलता के विरोध में उभरा। प्रगतिवादी साहित्य के विषय बने–मार्क्स का भौतिकवादी जीवन–दर्शन और शोषित–पीडित किसान तथा श्रमिक। इस धारा की मुख्य प्रवृत्तियाँ रही सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति, मार्क्सवादी–चिन्तन की प्रतिष्ठा और भारतीय धार्मिक–सास्कृतिक परम्पराओं का विरोध और अन्तत· नयी सौन्दर्य चेतना। इस साहित्यरूप की मूल अभिव्यक्ति सामाजिक चेतना रही, व्यक्ति चेतना गौण। भारती जी प्रगतिवाद को स्वीकार करते है परन्तु प्रतिष्ठानहीं देते– "पिछले तीन–चार वर्षो में 'मार्क्सवाद के अध्ययन से मुझे जितनी शान्ति मिली है–जितना बल और आशा मिली है–हिन्दी की मार्क्सवादी समीक्षा और चिन्तना से उतनी ही निराशा और असन्तोष भी मिला है।"[7] अर्थ यह है कि भारती जी मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित है किन्तु रचना और चिंतन के धरातल पर वे प्रगतिवादी नही है। भारती को मार्क्सवादियों द्वारा हिन्दी साहित्य को दी गई वैज्ञानिक दृष्टि तो स्वीकार्य है किन्तु उनकी संप्रदायगत दृष्टि अस्वीकार है।[8] इसीलिए भारती ने छायावाद को 'झूठा प्रभामंडल' और प्रगतिवाद को 'अंधी सामूहिकता' की संज्ञा दी है।

प्रयोगवाद और डॉ0 धर्मवीर भारतीः

भारती जी का आविर्भाव कविरूप में 'दूसरा–सप्तक' में हुआ। उन्होंने अपने वक्तव्य में लिखा है 'कविता सृजन को वे कभी गंभीर कर्म के रूप में नहीं अपना सके। सच तो

यह है कि भारती की कविता उससे कतई सतुष्ट नहीं है। यदि कुछ पूंछ्गे तो कविता बहुत नाराज होकर मन भरे स्वर में कहेगी न जाने कहा था किसने, इससे कविता लिखने को, छठे-छमासे फुरसत मिली तो याद कर लिया, मुँह पर मीठी-मीठी वातें कर ली, फिर जैसे को तैसे।''[9] भारती जी का इस सकलन मे समावेश को लेकर कतिपय आलोचकों द्वारा विपरीत टिप्पणी भी की गई। डॉ0 नामवर सिह ने लिखा है, '1951 मे 'दूसरा सप्तक' का निकलना अप्रत्याशित नहीं कहा जा सकता। 'दूसरा सप्तक' में कवियो का चुनाव भी दृष्टव्य है। शमशेर बहादुर सिह का समावेश तो एक तरह से भूल सुधार जैसा ही है किन्तु भवानी प्रसाद मिश्र के चुनाव के पीछे कौन सी दृष्टि थी- इसे समझना कठिन है। इसी प्रकार रघुवीर सहाय, नरेश मेहता, हरि व्यास जैसे नये कवियों की संगति तो स्पष्ट है किन्तु साही के शब्दों मे 'वायरनिक मुद्रा वाले' धर्मवीर भारती का चुनाव, 'तार-सप्तक' की प्रतिष्ठा को स्मरण करते हुए निश्चित रूप से असगत है। समकालीन पत्रिकाओं में 'दूसरा सप्तक को सामान्यत प्रशसा ही प्राप्त हुई किन्तु इसकी ऐतिहासिकता का चर्चा करने वाला कोई न मिला।''[10] कुछ भी दूसरा-सप्तक के कवियों में पाक्तेय होना 'भारती' का प्रयोगवादी होना सुनिश्चित हो गया। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद प्रकारान्तर से समानान्तर विचारधारा की भूमि पर अवतरित हुए किन्तु पहला तो नही दूसरा स्थिर हो गया। यद्यपि पहले में समष्टिगत चेतना को प्रतिष्ठित करने का प्रयास रहा दूसरे में उसके विपरीत व्यष्टि सत्य को इंगित करने का तथापि दूसरा प्रयोगवाद प्रतिष्ठित हुआ है। कारण उस विचारधारा में व्यक्ति सत्य को महत्व दिया गया। किसान, श्रमिक आदि के चिण द्वारा समष्टिगत इयत्ता की भावना मात्र एक उद्‌घोष का रूप ले सकी, व्यावहारिकता से दूर रही। मध्यवर्गीय समाज के 'व्यक्ति-सत्य' को प्रयोगवाद का विषय सुनिश्चित कर सर्जन को एक नवदृष्टि और नया दिग्-बोध दिया गया। डॉ0 जगदीश गुप्त का आकलन कितना सार्थक है "प्रगतिवाद का हुंकार अवधारणात्मक बोध बनकर रह गया। रचना को प्रभावशाली बनाती है-रचनाकार की अनुभूति और उसे स्थायित्व मिलता है- अनुभूति की व्यापकता और गहराई से। प्रगतिवादी स्वर में अनुभूति की गहराई का प्रायः अभाव था। उसके विषय की व्यापकता भी एक वर्ग विशेष मजदूर और किसान से संबंधित थी। इसीलिए प्रगतिवाद की कोख से प्रयोगवाद का जन्म हुआ जो जीवन में नये सत्य को, नये यथार्थ-बोध को लेकर अवतरित हुआ है।''[11]

सच तो यह है कि कविता का कोई वाद नहीं होता, वह तो सार्वभौम सत्य का विवेचन करती है जो कथमपि एकातिक नहीं हो सकता। इसी प्रकार प्रयोगवाद भी कोई वाद नहीं यह एक काव्य-सर्जना का नवीन दिशा बोध है। स्वय अज्ञेय जी ने भूमिका मे स्पष्टत. लिखा है- ''प्रयोग अपने आप मे इष्ट नहीं है, वह साधन है, और दोहरा साधन है, क्योंकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है, जिसे कवि प्रेषित करता है। दूसरे वह उस प्रेषण' की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का भी साधन है अर्थात् प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है और अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त कर सकता है। वस्तु और शिल्प दोनों के क्षेत्र में प्रयोग फलप्रद होता है।''[12]

'दूसरा-सप्तक' के प्रकाशनोपरान्त कतिपय प्रतिकूल टिप्पणियाँ भारती के नाम-समावेश को लेकर हुई किन्तु अज्ञेय के उपरिलिखित कथन से तारतम्य जोडा जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि उनके नाम का समावेश संगत रहा है। भारती जी का लेखन परम्परा के विरूद्ध केवल परम्परा तोडने के उद्देश्य से नहीं, साथ ही न प्रयोग के लिए उन्होंनें लेखन किया वरन् स्वस्थ आत्मविश्लेषण की भावाभिव्यक्ति के लिए काव्य सृजन किया। उनकी काव्य सर्जना का आधार रहा है जीवन की अनुभूति तथा आस्था-विश्वास की तीव्रता। प्रगतिवाद की समष्टिगत-सत्य विवेचना के विपरीत व्यक्ति सत्य की प्रतिष्ठा निमित्त प्रयोगवाद का अवतरण हुआ था, इसलिए भारती जी ने व्यष्टि-मन के सत्यों का उद्घाटन अपनी कविताओं में किया है। प्रयोगवादी काव्यधारा में मध्यवर्गीय समाज के आर्थिक तथा समाज की मिथ्या आदर्शवादादिता के विरूद्ध सघर्ष को स्वर दिया गया। साथ ही प्रगतिवाद के समष्टिगत सत्य में उपेक्षित लघु मानव के दु:ख-सुख एवं अन्य सामाजिक विषमताओं का चित्रांकन प्रयोगवादी काव्यधारा में एक विषय बना। वहाँ पीडन की नितान्त वैयक्तिकता नहीं अपितु वहाँ उसे जीवन के सत्य रूप में उपस्थित किया गया है। भारती जी ने 'लघुमानव' के इस जीवन सत्य को 'अन्धा युग' में प्रहरी की व्यथा में अनुभूत किया है। प्रहरी की यह व्यथा समाज की सडी-गली संस्कृति के पक्ष में शस्त्रासत्रों सहित सदा तत्पर रहकर भी निरर्थक बन गये-

''थके हुए है हम
पर घूम-घूम पहरा देते है,

इस सूने गलियारे में

लेकिन रक्षणीय–

कुछ भी नहीं था वहाँ।''

सप्तकीय अर्थात् प्रयोगवादी कवियो की रचनाओं में आस्था की अपेक्षा अनास्था का, परम्परा की अपेक्षा उसके विरोध का स्वर तीव्रता से मुखर हुआ है। विद्रोह, आक्रोश, कुण्ठा, विद्रूपता आदि के मूल मे वही अनास्था है। प्रयोगधर्मी कवि भारती परम्परा और युग–सापेक्ष्य दृष्टि के रचनाकार है। उनकी यह प्रवृत्ति उनकी रचनाओ मे सहज ही मिल जाती है। भारती चिन्तन मे सदैव संयमित है। वैयक्तिक चेतना के स्वर उनकी कविताओं में है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि उनमें परंपरागत समष्टि भाव की अभिव्यक्ति का अभाव है। कवि की धारणा है कि व्यक्ति सदा से ही किसी न किसी रूप में तिरस्कृत होता रहा है। कारण जीवनगत स्थितियाँ और जागतिक विषमताओं में से कुछ भी हो सकती है। यह परिणाम मध्यम–वर्गीय जन को प्राय. अधिक भुगतान पडता है। वह ऐसे विषम परिणामों से जूझता रहता है, टक्कर लेता रहता है, पराजित हो जाता है। सारा दोष वह अपनी चेतनता तथा सवेदनशील प्रकृति को स्वीकारता है। भारती यह अनुभव करते है।

प्रयोगधर्मी कवि कोरे और काल्पनिक आदर्शवाद, सनातन नैतिकता की अभिव्यक्ति का पक्षधर नहीं है। समाज व्यापक जीवन की तमाम आदर्शपरक सैद्धांतिक बातों को अपने अनुभवों में समेट, भली भाँति गला–पचाकर स्वानुभूतिजन्य बनाकर कविता में अभिव्यक्त करना कवि कर्म स्वीकार करता है। अभिप्राय यह है कि भोगा हुआ यथार्थ अथवा अनुभूत सत्य की अभिव्यक्ति को ही महत्व दिया गया है। यही कारण है कि प्रयोगधर्मी काव्यधारा में सामाजिक–वैषम्य से उद्भूत पीडन, कटुत्व आदि का अंकन सामान्य वैशिष्ट्य है, इसका प्रमुख कारण है व्यक्तिगत अनुभूति का स्वर जो शब्दों में उभरता है। प्रयोगवाद का अतिशय पीडा बोध व्यक्तिमन के तनाव, जीवन में पराजय बोध, यह सब इसलिए कि वह समाज की व्यापक भूमि से कटकर निज की कुण्ठाओं में बन्दी हो गया, उसके वैयक्तिक अनुभूति का दायरा इतना सीमित हो गया कि उस पीड़ा–बोध के लिए अभिशप्त होना पड़ा। प्रयोगवादियों के गीतों विशेषकर दमित–वासनाओं के गीतों का भी जीवन को नितान्त

वैयक्तिक ढ्ग से देखना ही है। इस दिशा में अज्ञेय, शमशेर बहादुर सिंह, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ''प्रयोगवाद का कवि व्यक्ति जब जय की स्थिति मे होता है तब रोमानियत का गीत गाता है। 'इन फिरोजी होठों पर बरबाद मेरी जिन्दगी' और जब जिन्दगी की समस्याए उसे घेरती है तब वह बृहन्नला बन जाता है अथवा जमकर ठण्डा लोहा।''[4] ऐसी स्थिति की ही अनुभूति भारती की अभिव्यक्ति ''अगर कविता मर गई तो क्या हुआ अभी मेरी आखिरी आवाज बाकी है।''[5] सच यह है कि प्रयोगधर्मी कवि की दृष्टि में अनुभूति के क्षेत्र और अभिव्यक्ति के उपकरण विकसित हो गए परिणामत काव्य में साधारणीकरण की समस्याएं जन्मीं। यही कारण है कि भारती जी कहते है-''आज की आधुनिकतम कविता के सही मूल्य के लिए एक युग पुराना 'रस-सिद्धान्त' बहुत नाकाफी मालूम होता है इसमे नये अध्याय जोडने होंगे।''[6] उनका कहना उचित भी है क्योंकि उनकी दृष्टि में काव्य की परम्परागत पुरानी भाषा पुराने उपमान व्यर्थ है। उनकी अपनी भाषा नये उपमान, नये शब्द प्रयोग की नयी विधि बनी। यद्यपि यह कदाचित् साहित्यिक अभिरुचि से शून्य और अप्रभावी ही रहे। हॉ, भारती जी इस दृष्टि से नितान्त असफल नहीं कहे जा सकते-

''घनी बर्फ पर
इस ऊबड-खाबड घाटी मे
पाण्डवराज युधिष्ठिर के काले कुत्ते सी
पीछे-पीछे पूँछ दबाए आखिर कब तक संग निभायेगी तू मेरा ?
वो मेरी परछांही, मेरा साथ छोड़ दे।
यह मरीज की अन्तिम सांसों सी
टेढी-मेढी पगडण्डी
उस पर अभी न जाने कितनी दूर
मुझे चलते जाना है।''[7]

शिल्प की दृष्टि से, भाषा-शब्द प्रयोग की दृष्टि से, उपमान तथा प्रतीक की दृष्टि से यह कविता सर्वथा ग्राह्य है। अनुभूति की अभिव्यक्ति सहज तथा भाव-बोध गम्य है। सभी उपमान और प्रतीक जीवन की विभिन्न स्थितियों का बोध कराते है।

प्रयोगवादी काव्यधारा का कवि अनुभूति वैविध्य में रमा पर सयमित होकर स्थिर न हो सका। वहाँ विश्रृखलता है, अनिस्थिरता है, विकीर्णता है। अनुभूति की सारी तीव्रता इसी कारण मानवीयता के व्यापक स्वरूप को अभिव्यक्ति न दे सकी। यही कारण है कि प्रयोगवादी कविताओं मे समष्टि–सत्य बनने का सामर्थ्य न आ सका। व्यष्टि–सत्य जब समष्टि–सत्य बन जाय तभी सार्थकता है। इस सन्दर्भ मे स्वय भारती जी कहते हैं–"अनुभूति की बेचैनी मे ही वह कविता लिखता और जब उसे पता चलता है कि ऐसी रचना में हुंकार नहीं है तो वह उसे फाडकर फेंक देता है।"[10]

प्रयोगधर्मी कवियो मे भारती पांक्तेय नहीं अग्रगण्य है। उनके लिए प्रयोगवाद अवधारणात्मक उद्‌घोष नहीं वरन् काव्य–चेतना को तीव्रतर अनुभूति के माध्यम से, मानवीय अन्तश्चेतना से जोडने वाला कविपंथ है। उन्होने निज–कविताओं में, सामाजिक विवशताओं, कुण्ठाओं का गरल पान कर नीलकण्ठ बन गहनतम अनुभूति को शब्द देकर, वैयक्तिक जीवन के सत्य को सार्वभौम व्यापक–सत्यरूप में रूपायित करने का प्रयास किया है। उन्होने भोगे हुए समाज के मध्य रह साक्षतीकृत तथा अनुभूत सत्य को समष्टिगत जीवन–सत्य के रूप मे कविता द्वारा प्रतिष्ठापित कर देने का प्रयास किया है। मानवीय धरातल पर भले ही वैयक्तिकता की अनुभूति प्रतीत हो परन्तु उसे व्यक्त करने वाले सभी उपमान तथा प्रतीक, समाज से, समाज जीवन से गृहीत होने के कारण समष्टि–सत्य की स्थापना करते–करते चलते है। उनका काव्य संग्रह 'ठण्डा लोहा' ऐसी ही अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देने वाली कविताओं का संग्रह है। एक उदाहरण –

"यह शाम मुझे,
इस तरह निगलती जाती है,
कोहरे की ऑख फैलाती–
नर भक्षिणी
यम की चिडिया सी
यह जाडे की मनहूस शाम
मंडराती है।"[11]

यह कहना कथमपि असगत न होगा कि प्रयोगवादी काव्यधारा की समग्र अवधारणा, भावगत वैशिष्ट्य, सघन अनुभूति की अभिव्यक्ति यदि कहीं समन्वित रूप से उपलब्ध है तो 'दूसरा सप्तक' समाविष्ट तथा 'ठण्डा–लोहा' मे सग्रहीत भारती की कविताओं में। इस दृष्टि से भारती जी प्रयोगधर्मी काव्यधारा के विशिष्ट कवि हैं।

नयी कविता और भारती :

नयी कविता लघुमानव अर्थात् सामान्य–जन की अभिव्यक्ति रूप केन्द्र विन्दु पर अवस्थित सकीर्णता के विरूद्ध शखनाद करने वाली प्रगतिवादतथा प्रयोगवाद के आगे की विधा है। आज के जीवन का यथार्थ चित्रित करने वाली जीवन समग्र की कविता का नामकरण किया गया–नयी कविता। प्रकारान्तर से स्वातंत्र्योत्तर–कालीन जीवन–मूल्यों की अभिव्यक्ति है। जिस प्रकार 'तार–सप्तक' काव्य संकलन प्रकाशित कर सन् 1943 में अज्ञेय ने प्रगतिवाद को नकार प्रयोगवाद की स्थापना की और प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रवर्तक बने। तथैव 'नयी कविता' का भी नामकरण कर इस विधा के भी पुरस्कर्ता बने– "वर्तमान अर्थ में 'नयी कविता' नामकरण एक रेडियो वार्ता (1952) मे अज्ञेय का किया हुआ है। प्रयाग मे नये लेखको की गोष्ठी 'परिमल' (स्थापित–1944 ई0) से भी अज्ञेय का निकट सबध रहा है। सच तो यह है कि अज्ञेय और परिमल के निकट सम्बन्धों में मानो प्रयोगवाद से नयी कविता का सक्रमण सम्भव बनाया।"[20] उस परिमल की गोष्ठियों, चर्चाओं में डॉ0 जगदीश गुप्त, डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी, लक्ष्मीकांत वर्मा, केशवचन्द्र वर्मा, विजय देव नारायण साही, रघुवश आदि के संग भारती भी सम्मिलित होते रहे। डॉ0 रघुवंश ने लिखा है "जब मै साहित्य के परिमलीय दिनों का स्मरण करता हूँ तो सारे उत्साह उल्लास के केन्द्र में तुम्हारा व्यक्तित्वसामने आ जाता है। वे दिन याद आते है तो आज भी उन्माद सा छा जाता है। वह हमारी मस्ती का आलम था। साहित्य क्षेत्र में हम भले ही नवागन्तुक रहे हों, पर जिस उत्साह आवेश के साथ हमारा प्रवेश हुआ था, वह साहित्य में एक महत्वपूर्ण घटना थी। हमने देश की पराधीनता के युग में प्रारम्भ किया था पर हमारे चिन्तन में स्वतंत्रता का आवेश था। प्रगतिवादियों से विरोध का मुख्य आधार यही था।"[21] स्पष्ट है कि भारती नयी कविता काव्यान्दोलन का शंखनाद करने वालों में एक रहे। नयी कविता से

भारती का सम्बन्ध बना और उनके सम्पूर्ण जीवन-पर्यन्त अविछिन्न रहा।

समय-सापेक्षता, विषय-वैविध्य, लोकाभिमुखता और मानवीय-मूल्यपरक आधुनिक भाव-बोध का समन्वित रूप है नयी कविता। इससे पूर्व प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद ने सामान्य जन की चित्तवृत्तियों, उनके मानसिक उत्कलनों की उपेक्षा कर अतिमानवीयता अथवा मानवीय औदात्य का ढिढोरा पीटा। कविता का केन्द्र विन्दु सदा से मानव रहा। उसे प्रयोगात्मक अतिशयता ने पूर्णत नकार दिया था, मार्क्सवादी विचारधारा का प्रचार-प्रसार उसकी प्रतिस्थापना की ललक में कवि व्यक्तित्व, मानवीय अस्मिता तथा भाव जगत से कवि कर्म को विमुख कर दिया था। कवि और कविता दोनों दायित्व विस्मृत कर बैठे थे। नयी कविता कवि के दायित्व बोध का शंखनाद है। नयी कविता मानव जीवन की आस्था, अनास्था, शिव, अशिव, ग्राह्य-अग्राह्य के साथ-साथ मनुष्य के सुख-दुख, विपन्नता, तनाव, एकान्तता आदि पक्षों का अंकन करती है। जीवन मूल्य के अनुद्घाटित पक्ष को उजागरकरती है। मानव जीवन की शिवता-अशिवता उसकी शुचिता-अशुचिता, पूर्णता-अपूर्णता आदि विषयक किसी भी वस्तु किसी भी स्थिति अथवा किसी भी भाव को इस विधा में महत्वहीन नहीं माना गया। आधुनिक जीवन-बोध की सुष्ठुतम अभिव्यक्ति कानाम है- 'नयी कविता'। "'नयी कविता' वायवीय कल्पना लोक, अलौकिक, भाव-जगत नहीं वरन् जीवन की वास्तविकताओ की सार्थक अभिव्यक्ति करती है। 'नयी कविता' ने लोक जीवन की अनुभूति, सौन्दर्य-बोध, प्रकृति और उसके प्रश्नो को एक सहज और उदार मानवीय भूमि पर ग्रहण किया। साथ ही साथ लोक जीवन के बिम्बों, प्रतीकों, छंदों और उपमानों को लोक जीवन के बीच चुनकर अपने को अत्यधिक सवेदनपूर्ण और सजीव बनाया।"[22]

नयी कविता नामकरण निश्चित ही कुछ विशेष अपने में संजोये है। विचार का विषय है कि कविता और नयी कविता दोनों में कविता उभयनिष्ठ है अथवा कहिए सर्वनिष्ठ है। विशेषण 'नई' सम्भवत· युग और चिन्तन सन्दर्भ के संग नवीन एवं यथार्थ बिन्दु पर समग्र मानव जीवन का बोध कराता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह कविता वैयक्तिकता से हटकर आज के अर्थात् स्वातंत्र्योत्तर कालीन व्यक्ति समग्र पर केन्द्रित है। इसमें हमें सामाजिक रूढियों में जकडे मनुष्य को, उसके अस्तित्व की खोज की ललक

परिलक्षित होती है: इस विधा का सर्जक कवि मनुष्य को कुण्ठा, सन्त्रास, मृत्युवोध, अजनबीपन और हताशा के भावों से ग्रस्त है, नयी कविता द्वारा वह उसे प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयासरत है। वस्तुत नयी कविता प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों के आडम्बरी, काल्पनिक तट-बन्धो को ध्वस्त कर प्रवहमान समग्र काव्यधारा है, जिसमें समष्टि-सत्य का जीवन्त रसघोल है। नयी कविता का सर्जक परम्परा का मोहक आवरण उतार देना चाहता है क्योकि यह उसे भार प्रतीत होता हैं। सच है परम्परा जब रूढि का रूप ले लेती हैं तो वह बन्धन बन जाती है फिर गतिरोध जन्माती है। अस्तु डॉ0 जगदीशगुप्त का कथन है- ''अतिरजना, अलकरण, काव्येंतर तत्वों का सम्मिश्रण, रूढ एवं परिचित प्रतीक योजना सबसे धीरे-धीरे छुटकारा पाने का यत्न किया गया और बलपूर्वक कहूँगा कि इससे हिन्दी कविता अधिकाधिक निखरी ही है, उसका सत्य नष्ट नहीं हुआ है, नई होकर वह कविता न रही हो अथवा जिसका उद्देश्य साहित्येत्तर किसी व्यक्ति के राग-द्वेष में निहित हों।''[23] परम्परागत प्रतीकों और उपमानों की अस्वीकृति उनके स्थान पर नये प्रतीक तथा उपमान कविता को सजीवता तथा सार्थकता प्रदान करते है जो नवबोध, नवोन्मेष की सृष्टि करते है-

"दो पंखुरियां
झरी लाल गुलाब की, तकती पियासी
पिया से ऊपर भुकें उस फूल की-
ओंठ ज्यो ओंठ तले।[24]"

इस कविता में चुम्बनात्मक मुद्रा का बिम्ब फूल तथा दो पखुरियों के माध्यम से उपस्थित किया गया है। इसी प्रकार एक विलासी पुरूष का बिम्ब प्रकृति उपादान के माध्यम से-

''थका हुआ बादल
पश्चिम के श्याम निरावृत शिखरों पर
शीतल कपोल धर
क्षण गहरी नींद सो गया।''[25]

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के विचार-संक्रमण की सृष्टि अथवा दोनों में ही अन्तर्व्यजित भावों

तथा अन्तर्निहित अवधारणाओं का विकसित रूप नयी कविता में ऐसा साक्षात् हुआ और कतिपय वैशिष्ट्यो सग प्रवहमान होकर दोनो ही विधाओ को उसने समेट लिया। नयी कविता में जीवन के प्रति गहरी आस्था अर्थात् जीवन को समग्रत जीने के प्रति असीम विश्वास, उसके शिव-अशिव, पाप-पुण्य को पूरा आस्था के साथ भोगने पर बल दिया गया है। जीवन में अभावग्रस्तता मनुष्य को तोड देती है परन्तु उससे निराश न हो कर उत्साह से और साहस से आगे बढना चाहिए। कतिपय आलोचकों के मत में नयी कविता पाठक के मन में अनुकूल सवेदना नहीं जगा पाती, कारण उसमें आत्मसंघर्ष, जीवन का दस्तावेज, नया आयाम आदि शब्द-चमत्कार तो उत्पन्न करसकते है किन्तु अनुभूति की उष्मता का शैथिल्य अनुकूल संवेद्य-भाव नहीं जगा पाता। परिवर्तनशील जीवन के मूल्य सघन रूप में कवि प्राणो मे न उतर सका। साथ ही उस पर विदेशी प्रभाव है। इसका निराकरण भारती जी इन शब्दों में करते है- ''मानव नियति एक है, चाहे पूर्व हो चाहे पश्चिम। पूर्व के आधिपत्य में पश्चिम पनपा और पश्चिम की टकराहट से पूर्व और पश्चिम एक नये स्तर पर अपनी स्थिति की परस्पर आवद्धता का अनुभव कर रहे है।''[26] इस नयी कविता में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनो ही चिन्तन-धाराओं अर्थात् सामाजिक दृष्टि और व्यष्टि-सत्य समाहित है। जीवन का हरपक्ष पूरी सच्चाई के साथ चित्रित है। वैविध्य नयी कविता की विशिष्टता है। हमें यहाॅ अनुभूति की सच्चाई और उसकी व्यापकता दिखाई पडती है। भोगे हुए जीवन के प्रत्येक क्षण का लेखा-जोखा पूरी आस्था, अटूट विश्वास के साथ प्रस्तुत मिलता है। आज का कलाकार धनिक वर्ग के सामने पुंसत्वहीन हो जाता है, विवशता है उसकी। भारती की अनुभूति क्या सार्वजनीन नहीं है?[27] नयी कविता का सर्जक मानता है कि जीवन का गरल जिसने नहीं पीया, घुट-घुट कर जिसने जीवन नहीं जीया, उसकी अनुभूति निश्चित ही सत्य से परे है। जीवन की पीड़ा का अनुभव करने वाला ही जीवन की सार्थकता के प्रति विश्वस्त हो सकता है-

''आत्म विस्तार यह
बेकार नहीं जायेगा
जमीन में गड़े हुए देहों की ख़ाक से

शरीर की मिट्टी से, धूल से,

लिखेंगे गुलाबी फूल।"[28]

नयी कविता की विशिष्ट प्रवृत्ति हैं- उसकी मानवतावादी दृष्टि। इसमें हमें मानवीय सौन्दर्य नहीं, उच्चादर्श नहीं वरन् मानव की जीवन की विवशताएं है। उसके पीड़न और दर्द की बात है और यह समाष्टि सत्य है। भारती का 'प्रमथ्यु' मानव समाज के पीडन, अभावग्रस्तता का निराकरण करने के निमित्त ही स्वर्ग से अग्नि चुराता है अन्तहीन पीड़ा वह सहन कर लेता है। सम्भवत इसी मानवतावादी दृष्टि की कोख से ही 'लघुमानव' की अवधारणा उद्भूत हुई। 'लघुमानव' का अर्थ कथमपि लघुतावाची नहीं है। वस्तुत यह शब्द सामान्य जन अथवा सहज मनुष्य का बोध कराता है। यह अवधारणा नयी कविता की सर्वोत्कृष्ट देन है। हम लघुमानव का अंकन अज्ञेय, लक्ष्मीकांत वर्मा, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, गिरिजा कुमार माथुर, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, नरेश मेहता आदि की कविताओं में सहजत प्राप्त कर सकते है। 'लघुमानव' लघु व्यक्तित्व का प्रतिपादन भारती जी करते हुए कहते है- कौन जाने लघु व्यक्तित्व एक दिन सर्वथा सिद्ध वनकर महत्वपूर्ण हो जाये-

"मै रथ का टूटा पहिया हूँ

लेकिन मुझे फेंको मत! क्या जाने कब

इस दुरूह चक्रव्यूह मे

अक्षौहिणी सेनाओं को चुनौती देता हुआ

कोई दुस्साहसी अभिमन्यु आकर घिर जाये

अपने पक्ष को असत्य जानते हुए भी

बडे-बडे महारथी

अकेली निहत्थी आवाज को अपने ब्रह्मास्त्रों से

कुचल देना चाहें। तब मै

रथ का टूटा हुआ पहिया

उसके हाथों में

ब्रह्मास्त्रों से लोहा ले सकता हूँ।"[29]

अज्ञेय, लक्ष्मीकान्त वर्मा भी लघुत्वबोध की प्रतिस्थापना के प्रति पूर्णत: सचेष्ट है–

"किसी महान का उच्छिष्ट मै नहीं
किसी सभाव्य की अनुक्रमणिका नहीं
किसी समाप्ति का समापन चिन्ह नही
मै हूॅ अपने ही लघु व्यक्तित्व से जन्मा
व्यापक परिवेश का साक्षी और साक्ष्य
प्रज्ञ। विज्ञ। आत्मस्थित। क्रियाशील
यथार्थवादी। निश्शॅक। प्रबुद्ध।
मेरी लघुता है परमाणुवाही सार्थकता
क्योकि। मै अपना, मै ही नहीं,
मै तुम्हारा, तुम सब का हूँ,
आत्मविश्वास। क्रियाशील।"[30]

लक्ष्मीकान्त वर्मा लघुत्व में महानता की, लघु महानता की, लघु व्यक्तित्व में विराट की सार्वजनीन व्यक्तित्व का प्रतिभास देते है और उसकी क्रियाशीलता में समाज की गतिशीलता के संदर्शन कराते है। भारती नयी कविता में 'लघुमानव' की नयी अवधारणा को मानव की गरिमा प्रतिष्ठित होने का उदयकाल स्वीकार करते है। वह लिखते है– "मनुष्य की गरिमा का नये स्वर पर उदय हुआ और तब यह माना जाने लगा कि मनुष्य अपने आप में बिल्कुल सार्थक ओर मूल्यवान। सिद्धान्त के स्तर पर मनुष्य की सर्वाधिक और सर्वोपरि सत्ता स्थापित हुई।"[31] अस्तु यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि 1954 में 'नयी–कविता' नाम से एक अर्द्धवार्षिक सकलन प्रकाशित हुआ। यह 'नयी–कविता' आन्दोलन का प्रकारान्तर से शंखनाद था। सम्पादक डॉ0 जगदीश गुप्त और डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी रहे। इस आन्दोलन में प्रायश प्रयोगवादी कवि धीरे–धीरे सम्मिलित हो गए। नयी कविता प्रवेशांक में अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर मांचवे, भवानी प्रसाद मिश्र, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, शमशेर बहादुर सिंह और धर्मवीर भारती की कविताएं संकलित थी। अर्थ यह कि भारती नयी कविता के प्रतिष्ठापकों में पांक्तेय रहें।

निष्कर्षत कह सकते है कि भारती की रचनाधर्मिता आधुनिक काल के तीन काव्य-सोपानो छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, पर चरण धरती, थिरकती, सहमती फिर नयी कविता तक पहुँचकर स्थिर हो गई। भारती आरभत प्रणय विपयक भावबोध को लेकर कविता क्षेत्र मे प्रविष्ट हुए, जीवन की विविध सम-विपम समस्याओं ने उन्हें जब झकझोरा तो जीवन का सत्य उभरा। फिर उनकी काव्य-चेतना में व्यापक जीवन का रूप आभासित हुआ। वह फिरोजी होठो से विमुख होकर 'अन्धायुग' में व्यष्टि-सत्य के माध्यम से समष्टि-सत्य के अन्वेषण में प्रवृत्त हुए। प्रयोगवाद तथा नयी कविता आन्दोलनों ने भारती के सर्जक व्यक्तित्व को निखारा। भारती ने साहित्य मे मानव-मूल्य की अवधारणा पर बल दिया जो प्रकारान्तर से अज्ञेय का 'मानव-विवेक' मानना चाहिए। रस सिद्धान्त की आधुनिक कविता मे उपादेयता को दोनों ने नकारा- एक ने 'व्यर्थ' बताया तो दूसरे ने 'नाकाफी'। भारती जी का विश्वास रहा है कि "आज की कविता वही समझ सकते है जिन्होंनें आज का जीवन जिया है, उसका मूल्य चुकाया है। इसे बने बनाये आजमूदा नुस्खों से नहीं समझा जा सकता है।"[32]

सन्दर्भ : संकेत

1 डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी प्रसाद, निराला अज्ञेय, पृ०32, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद। प्र०सं०-1989

2 डॉ० नामवर सिह कविता के नये प्रतिमान, पृ०62, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली। प्र०स०-1968

3 डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित : छायावादी कवियों का सौन्दर्य विधान; पृ02, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

4 डॉ० रघुवश भारती का काव्य, पृ05, दि मैकमिलन कपनी आफ इंडिया लि०, नई दिल्ली। प्र०सं०- 1980

5 अज्ञेय 'दूसरा-सप्तक' (सपा०); पृ0178, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली। प्र०स०-1951

6 डॉ० नामवर सिंह · आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ060, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद। च० सं०-1968

7 डॉ० धर्मवीर भारती . सूरज का सातवॉ घोडा, पृ० 8-9, साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद। द्वि० सं०-1953

8 डॉ० धर्मवीर भारती . मानवमूल्य और साहित्य; पृ085; भारतीय ज्ञानपीठ, काशी। प्र०सं०-1960

9 अज्ञेय · दूसरा सप्तक (संपा0), पृ0164, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली। प्र०स० 1951

10. डॉ० नामवर सिंह : कविता के नये प्रतिमान, पृ085; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 1968

11 डॉ० जगदीश गुप्त · नयी कविताः स्वरूप और समस्याएं; पृ0378, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी प्र०सं०-1969 ई०

12. अज्ञेय : दूसरा सप्तक (संपा0); भूमिका पृ0 6-7, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र0 सं0 1951 ई0

13 डॉ0 धर्मवीर भारती अंधायुग, पृ014, किताब महल, इलाहाबाद, स0-1983 ई0

14 डॉ0 हरिवंश पाण्डेय धर्मवीर भारती : चिंतन और अभिव्यक्ति, पृ0 23-24

15 डॉ0 धर्मवीर भारती . ठण्डा लोहा (संवा0), पृ0 46, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी दि0 सं0 1970

16 अज्ञेय दूसरा सप्तक (संवा0), पृ0 179, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र0स0 1951 ई0

17 डॉ0 धर्मवीर भारती ठण्डा लोहा, पृ0 46, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वि0सं0 1970

18 अज्ञेय दूसरा सप्तक (सपा0), पृ0 9, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र0स0 1951 ई0

19 डॉ0 धर्मवीर भारती ठण्डा लोहा, पृ0 36, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वि0सं0 1970

20 डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी : प्रसाद, निराला, अज्ञेय; पृ0 118, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्र0सं0 1989

(अज्ञेय की वार्ता का अश है 'हम प्रयोगशील, प्रगतिशील आदि नहीं' बनना चाहते। इसी से कहते है नयी कविता, क्योंकि प्रगतिवाद राजनीतिक बिल्ला है और प्रयोगवाद आक्षेप)

21. डॉ0 रघुवंश जेल और स्वतंत्रता, पृ0 107-108, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

22. डॉ0 रामदरश मिश्र : नयी कविता : तीन दशक, पृ0 122-123, मैक मिलन, दिल्ली प्र0सं0 1974

23 डॉ0 जगदीश गुप्त : कवितान्तरण; पृ0 69, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्र0सं0 1989

24. अज्ञेय : हरी घास पर क्षण भर, पृ0 32, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र0सं0 1976 ई0

25 डॉ0 धर्मवीर भारती ठण्डा लोहा, पृ0 51, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वि0सं0 1970

26 डॉ0 धर्मवीर भारती पश्यंती, पृ0 140, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, 1969

27 डॉ0 धर्मवीर भारती सात गीत वर्ष, पृ0 77, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, स0 1959

28 मुक्तिवोध . चाँद का मुँह टेढा है, पृ0 66 भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, द्वि0स0 1969

29 डॉ0 धर्मवीर भारतीय सात गीत वर्ष; पृ0 22, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, द्वि0सं0 1959

30 लक्ष्मीकात वर्मा अतुकान्त, पृ0 11, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

31. डॉ0 धर्मवीर भारती 'आधुनिकता का बोध' शीर्षक लेख, कल्पना। जनवरी 1961, पृ0 43

32 डॉ0 धर्मवीर भारती · पश्यंती; पृ0 5, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1970

तृतीय अध्याय

डॉ0 धर्मवीर भारती की काव्य-कृतियों का समीक्षात्मक अनुशीलन

(क) डॉ0 भारती की काव्य–कृतियों का वस्तुपरक विवेचन

(ख) डॉ0 भारती की काव्यकृतियों का शिल्पपरक विवेचन

(क) डॉ0 भारती की काव्य-कृतियों का वस्तुपरक विवेचन

डॉ0 धर्मवीर भारती का छायावादोत्तर परिदृश्य के कवियों एवं साहित्य चिन्तकों की परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने लिखा है- ''समयानुक्रम से धर्मवीर भारती दूसरे कवि हैं जिन्होने नई कविता के स्वरूप गठन में योग दिया है।'' डॉ0 रघुवश के अनुसार "भारती मूलत रोमैंटिक मिजाज़' के कवि है। नई कविता आन्दोलन के साथ सम्वद्ध रहकर भी उनका सारा विकास एक सक्षम रोमैंटिक कवि के रूप में देखा जा सकता है।"[2] अत छायावादोत्तर परिदृश्य में डॉ0 धर्मवीर भारती ऐसे रचनाधर्मी है, जिनकी रचनाओं में एक साथ परंपरा एवं युग सापेक्ष दृष्टि का सम्यक् निर्वाह हुआ है।

डॉ0 धर्मवीर भारती ने जब काव्य रचना के क्षेत्र मे पदार्पण किया उस समय छायावादी रचनाधारा अपने चरमोत्कर्ष पर थी। अतः भावुक युवक कवि भारती उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। यही कारण है कि 'भारती' की प्रारम्भिक रचनाओं में रोमैंटिक वृत्ति का परिचय सहज रूप में मिल जाता है। शुरू मे डॉ0 भारती की प्रेम-मूलक कविताएं तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थी। काव्य-संकलन में इनकी कविताएं सर्वप्रथम 'दूसरा-सप्तक' (सन् 1951 ई0) में प्रकाशित हुई। इसमें 'वक्तव्य' के अलावा इनकी बारह कविताऐं सग्रहीत हैं। प्रयोगवाद और नयी कविता के सन्दर्भ में 'ठंडा लोहा' (सन् 1952) अन्धायुग (सन् 1954 ई0) सातगीत वर्ष (सन् 1958 ई0) कनुप्रिया (1959 ई0), 'सपना अभी भी' (1993 ई), डॉ0 धर्मवीर भारती की उल्लेखनीय रचनाएं हैं। इसके अतिरिक्त समय-समय पर इनकी कविताएं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही है। 'धर्मयुग' पत्रिका के दीपावली विशेषांक अक्टूबर 1976 में इनकी प्रकाशित कविता 'कदम-पोखर' धर्मवीर भारती के कविरूप की निरंतरता की द्योतक है। 'परिमल' पत्रिका में भी इनकी रचनाए विशेष रूप से देखी जा सकती हैं। डॉ0 धर्मवीर भारती की रचना यात्रा में रूपासक्ति यौवन के मांसल गीतों, शरीर-सौन्दर्य की उपासना तथा वासनात्मक भावनाओं का विशेषतः उद्घाटन हुआ है। इसके साथ ही उनकी रचनाओं में घुटन-टूटन, आस्था-अनास्था, अवसाद-विषाद की झाँकी भी परिलक्षित होती है। वस्तुतः यह प्रवृत्ति उनकी

रोमैंटिक अनुभूति कासंकेत है डॉ0 भारती की रचनाओ मे आन्तरिक संघर्ष भी देखने को मिलता है, जिसमे कवि विराट जीवन के बीच दु:ख दर्दो मे व्यापक अर्थ खोजता है। डॉ0 सन्तोष कुमार तिवारी ने लिखा है "अपने अह को विगलित करते हुए ध्वंश और निर्माण, आस्था और अनास्था, अस्तित्व और अनास्तित्व के बीच जीवन के सार्थक तत्वों की, रचनात्मकता की तलाश करता है। वह सकरे सिमटे घेरे से व्यापक स्थितियो से साक्षात्कार करता हुआ स्वस्थ दिशाओं की ओर गतिशील होता है। यह पगदण्डी है यथार्थ समाजिक सदर्भो की।"[3] कालान्तर मे डॉ0 धर्मवीर भारती की रचना-यात्रा में व्यापक रूप से मानवतावादी चेतना का विकास हुआ। डॉ0 धर्मवीर भारती ने स्वतः लिखा है "सब से प्रिय कविताए वे है जो गटर में पडे शराबियो, हथौडा चलाते लोहारों और धूल में खेलते हुए बच्चो के आँखों में झलकती है। लेकिन जिन्हें अभी किसी ने न लिखा और न किसी ने छापा।"[4] यहाँ पर भारती जी का मानवतावादी रूप परिलक्षित होती है।

डॉ0 धर्मवीर भारती ने 'दूसरा सप्तक' के वक्तव्य में लिखा है- "असल में भारती का मन कविता में ही रमता है, क्योंकि कविता के माध्यम से ही भारती आज की बेहद पिसती हुई सघर्षपूर्ण, कटु और कीचड में बिलबिलाती हुई जिन्दगी के भी सुन्दरतम अर्थ खोज पाने में समर्थ रहा है। कविता ने उसे अत्यधिक पीडा के क्षणों में विश्वास और दृढ्ता दी है। कविता भारती के लिए शान्ति की छाया और विश्वास की आवाज रही है।"[5] अतः भारती ने व्यापक जीवन संघर्षो को झेलकर एक ऐसा काव्यपंथ बनाने का प्रयास किया है जिसमें शांति, विश्वास, जीवन का खुलापन और उसकी सार्थकता व्यंजित हो सके। अनुभूति एव अभिव्यक्ति दोनों ही स्तरों पर भारती की रचनाओं में नई संवेदना धरातल को सहज रूप में जाना-पहचाना जा सकता है। डॉ0 रवीन्द्र भ्रमर के अनुसार "उन्होनें (डॉ0 धर्मवीर भारती) नयी कविता को प्रबन्ध-कृतियाँ भी दी है, जो अपने सृजन शिल्प और युग बोध की दृष्टि से मूल्यवान है। नयी कविता के प्रसाधन और अलंकार-विधान के क्षेत्र में इन्होंने नए प्रस्तुत और अछूते हल्के बिम्ब दिए हैं, जो इनके भाव-चित्रों को मूर्तिमय करनें में सक्षम है।"[6] कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि प्रयोगवाद एवं नयी कविता के संदर्भ में डॉ0 धर्मवीर भारती को उपलब्धियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भारती के काव्य संग्रहों का

संक्षिप्त विश्लेषण इस प्रकार है–

1 दूसरा सप्तक (सन् 1951 ई0): डॉ0 धर्मवीर भारती की कविताएं सर्वप्रथम काव्य सकलन के रूप मे 'दूसरा सप्तक' में प्रकाशित हुई। इस काव्य संकलन में 'वक्तव्य' के अतिरिक्त बारह कविताए सग्रहीत हैं– थके हुए कलाकार–से, कवि और कल्पना, गुनाह का गीत, दूसरा गीत, तुम्हारे पाव मेरी गोद में, उदास तुम, सुभाष की मृत्यु पर, एक फैण्टेसी, बरसाती झोंका, (मुक्तक) जाडे की शाम, कविता और मौत। इनमें से कुछ कविताए डॉ0 धर्मवीर भारती की प्रथम स्वतंत्र, काव्य रचना 'ठंडा लोहा' में प्रकाशित है। 'दूसरा सप्तक' मे प्रकाशित भारती के 'वक्तव्य' के माध्यम से उनके रचनाकार व्यक्तित्व पर पर्याप्त प्रकाश पडता है। प्रथमत भारती की यह धारणा है कि उन्होनें कविता को जब लिखना चाहा लिखा या नहीं लिखा। इसलिए लिखने की मात्रा कम रही। पर भारती ने जो कुछ लिखा स्वाभाविक सरस और तन्मयता के साथ।[8] कविता में भाषा का प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं है। भाषा भावों के अर्थ वहन में समर्थ हो, यही भाषा की भूमिका कविता में स्वीकृत है। भारती ने कविता में किसी भी विषय को वर्जित नहीं रखा, सभी विषयों पर लिखा। पर भारती की यह प्रतिज्ञा रही है कि कविता का विषय और जीवनानुभूति की आन्तरिकलय में तादात्म्य हो। कवितायें वस्तु, ओढा लादा जाय तो उसे भारती प्रतिभा की पराजय मानते हैं। भारती में उभरे हुए प्रत्येक आन्दोलन को अत्यन्त गम्भीरता पूर्वक विचार करने के उपरान्त ही अपनाने की कोशिश की है और रुचि और ईमानदारी के अनुकूल ही लिखने का यत्न किया है।[9]

डॉ0 भारती की काव्य–चिंतन सम्बन्धी धारणा उनके अपने साहित्य की प्रकृति का परिचय देती है। 'दूसरा–सप्तक' में भारती ने स्वनिर्मित इन कसौटियों का पालन किया है। 'थके हुए कलाकार' से कवि और कल्पना एवं कविता की मौत' जैसी रचनाओं में भारती के मानसिक संघर्ष के बीच गुजरने तथा संघर्ष से विचरते हुए अपनी राह टटोलने की प्रक्रिया में, एक आस्था की स्थापना तथा उनके अनुगमन की स्थिति का संकेत प्राप्त होता है। आशा तथा निराशा, आस्था एवं अनास्था 'प्रलय और सृजन के संघर्ष को झेलते हुए अपने दायित्व को–अपने पाथेय को स्वीकारा है– निर्धारित किया है–

"प्रलय से निराशा तुझे हो गई
इसी ध्वंश मे मूर्च्छिता हो कहीं
पडी हो नयी जिन्दगी, क्या पता
सृजन की थकन भूल देवता।" [10]

कवि की यह आस्था एवं विश्वास का स्वर राष्ट्रीयता, क्रान्ति और सृजन को सचमुच अपने में समेटे हुए हैं-

"सुदूर भूमि से तुम्हे जवान कवि पुकारता
लौट बन्धन तोउकर
बेडिया झँझोडकर
जीवन राष्ट्र की नवीन कल्पना सवारता
स्वतत्र क्राति ज्वाल में निडर बनो सुकेशिनी
विनाश की सजीव नग्नता ढँको सुकेशिनी
विनाश से डरो नहीं
सृष्टि के लिए बनो प्रथम विनाश स्वामिनी
कल्पने विलासिनी।" [11]

कवि भारती का कवित्व गरीबी, भूख तथा अन्धकार से विद्रोह करते हुए जाने-अनजाने अपनी रोमांस वृत्ति को अपने अध्येताओं के सम्मुख उपस्थित कर ही देता है-

"याद आती है मुझे
भागवत की वह बडी मशहूर बात
जब कि ब्रज की एक गोपी
बेचने को दही निकली
ओ-कन्हैया की रसीली याद में
बिसर कर सब सुध
बन गई थी खुद दही।" [12]

ऐसे स्थलों पर जो बिम्ब उभरते हैं, उनको हम अप्रासंगिक तथा असगत तो नहीं मान सकते किन्तु होता यह है कि ऐसे प्रकरणों के माध्यम से निर्मित प्रभाव के सम्मुख कवि का कवितागत कथ्य पीछे पडता है तथा पाठकों के मन पर वे ही पंक्तियाँ छा सी जाती है जो कविता को लक्ष्य को, कथ्य को आत्मसात करने का एक साधन मात्र है। 'कविता की मौत' कवितायें यही होता है। यदि दधि बेचने निकली गोपी बीच मे मिलती है तो मन वहीं बस जाता है, कविता आगे रेंगती जाती है। भारती जी ने सौभाग्य से ऐसी कविताएं ज्यादा नहीं लिखी है।

'दूसरा सप्तक' मे सकलित भारती जी की अनेक कविताएं यथा "गुनाह का गीत" "गुनाह का दूसरा गीत" "तुम्हारे पाव मेरी गोद में" "उदास तुम" "एक फैन्टसी", "बरसाती झोंका", "जाडे की शाम" जैसी कविताओं में कवि के मन में उठती प्रणय की, संयोग-वियोग की तथा वियोग जनित कुण्ठा एवं निराशा की तरगों का रूपायन हुआ है।

दूसरा-सप्तक के 'वक्तव्य' में भारती ने लिखा है कि "वह (भारती) उसे (कविता को) उन्मुक्त कर सर्वथा मानवीय धरातल पर उतार लाये ताकि वह फैली-फैली चांदी की बालू पर आदम की सन्तानों के साथ बेहिचक आँख मिचौनी खेल सके उनके सीधे-साधे सुख-दु ख, वासनाओ, कामनाओं को समझ सकें, उन्हीं की बोली में बोल सकें।"[13]

'दूसरा-सप्तक' की सामान्यत लगभग सभी कविताएं इस धारणा के साथ गुँथी हुई है। मनुष्य जीवन में प्रेम-भावना निहायत प्राकृतिक तथा बुनियादी है और कवि बेहिचक स्वीकृति देने लगा है कि-

"तुम्हारे स्पर्श की बादल धुली कचनार नरमाई।
तुम्हारे वक्ष की जादू भरी मदहोश गरमाई।
तुम्हारी चितवनों में नरगिसों की पात सरमाई।
किसी भी मोल पर मैं आज अपने को लुटा सकता।
सिखाने को कहा मुझसे प्रणय के देवताओं ने
तुम्हे आदिम गुनाहों का इन्द्रधनुषी स्वाद।

मेरी जिन्दगी बरबाद।

इन फिरोजी होठों पर मेरी जिन्दगी बरबाद।"[14]

वासना को विष घोषित करने वालों से कवि ने पूछा है, बार-बार चुनौती देकर समझाया है कि वासना का स्वर्ग, यह मद, यह प्यार पाप नहीं है और न ही शाप है, असल में जिन्दगी की दूरी, लम्बाई-चौडाई को नापने का साधन है जो जिन्दगी में अर्थ और शब्द भर देती है-

यहाँ तो हर कदम पर
स्वर्ग की पगडडियाँ घूमीं
अगर मैंने किसी की मदभरी अँगडाइयां चूमी,
अगर मैंनें किसी की सास को पुरवाई-चूमी
महज इससे किसी का प्यार मुझ पर पाप कैसे हो।
महज इससे किसी का स्वर्ग मुझ पर शाप कैसे हो।"[15]

"तुम्हारे पाँव मेरी गोद में" कविता का स्वर भी यही है। कवि अपनी प्रणायानुभूति को अपने चारों ओर प्रसारित करता है। प्रिया के मुलायम पांवों को 'चन्द्र किरण' घोषित करता है, ताजा कमल कहता है, मासूम बादल मानता है, चुम्बनों को जवान गुलाब कहता है-

"ये शरद के चाँद से उजले धुले से पाँव,
मेरी गोद में।

दो बडे मासूम बादल, देवताओं से लगाते दांव
मेरी गोद में।"[16]

कवि जब वियोग के क्षण से गुजरता है वह अत्याधिक निराशा, आत्मलीनता और उदासी की गहन अनुभूति करता दृष्टिगत होता है। उसे खामोशी, सन्नाटा की स्थिति से गुजरना पड़ता है। उसके सम्मुख आँधी भी बेहोश हो जाती है। उसे यंत्र-तंत्र सर्वत्र आत्मीय यादों की गुफाओं में विचित्र रिक्तता, अनोखा अकेलापन, उसे तोड़-मरोड कर बिखेर देता है-

मैं सोच रहा,
यदि आज तुम्हारा साया होता जीवन पर
थी क्या मजाल
यह शाम मुझे इस तरह बना देती मुरदा।
इस तरह तुम्हारी पूजा का पावन प्रदीप।
इस तरह तुम्हारी क्वारी साँसों का अर्चन
कुम्हलाती हुई धूप के संग कुम्हला जाता।" [7]

वास्तव में विरह के दर्द को ही भारती जी के व्यक्तित्व की असली पहचान स्वीकारा जा सकता है। जैसे-जैसे इस दर्द मे गहराई आती है, वैसे-वैसे ही भारती की प्रतिभा विकसित होती गई है।

प्रयोग के लिए प्रयोग काव्य के क्षेत्र में भारती जी के द्वारा कभी नहीं किया गया है। अर्थवक्ता की कसौटी पर रखकर ही प्रयोग को अपनाया गया है। इन कविताओं की बिम्बविधान कहीं-कहीं पर प्रयोगवादी कविता के समान किन्तु अर्थवान है-

"मस्तक इतना खाली-खाली
लगता जैसे
हो कोई सड़ा हुआ नारियल.. ।" [8]

"और ये मासूम बच्चे भी
बेचने को कोयला निकले
बन गए खुद कोयले
शाम की माया।" [9]

इन बिम्बों को प्रधान मानने के बावजूद हम इनको निराशब्द-कीड़ा नहीं मान सकते।

"सुभाष की मृत्यु प्रयोग" भारती की एक मात्र ऐसी कविता है जिसमें भारती जी ने राष्ट्रीय नेता को उसके व्यक्तित्व की ऊँचाई को पुजा सराहा है। आगे चलकर भारती ने ऐसी कविताएं नहीं लिखी।

भारती की इन कविताओं पर टिप्पणी करते हुए डॉ0 प्रभाकर माचवे ने लिखा है कि "धर्मवीर भारती इन सभी कवियो मे सर्वाधिक रोमांटिक है। उन पर जैसे उर्दू का रंग है। यानी कहने की खूबी पर बहुत मुग्ध हैं। इसलिए कभी-कभी बहुत खूब कह भी जाते है।"[20]

'दूसरा-सप्तक' को सभी कविताओ मे भारती जी की यह रोमाटिकता और कविता के कथ्य को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति झलकती है। आगे चलकर भी भारती ने इसको आगे ही बढाया है, विकसित ही किया है।

2 ठंडा लोहा : 'ठडा लोहा' धर्मवीर भारती का पहला काव्य-संग्रह है जो सर्वप्रथम 1952 मे प्रकाशित हुआ था। 39 सकलित कविताओं का यह सग्रह-जिसके सन्दर्भ में कवि ने भूमिका मे लिखा है कि ''इस संग्रह में दी गई कविताए मेरे पिछले छ· वर्षो की रचनाओं में से चुनी गई है और चूँकि यह समय अधिक मानसिक उथल-पुथल का रहा। अत· इन कविताओं में स्तर, भावभूमि, शिल्प, टोन की काफी विविधता मिलेगी। एक सूत्रता केवल इतनी है कि सभी मेरी कविताए हैं। मेरे विकास और परिपक्वता के साथ उसके स्तर बदलते गए हैं। पर आप जरा ध्यान से देखेंगे तो सभी मेरी आवाज पहचानी सी लगेगी.. । मेरी परिस्थितियों, मेरे जीवन में आने और आकर चले जाने वाले लोग, मेरा समाज, मेरा वर्ग मेरे संघर्ष भरी समकालीन राजनीति औरसमकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियाँ इन सभी का मेरे और मेरी कविता के गठन और विकास में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भाग रहा है।''[21]

अर्थात कवि युवा मन की प्रणयाशक्ति, यौनाकर्षण, आदर्शवादिता जिन-जिन अवस्थाओं से गुजरा और इस यात्रा में जिन साहित्यिक-राजनीतिक प्रवाहों ने उसे प्रभावित किया। उसकी छाप आंशिक रूप में ''ठंडा-लोहा'' की कविताओं में पाई जाती है।

''ठडा-लोहा'' के शीर्षक से भी हम इसी तथ्य पर पहुँचते हैं। दर्द और बेबसी की एक लम्बी अनुभूति कवि मानस में बस गयी थी और जीवन में उसने जिसे चिरसंगिनी के रूप में अपनाना चाहा था, वह जीवन से चली गई, किन्तु गहरा प्रभाव छोड़कर, और कवि के मस्तिष्क में यह दर्द टीसता रहा है। प्रथम कविता ही नहीं, पूरे संग्रह में यही स्वर प्रबल रहा है।

पहली कविता का शीर्षक है ''ठण्डा लोहा'' जिसका नाम पूरे संग्रह को दिया है। वस्तुत लेखक की तत्कालिक मानसिकता को उजागर करने में इस कविता की भावभूमि की पर्याप्त है। सन् 1950 के लगभग हमारे यहाँ अस्तित्ववाद का जो वोल बाला था। ''ठण्डा लोहा'' भी इसी परम्परा का प्रतीक है। प्रसिद्ध फ्रांसीसी उपन्यासकार सात्र के ''आत्मा में लोहा'' नामक उपन्यास के शीर्षक एवं भावभूमि ''ठण्डा लोहा'' के मूल सूत्र से निराशा, हताशा और अस्तित्व को उठने वाले प्रश्न से मेल खाते हैं और डॉ0 धर्मवीर भारती भी इस बात की स्वीकृति देते हैं कि ''ठण्डा लोहा'' का युवाकवि सार्त्र के उपन्यास से उन दिनों प्रभावित था।

डॉ0 धर्मवीर भारती ने ''ठण्डा लोहा'' की भूमिका में लिखा है- ''यद्यपि आज मेरा मन उस भूमि पर है जो ''कवि और अनजान पगध्वनियाँ'' या ''कलाकार से'' या ''फूल मोमबत्तियों'' की भावभूमि है पर जिन गलियों से मैं गुजर चुका हूँ उनका महत्व कतई कम नहीं होता क्योंकि उन्हीं से गुजर कर मैं यहाँ तक पहुँचा हूँ। किशोरावस्था के प्रणय, रूपाशक्ति और आकुल-निराशा से एक पावन आत्मसमर्पणमयी वैष्णवभावना और उसके माध्यम से अपने अहम् का शमन कर अपने से बाहर की व्यापक भलाई को हृदयगम करते हुए संकीर्णताओं और कट्टरता से ऊपर एक जनवादी भावभूमि की खोज मेरी इस काव्य-यात्रा के यही प्रमुख मोड रहे हैं।''[22]

अर्थात भारती की इन कविताओं को प्रणयानुभूति सम्बन्धी, रूपवर्णनप्रधान, विरह एवं निराशा से भरी हुई, विरह या वियोग के माध्यम से अपने प्रेम का उदातीकरण करने वाली और चिन्तनशील मानववादी कहा जा सकता है। शिल्प की दृष्टि से भी इनमें शैली विभिन्नताओं के पर्याप्त उदाहरण मिले हैं। डॉ0 धर्मवीर भारती द्वारा रचित ''ठण्डा लोहा'' में कवि अपने काव्य विकास-क्रम की तमाम गलियों और मोडों से गुजरने के पश्चात यहाँ तक पहुँचा है।

''ठण्डा लोहा'' की अधिकांश कविताएं रूपाशक्ति, मांसलता एवं वासना-युक्त है। नारी के सौन्दर्य का कवि ने खुल कर चित्रण किया है। भारती जी को अपनी प्रिया के चरण सात रंगों से महावर से रचे महताब तथा 'रश्मि-पंखों पर अभी उतरे हुए वरदान' जैसे

प्रतीत होते हैं। कवि भारती अपने प्रिया के शरीर सौन्दर्य की आराधना में निमग्न हो गये हैं। यथा –

> ''पूजा-सा तुम्हारा रूप
> जी सकूँगा सौ जनम अंधियारियो में, यदि मुझे मिलती रहे
> काले तमस की छांह में
> ज्योति की यह एक पावन घडी।''[23]

प्रिया के उदास हो जाने से उसके रूप-सौन्दर्य में और भी चार-चाँद लग जाता है। कवि चेहरे के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर सहसा कह उठता है-

> ''तुम कितनी सुन्दर लगती हो
> जब तुम हो जाती हो उदास।
> ज्यों किसी गुलाबी दुनिया में
> सूने खण्डहर के आसपास मद भरी चाँदनी जगती हो।''[24]

डॉ0 धर्मवीर भारती की रचनाओं में एक विशेष प्रकार की मानसिक उथल-पुथल भी देखने को मिल जाती है। प्रयोगवादी कवियों की भाँति इनमें निराशा, उदासी, घुटन, घबराहट, अकुलाहट की स्थिति स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुई है। "उन्मन मन पर एक अजब सा आलस उदासीभार।" कभी-कभी उन्हे निष्प्राण बना देता है तथा कभी-कभी या 'दिन भर उड़ कर थकी किरन' कवि के मन की गहरी छाया को आत्मबोध कराती है। यही निराशा और उदासी रचनाकार को यथार्थता के समीप खींच लाती है। भारतीय प्रेमिकाओं की स्थिति प्रायः दु.खमयी हुआ करती है। प्रेम किसी से तथा विवाह किसी और से करना पडता है। अभी ''ठण्डा लोहा'' में नायिका के रूप-सौन्दर्य का नायक पूर्णरूप से रसपान भी नहीं कर पाया था कि रुढिगत बन्धन के फलस्वरूप प्रेमिका का डोला कोई और उठा ले गया। कवि विवश हो लोक मर्यादा की बात करने लगता है। वह अपने प्रिया को आँसू रोकने तथा अन्य विगत बातों को छिपाने के ढंग बताता है। इस सन्दर्भ में 'डोले का गीत' कविता शीर्षक द्रष्टव्य है-

"अगर डोला कभी इस राह से गुजरे कुवेला
यहाँ अँबवा तरे रुक
एक पल विश्राम लेना
मिलो जब गाँव भर से, बात कहना, बात सुनना
भूल कर मेरा
न हरगिज नाम लेना
अगर कोई सखी कुछ जिक्र मेरा छेड बैठे हँसी में टाल देना बात
आँसू थाम लेना।"[26]

उपर्युक्त कविता सहज रूप से उपदेशात्मक लगती है परन्तु इसमें छिपा मार्मिक भाव कारुणिक है। इसमें कवि का आन्तरिक दर्द छिपा हुआ है। प्रिया के वियोग में कवि की दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती है।

'डॉ0 धर्मवीर भारती' भारतीय काव्य की सर्जनात्मक भूमिका के प्रति पूर्णत सन्तुष्ट है। मानव की रचनात्मक क्षमता को पहचानते हैं। गरीबी तथा ध्वंस के बीच से उभर कर काव्य मानवता तथा नूतन इतिहास का निर्माण करता है। प्रस्तुत कविता कवि-दायित्व के साथ काव्य के प्रतिमानों को भी दर्शाती है-

"क्या हुआ दुनिया अगर मरघट बनी,
अभी मेरी आखिरी आवाज बाकी है,
हो चुकी हैवानियत की इन्तेहा
आदमीयत का मगर आवाज बाकी है।
लो तुम्हें फिर नया विश्वास देती हूँ,
नया इतिहास देती हूँ।"[27]

इसी सन्दर्भ में "थके हुए कलाकार" शीर्षक कविता में रचनाकार ने कवि दायित्व की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। कवि का विद्रोही मन मानवतावादी दृष्टि को उजागर करता ह। 'निवेदन' शीर्षक कविता में कवि ने दुःख दर्द तथा संघर्षों के माध्यम से जीवन की कडुवाहट

तथा तपन सहकर यथार्थता की हद तक पहुंचने का प्रयास किया है, जो प्रत्येक मानव का लक्ष्य है। यहाँ धर्मवीर भारती अपने से बाहर की व्यापक सच्चाई को आत्मसात करते हुए लोक चेतना की पुष्टि करते हैं, लोकगीत के नूतन रूप नवीन समाज की आकांक्षा। 'नये सितारे', नयी पीढियाँ, 'नये धान का रंग' और इसी सन्दर्भ मे "बोआई का गीत" कविता रागात्मकता के साथ मानवीय रिश्ते के बन्धन को प्रस्तुत करता है।

"क्यारी क्यारी गूँज उठा संगीत
बोने वालों नयी फसल में बोओगे क्या चीज ?
बदरा पानी दे।
मैं बोउँगी वीर बहूटी, इन्द्रधनुष सतरंग
नये सितारे, नयी पीढियाँ, नये धान का रंग
हम बोयेगी हरी चुनरियाँ, कजरी, मेंहदी
राखी के कुछ सूत और सावन की पहली तीज
बदरा पानी दें।"[28]

प्रकृति सौन्दर्य का विशद चित्रण "ठण्डा लोहा" में कवि द्वारा प्रस्तुत है। इस दृष्टि से भारती जी के ऊपर छायावादी प्रकृति चित्रण का विशेष प्रभाव पडा है। यहाँ कवि ने प्रकृति के विविध रूपों का अनोखा चित्रण प्रस्तुत किया है। प्रकृति सौन्दर्य अवलोकनीय है–

"कुजो की छाया में झिलमिल,
झरते हैं चाँदी के निर्झर
निर्झर से उठते बुदबुद पर
नाचा करती परियाँ हिलमिल
उन परियों से भी कहीं अधिक
हलका फुलका लहराता तन।
तुम अभी सुकोमल, बहुत सुकोमल अभी न सीखो प्यार।"[29]

"ठण्डा लोहा" में कवि के किशोर मन की अनुभूति प्रच्छन्न है जिसे पाठको के बीच

अपने विविध मन स्थिति को प्रेयसी को लक्षित कर चित्रित किया कवि प्रेयसी के संयोग में आनन्द उल्लास की अनुभूति करता है। प्रेयसी के उदासपन और वियोगावस्था के कारण कवि को अतीव घुटन निराशा, घबराहट तथा आकुलता आदि की अनुभूति होती है। प्रेम में कवि हर स्थिति का सामना करने को प्राय तत्पर है। भारती जी की शैली अत्यधिक साफ सुथरी तथा रंग-बिरंगी है। उर्दू की नाजुक मिजाजी तथा अन्य भापाओं के प्रभावपूर्ण शब्दों ने काव्य-सग्रह को नूतन रूप दिया है। सौन्दर्य चित्रण, बिम्व-योजना प्रतीक-योजना तथा नूतन आकर्षक उपमानों के प्रयोग से ''ठण्डा लोहा'' की कविताएं मार्मिक तथा हृदय संस्पर्श की सार्मथ्य रखती है।

3. सात गीत वर्ष

भारती जी की इस कृति में ''ठण्डा लोहा'' से आगे की स्थिति का व्यापक प्रस्तुतीकरण है। भौतिकमा के प्रभाव से ओत-प्रोत चैन आराम विहीन आज की जिंदगी घुटन-टूटन, आस्था-अनास्था विवशता से सर्वत्र भरी हुई है। इन सब से मुक्ति पाने के लिए आज का मानव परेशान है। प्रस्तुत संकलन-कृति में कवि ने आस्था-विश्वास का दोष जलाकर सभी ह्रसोन्मुख मानव म आस्था-विश्वास की छाह में जीवन बिताने का आहवान किया है। यह कवि का अपना विश्वास है कि आज के अपूर्ण व्यक्तित्व ही कल सम्पूर्ण बनेंगे तथा हमारा जीवन घुटन-टूटन तथा अनास्था से ऊपर होकर परिपूर्ण बनेगा। 'सात गीत वर्ष' में डॉ0 धर्मवीर भारती की भूमिका सम्बन्धी टिप्पणी इसी प्रकार है। ''अपनी चरम निजी अनुभूति और व्यापक ससार, क्षण और निरवधि काल के बीच अन्धेरी राह पर कहीं एक भूमि है जहॉ शून्य को पराजित कर हम 'रचते' हैं। स्थायित्व देने के लिए और सार्थकता पाने के लिए, जो पाकर खोया जा सकता है उसे रचने के ऐसे बिन्दु पर उपलब्ध करने के लिए जहॉ से वह फिर खोया ना जाय।'' उनका पुनः कथन है ''केवल हमारी पुरानी जगत्-चेतना अकस्मात बिल्कुल शून्य पड जाती है- अतीत और भविष्य के प्रति वाह्य और अन्तर के प्रति हमारे सारे अद्यावधि स्थापित सम्बन्ध अकस्मात टूट जाते हैं और हम फिर नितान्त शून्य में से उबरकर उन सम्बन्ध सूत्रों को नये स्तर पर जोड़ते हैं और अपने नवरचित सम्बन्धों के वर्तमान के आधार पर हम अपने अतीत और भविष्य को नित

नूतन उपलब्धि करते हैं''

सात गीत वर्ष' तथा 'ठण्डा लोहा' इन दोनों रचनाओं की भूमिका में विशेष अन्तर नहीं प्रतीत होता और नहीं इन संग्रहों के भावात्मक परिवेश में कोई अन्तर है. इस संग्रह मे कवि का 'रुमानी मूड' यथार्थ की कठोर मन स्थिति से टकराकर अत्याधिक निराशा एवं घुटनपर्ण मन स्थितियों तक पहुँचा हुआ दृष्टिगत होता है। ''और फिर इसी मन. स्थिति में मानव-मूल्यो की ओर यहाँ वह उन्मुख हुआ है। उसने व्यक्तिगत स्वतंत्रता, रचनाशीलता, इतिहास तथा आस्था-अनास्था जैसे मानवीय मूल्यों के बारे में अपने युग के सन्दर्भ में ऊहापोह किया है।''

प्रयोगवादी कवियों में जो आक्रोश, घुटन, टूटन, कुण्ठा, अवसादग्रस्तता आदि है उसके मूल मे अनास्था का स्वर मुखरित रहा हैं। युग-परिवेश एवं परम्परा से डॉ0 भारती भी बाहर नहीं हो पाये हैं। एक रचनाकार के रूप में उन्होने युग सोपेक्ष परम्परा का सम्यक् निर्वहन किया है। आधुनिक बोध के साथ इनके अधिकाश प्राचीन सन्दर्भो से जुड़े कथ्य देखे जा सकते हैं। इसके प्रमाण में 'अन्धा युग' को भी प्रस्तुत किया जा सकता है। 'सात गीत वर्ष' भी आस्था और अनास्था का प्रतीक है।

इस 'सात गीत वर्ष' में 'प्रमथ्युगाथा, नवम्बर की दोपहर, आस्था, निर्माण-योजना, गुलाम बनाने वाले, बाणभट्ट, वृहन्नला, टूटा-पहिया आदि बड़ी सशक्त एवं महत्वपूर्ण कविताऐं हैं। एक यूनानी पुरुष प्रमथ्यु- जो जन हिताय अग्नि को स्वर्ग से छीन लाया था, और दण्डस्वरूप द्युपिता ने उसे एक शिला में बंधवा दिया था। साथ ही साथ एक गिद्ध लगातार उसके हृदयपिण्ड खाते रहने के लिए तैनात कर दिया था। इस कविता में प्रमथ्यु, अग्नि, द्युपितर, युद्ध सभी अपना वक्तव्य नाटकीय रूप से उद्घाटित करते हैं। साहसी प्रमथ्यु गिद्ध की सारी यातना सहन करता रहता है। इसी प्रमथ्यु ने ही सर्वप्रथम अंधी घाटी में टूटे सहमें तथा कायर मानव जातियों को प्रकाश प्रदान करने का प्रयत्न किया था। द्युपितर मानव अस्तित्व के नक्शें को पूर्णरूपेण कायरता, आतंक भय आदि से बांध रखा है। प्रमथ्यु का दुःख दूर करने के लिए कोई आगे नहीं जाता है। सामान्य जनता दूर से तमाशा देखती है। प्रमथ्यु को इस बात का अत्यधिक दुःख है कि अग्नि अथवा ज्योति मिलने पर भी सभी

लोग पशु बनकर ही सीमित हैं। प्रमथ्यु की आत्मा को विश्वास इस बात में है -

'ये जो जन हैं, साधारण जन हैं
उनमें से एक-एक के अन्दर
मूर्छित प्रमथ्यु कहीं वन्दी हैं।
अवसर जिसे मिला नहीं साहस कर पाने का
कोई तो ऐसा दिन होगा
जब मेरे ये पीडा सिक्त स्वर
उसके मन को बेध-मूर्च्छित प्रमुथ्य को जगायेगे।
उस दिन
हाँ, उस दिन
अकेला मैं रहूँगा नहीं
सबके हृदयों में मैं जागूँगा।''[32]

'नवम्बर की दोपहर' कविता विशुद्धत: रुमानी भावभूमि पर सृजित है। प्रेयसी के पीले आंचल को 'नवम्बर के दोपहर' से उपमित करने का उपक्रम ऐसा ही है-

''अपने हल्के-फुल्के उडते स्पर्शों से मुझको छू जाती है।
जार्जेट के पीले पल्ले सी यह दोपहर नवम्बर की।''[33]

डॉ0 धर्मवीर भारती ने अपने इस संग्रह में मिथकीय कथाओं पर आधारित सशक्त कविताएं सृजित की हैं। 'प्रमुथ्यगाथा' तथा 'वृहन्नला' तथा 'टूटा पहिया' आदि इसके साक्ष्य रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। महाभारत के चक्रव्यूह में फँसा बेचारा अभिमन्यु टूटे पहिये से ब्रह्मास्त्र का सामना करता है।

यहाँ अपनी कविता के माध्यम से कवि यह संकेत देता है कि उपेक्षित, तिरस्कृत तुच्छ समझी जाने वाली वस्तु या मनुष्य अपने आप में अतीव मूल्यवान है। इसी प्रकार दलित-दुर्बल वर्ग का भी मानवतावाद की दृष्टि से अपना विशिष्ट मूल्य है। कवि के विचारों को इसी संदर्भ में देखें-

मैं रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ।
लेकिन मुझे फेको मत
इतिहासो की सामूहिक गति
सहसा झूठी पड जाने पर
क्या जाने
सच्चाई टूटे हुए पहियो का आश्रय ले।''[34]

'बाणभट्ट' सात गीत वर्ष मे सकलित की गई एक व्यग्य भावना से ओत-प्रोत रचना है। इस रचना मे उन सुप्रतिष्ठित रचनाधर्मियो पर तीखा व्यंग्य है जिसके शब्द राजसत्ता, कूट-नीतिज्ञो, नगर-सेठो तथा वेश्याओ के सम्मुख बिके हुए हैं। उनके लिए प्रकृति के सौन्दर्य से मण्डित उपादान, किसी काम के नहीं हैं। साधारण जन-जीवन उनके लिए एकदम निरर्थक है। धनलोभी ऐसे रचनाकारो जो चापलूसी और चारण-वृत्ति के पोषक हैं- उन पर भारती जी ने करारी चोट की है-

''सत्य है एक मणिजरित दुपट्टा, एक
मुद्रा-मजूषा, एक पालकी
सत्य है आत्मा पर थोपी हुई सीमाए
सोने के जाल की।
सत्य है कूटज्ञों, वाधिकों, नगर-सेठें, वेश्याओं के आगे बिके हुए शब्दों की यह क्रीडा
सत्य है राजा हर्षवर्धन के हाथों से मिला हुआ
पान का सुगन्धित एक लघु बीड़ा
चाहे वह जूठा हो।
पर उस पर लगा हुआ वर्कदार सोना था।
हाय बाणभट्ट! हाय!
तुमको भी तुमको भी, आखिर यही होना था।''[35]

यत्र-तत्र इस संग्रह में दिव्य-स्वाभिमान, देश-प्रेम और स्वतंत्रता का गुणगान भी दृष्टिगोचर होता है। प्रेम तथा रोमाटिक भाव का रचनाकार अपने परिवेश से सुपरिचित है।

गुलामी की जजीरे उसके मन को अब भी व्यथित करती है। जिन गद्दारों के कारण देश ने अधोपतन देखा है- उन पर तीखे व्यग करने मे कवि हिचकिचाता नहीं है- इस संदर्भ में 'एक वाक्य' शीर्षक कविता द्रष्टव्य है-

"चेक बुक हो पीली या लाल,
दाम सिक्के हो या शोहरत
कह दो उनसे जो खरीदने आये हो तुम्हे
हर भूखा आदमी बिकाऊ नहीं होता है।"[36]

कवि का चुनौतियो से भरा हुआ ओजस्वीस्वर मानव मूल्यो को, मर्यादाओं को सर्वोच्च बताने के लिए सकल्पित है।

इस रचना मे भाव-बोध के साथ शिल्प-बोध भी अत्यन्त समृद्ध है। सर्जनात्मक भाषा, बिम्बविधान, प्रतीक-विधान, मिथकीय चेतना, तथा प्रगीतात्मकता का भरपूर प्रयोग इस संकलन में दिखाई देता है। समग्रत हम कह सकते हैं कि शिल्प और भाव दोनों का मनोहारी रूप विद्यमान है।

4. अंधायुग (1954 ई0)

डॉ0 धर्मवीर भारती द्वारा रचित 'अधायुग' एक गीति नाट्य है। इस रचना को काव्य रूपक, दृश्यकाव्य, नाटक-रूपक, कथा-काव्य एव भावनाट्य आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। सन् 1954 में इसका प्रकाशन हुआ। आधुनिक काव्य-नाटको में 'अंधायुग' का एक विशिष्ट स्थान है। यह गीतिनाट्य पौराणिक कथाओ पर आधारित है। इस ग्रंथ में महाभारत-युद्ध के उत्तरार्ध की कथा को लेकर समसामयिक बोध को प्रतीकात्मक शैली में अभिव्यक्त किया गया है। इस नाट्य काव्य का घटना काल महाभारत के अठ्ठाहरवें दिन भी संन्ध्या से लेकर प्रभास-तीर्थ में कृष्ण की मृत्यु तक के क्षण को अपने में सजोय हुए हैं। महाविनाश के सकेतों से प्रारम्भ यह नाट्य काव्य यहाँ भारतीय युद्ध की विभीषिका को आधुनिक सन्दर्भो में प्रस्तुत करता है। कवि का मंतव्य अविश्वास, प्रतिहिंसा, मर्यादाहीनता, धर्म, श्रद्धा, सद्भावना आदि का मानव जीवन में महत्ता स्थापित करना है। स्वयं कवि द्वारा

'अंधायुग' की भूमिका मे इसी तथ्य की ओर सकेत किया गया है। "पर एक नशा होता है- अधकार के गरजते महासागर की चुनौती को स्वीकार करने का, पर्वताकार लहरों से खाली हाथ जूझने का, अनमापी गइराइयों मे उतरते जाने का, और फिर अपने को सारे खतरो मे डालकर आस्था के प्रकाश के, मर्यादा के, कुछ कणो को बटोर कर इस नशें में इतनी गहरी वेदना और इतना तीखा सुख घुला-मिला रहता है कि उसके आस्वादन के लिए मन बेबश हो उठता है। उसी की उपलब्धि के लिए यह कृति लिखी गई।"[37]

वस्तुत महाभारत युद्धोपरान्त 'अंधायुग' का आर्विभाव हुआ है। अस्तु, इसमे स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ तथा आत्माए सबकी-सब विकृत हैं। सभी कथापात्र पथभ्रष्ट, विगलित एवं अधे हैं। इस 'अंधायुग' मे अन्धों के माध्यम से ज्योति की कथा कही गयी है-

"युद्धोपरान्त
यह अंधायुग अवरित हुआ
जिसमे स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, आत्मायें सब विकृत है।
है एक बहुत पतली डोरी मर्यादा की
पर वह भी उलझी है दोनो ही पक्षों में
पर शेष अधिकतर है अन्धे
पथभ्रष्ट, आत्महारा, विचलित
अपने अन्तर की अंधगुफाओं के वासी
यह कथा उन्हीं अन्धों की है।
या कथा ज्योति की है अन्धों के माध्यम से।"[38]

निराशा, कुण्ठा, सत्रास से परिपूरित अंधायुग एक ज्योति कथा है- ऐसी रचनाकार की मान्यता है। इस कृति में महाभारतीय युद्ध को लक्ष्य बनाकर युगीन वैषम्य तथा समसामयिक परिवेश बोध को प्रतीको के माध्यम से व्यंजित किया गया है। डॉ0 धर्मवीर भारती ने भूमिका अंश में स्वयं यह उल्लिखित किया है- "एक स्थान पर आकर मनका डर छूट गया था। कुण्ठा, निराशा, रक्तपात, प्रतिशोध, विकृति कुरुपता, अन्धापन-इनसे हिचकिचाना क्या? इन्हीं में तो सत्य के दुर्लभकण छिपें हुए हैं तो इनमें क्यों न निडर धंसूं।

इसमें धंसकर भी मैं मर नहीं सकता।"[39]

अधायुग की समग्र कथा पाँच अको मे विभाजित है। इसमे कौरव लोगो की अन्तिम पराजय से लेकर श्रीकृष्ण की मृत्यु तक की कथा का वर्णन है। पहला अक कौरव नगरी से आरम्भ होता है। कौरवो और पाण्डवो की बिखरी हुई मर्यादा तथा विवेकहीनता का निरूपण कथा का लक्ष्य है। कृति मे धृतराष्ट्र के अन्धेपन को विशद् रूप से चित्रित किया गया है। दो बूढे प्रहरी कौरव महलो मे घूमते दिखलाई पडेते हैं, जिनके वार्तालाप से अन्धे धृतराष्ट्र की अंधी सस्कृति का बखान तथा प्रजा के प्रपीडन काव्यान सुनने को मिलता है। ये दोनो वृद्ध आस्था, साहस, श्रम एव अस्तित्व को निरर्थक बताते हुए निरुद्देश्य जीवन की व्यजना करते हैं।

"प्रहरी–1 जिसमें अब हमको थका डाला है
मेहनत हमारी निरर्थक थी
आस्था का,
साहस का,
श्रम का,
अस्तित्व का हमारे कुछ अर्थ
नहीं था
कुछ भी अर्थ नहीं था।"[40]

प्रजा पर मर्यादाएं आस्थायें थोपी जाती हैं, उनका अपना कोई निर्णय, अस्तित्व नहीं होता क्योंकि सत्ता पूजी जाती है तथा प्रजा को अपने राजा की आज्ञा मे रहना पडता है। प्रजा आतंक और त्रास में जीवन व्यतीत करती है। राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रों के प्रति ममता के अन्धेपन के कारण सामाजिक मर्यादा से दूर हो गया है। उसे केवल अपना स्वार्थ ही दिखाई देता है।

माँ–गान्धारी को नीति, मर्यादा, धर्म आदि केवल आडम्बर मात्र हैं। गान्धारी श्रीकृष्ण को 'वंचक' कहती है। वह दोनों पक्षों में धर्म, नीति, आदर्श युत मर्यादा का उल्लंघन

देखकर अतीव खिन्न होती है। परन्तु पति की ही तरह माँ-गान्धारी की अधी ममता पुत्र दुर्योधन के जीत से बधी हुई है। माँ-गान्धारी ही के शब्दों मे-

"होगी,
अवश्य होगी जय
मेरी यह आशा
यदि अन्धी है तो हो
पर जीतेगा दुर्योधन जीतेगा।"[41]

पुत्र ममता मे सद्-असद् से मुक्त गान्धारी धृतराष्ट्र की भाँति स्वार्थ वृद्ध है। उन्हे सत्य न्याय सूझता ही नहीं है। कृति के द्वितीय अंक में संजय जी का प्रवेश होता है। संजय स्वय असमन्जस में है कि वह हस्तनापुर पहुँचकर दुर्योधन के पराजय का समाचार धृतराष्ट्र जी को किस प्रकार सुनायेंगे? इसी ऊहापोह मे उनकी मुलाकात कृतवर्मा से होती है। कृतवर्मा कहते हैं-

"धैर्य धरों सजय।
क्योकि तुमको ही जाकर बतानी है।
दोनों की पराजय दुर्योधन की।"[42]

इसके उपरान्त अश्वत्थामा की खोज में निकले कृपाचार्य दुर्योधन की पराजय नहीं देख सकते थे। इसी हेतु कृपाचार्य जी धनुष तोडकर बन मे चले जाते हैं। अश्वतत्थामा को बीते हुए समय का स्मरण कर बड़ी ग्लानि होती है। परिणामत. वह आत्महत्या की बात विचारता है। परन्तु वह जीवित रह कर पाण्डवों से बदला लेने का ही संकल्प लेता है। इसी बीच संजय को आता देखकर अश्वत्थामा को पाण्डव पुत्रों के होने का आभास होता है। वह उनका बध करने को जैसे ही आतुर दिखाई पडता है वैसे ही कृपाचार्य और कृतवर्मा उसे रोक देते हैं। सजय सत्य कथन से मृत्यु को प्राथमिकता देते हैं परन्तु कृपाचार्य और कृतवर्मा उन्हीं के द्वारा दुर्योधन की पराजय का समाचार सुनाना चाहते हैं। वृद्ध याचक पुनः कर्म की सत्यता को बताता हुआ भविष्य की समस्त अनिवार्यता को झुठलाता है। इसी बीच

अश्वत्थामा वृद्ध याचक के झूठे वचनों से क्रोधित होकर उसका गला दबोच देता है। अश्वत्थामा को विश्राम करने के निमित्त ले जाते हैं। यही इस अक का समापन होता है।

तीसरा अक कथा–गायन के साथ प्रारम्भ होता है। इस अक मे कौरव कुल की कारुणिक स्थिति और पराजय का चित्रण है। इसमे अश्वत्थामा का अतीव प्रतिहिसक रूप प्रस्तुत किया गया है। अश्वत्थामा उत्तरा के गर्भ मे स्थित पाण्डव वंश के भविष्य को सदा–सदा के लिए समाप्त करने का सकल्प लेता है। अश्वत्थामा का प्रतिहिसक रूप उस समय और अधिक उमडा हुआ दिखाई पडता है जब उसे पता चला कि पाण्डवो ने अधर्म से दुर्योधन का बध कर दिया है। नेपथ्य मे बलराम भी श्रीकृष्ण पर क्रोध व्यक्त करते हैं।

"अपने शिविरों को जो जाते हैं पाण्डवगण,
वे भी निश्चय मारे जायेंगे अधर्म से। ."[43]

युयुत्सु जो धृतराष्ट्र के पुत्र हैं वे भी सत्य का साथ देते हुए पाण्डवों की ओर से युद्धरत हैं। परन्तु युयुत्सु अब वृद्ध याचक को अपना परिचय इस प्रकार दे रहे हैं–

"मैं हूँ युयुत्सु
मैं उस पहिये की तरह हूँ।
जो पूरे युद्ध के दौरान रथ में लगा था
पर जिसे अब लगता है कि वह गलत धुरी मे लगा था
और मैं अपनी उस धुरी से उतर गया हूँ।"[44]

चौथा अंक गान्धारी का शाप है। यह कथा–गायन से प्रारम्भ होता है। यह अंक अत्यन्त भयावह है। दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करने पर भी इस अक में अश्वत्थामा की पराजय होती है। शिव द्वारा आशीर्वाद प्राप्ति के कारण अश्वत्थामा द्वारा अनेक योद्धाओं का बध होता है। कृपाचार्य तथा कृतवर्मा–शिविर में आग लगा देते हैं। गान्धारी यह सुनकर जहॉ प्रसन्नता की अनुभूति करती है वहीं विदुर का हृदय कॉप जाता है। संजय अपनी दिव्य दृष्टि से गान्धारी के कहने पर अश्वत्थामा की अपूर्व वीरता को कृतवर्मा और कृपाचार्य घायल दुर्योधन के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। फलतः दुर्योधन खुशी की अनुभूति करता है। संजय

बताते हैं कि अश्वत्थामा अपना दिव्यास्त्र उत्तरा के गर्भ मे पल रहे शिशु पर छोड देता है। मृत शिशु उत्पन्न होता है जिसे कृष्ण अपनी मोहमाया से उसमे अपना प्राण डाल देते हैं। श्रीकृष्ण-भ्रूण हत्या के इस जघन्य अपराध पर अश्वत्थामा को अभिशाप देते हैं। परिणामतः अश्वत्थामा के सम्पूर्ण शरीर मे कोढ हो जाता है। अश्वत्थामा की इस करूणाजन्य अवस्था को देखकर गान्धारी भी कृष्ण को शाप देती है–

"प्रभु हो या परात्पर हो
कुछ भी हो
सारा तुम्हारा वश
इसी तरह पागल कुत्तो की तरह
एक-दूसरे को परस्पर फाड खायेगा
तुम खुद उनका विनाश करके कई वर्षो बाद
किसी घने जंगल में
साधारण व्याघ्र के हाथों मारे जाओगे
प्रभु हो
पर मारे जाओगे पशुओं की तरह।।"[45]

इसके उपरान्त माता गान्धारी को श्रीकृष्ण जी युद्ध की यथार्थता से अवगत कराते हैं तथ उनके द्वारा प्रदत्त अभिशाप को स्वीकार करते हैं, यथा–

"माता–
प्रभु हूँ परात्पर
पर पुत्र हूँ तुम्हारा, तुम माता हो।
मैर्नें अर्जुन से कहा
सारे तुम्हारे कर्मो का पाप पुण्य, योग क्षेम मैं
वहन करूँगा अपने कन्धों पर

जीवन हूँ मैं

तो मृत्यु भी तो मैं ही हूँ माँ
शाप यह तुम्हारा स्वीकारा है।''[47]

यह सुनकर माता गान्धारी अत्यन्त दु खी होती हैं। उसके हृदय मे श्रीकृष्ण के प्रति अगाध ममता उत्पन्न हो जाती है। माता गान्धारी कहती हैं–

''लेकिन कृष्ण तुम पर मेरी ममता अगाध है।
कर देते शाप यह मेरा तुम अस्वीकार
तो क्या मुझे दु ख होता।
मैं भी निराश, मैं कटु थी। पुत्रहीना थी।''[48]

पॉचवा अंक 'विजय एक क्रमिक आत्महत्या' है। इसका शुभारम्भ कथा गायन के साथ होता है। इस अक मे अतीव भयंकर महायुद्ध के ध्वंश के उपरान्त राज्य सिंहासन पर विराजमान युधिष्ठिर अतीव चिन्तातुर तथा खुद पराजय की अनुभूति करते हैं। भीम अभिमानी तथा मन्दबुद्धि हैं। उनकी कटूक्तियों से तंग आकर धृतराष्ट्र एवं गान्धारी वन में चले जाते हैं। भीम के तीखे व्यग्य से युयुत्सु आत्महत्या कर लेता है। प्रहरियों के वार्ता से पता चलता है कि उनकी स्थिति यथावत है। ज्ञानी सन्त शासन नहीं चला सकते हैं। कृपाचार्य भी युधिष्ठिर जैसे आत्मघाती संस्कृति में रहने से इन्कार करते देखे जाते हैं। प्रहरियो के संवाद के साथ ही अंक का समापन होता है।

इस समापन मे 'प्रभु की मृत्यु' भी चित्रित है। प्रस्तुत दृश्य काव्य की परिसमाप्ति भी अंधेयुग के अपतरण की परिपुष्ट के साथ होती है। रचनाकार गीति-नाट्य रचना करते समय द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका को भुला नहीं पाया है। आधुनिक जीवन-बोध तथा युगीन समस्याओं का आकलन इस दृश्य काव्य की उपलब्धि है। अनास्था, कुण्ठा निराशा, प्रतिशोध, बर्बरता, आमानुषिकता आदि यथार्थवादी मूल्यों को खोज की इस गीत-नाट्य में अच्छा विवेचन है। कृतिकार ने पौराणिक तथ्यो में अपनी कल्पना का रंग भर कर आधुनिक सन्दर्भ मे प्रस्तुत करने का अतीव सफल प्रयास किया है।

5. कनुप्रिया (1959 ई0):

सन् 1959 ई0 मे प्रकाशित डॉ0 धर्मवीर भारती की इस काव्य रचना मे–पौराणिक कथा के माध्यम से नूतन कथ्य को सम्प्रेपित करने का सफल प्रयास है। इसमें राधा कृष्ण का प्रणय–प्रसग चित्रित है। मिथकीय सन्दर्भों के सहारे आधुनिक मानव की युद्धोत्तर मन स्थिति का सजीव चित्र चित्रित है। ''कनुप्रिया कृष्ण की प्रिया है और उसमें कैशौर्य सुलभ मन स्थितियॉ विद्यमान है जो विवेक से अधिक तन्मयता, इतिहास की उपलब्धियो से अधिक सहज जीवन मे सार्थकता पाती है। यह चरम तनमयता का क्षण खोजती है जिससे समस्त वाह्य–अतीत वर्तमान और भविष्य सिमट्कर पुजीभूत हो गया है।''[49]

प्रस्तुत रचना में कवि ने राधा कनु के प्रणाय प्रसगो के माध्यम से मानवीय समस्याओ के बीच आधुनिक जीव मे एकता की भावना का सचार करने की चेष्टा की है। अतएव यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत रचना मे राधा के प्रणय संवेदन के माध्यम से यथार्थ जीवन को समझने, परखने का अथक प्रयास है। कनुप्रिया मे पूर्वराग, मंजरी–परिणय, सृष्टि–सकल्प, इतिहास तथा समापन पॉच शीर्षकों में विभाजित किया गया है।

इस रचना की विभिन्न परिस्थितियों की समुचित प्रतिक्रियाए हैं। राधा तथा कृष्ण की प्राचीनतम प्रेमप्रसग को नूतन धरातल पर विश्लेषित किया गया है। वस्तुतः कनुप्रिया में राधा की भावाकुल तन्मयता का पूर्ण विकास देखने को मिलता है। यथार्थ जीवन में कनुप्रिया में राधा की भावाकुल तन्मयता का पूर्ण विकास देखने को मिलता है। यथार्थ जीवन में भावुकता के प्रति विशेष आग्रह की ओर इंगित करते हुए रचनाकार ने राधा और कनु को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है।

'पूर्वराम' में पांच गीत हैं। प्रथम गीत मे छायादार पावन अशोक वृक्ष का चित्रण हुआ है, जो राधा की प्रतीक्षा में कई जन्मो से पुष्पहीन खडे थे। दूसरा गीत संगीत की महत्ता प्रतिपादित करता है। इसमें राधा की कण–कण में कनु की झंकार है। वह कनु को लज्जावश अपना मुंह छिपा लेती है। तीसरे गीत मे राधा कनु को कदम्ब के नीचे चुपचाप ध्यान मग्न खड़े देखकर कोई अनजान देवता समझ उसे प्रणाम करती है। परन्तु वह अडिग,

निर्लिप्त निश्चय भाव से खडे रहते हैं। कृष्ण के इस भाव से राधा खिन्न हो उन्हे प्रणाम करना छोड देती है। चौथे गीत मे यमुना मे स्नान करते समय वह अपने शरीर की अपेक्षा प्रिय कनु को निहारती है मानो वह यमुना की सावली गहराई नहीं है यह तुम हो, जो सारे आवरण दूरकर मुझे चारो ओर से कण-कण रोम-रोम अपने श्यामल प्रगाढ अथाह आलगन में पोर-पोर कसे हुए हो।''[50]

पॉचवे गीत में कनुप्रिया की मन स्थिति का चित्रण हुआ है। राधा में टीस, पीडा तथा कसक है। इस प्रकार अशत कनु का प्रिय भाव उसे सम्पूर्णता की अनुभूति दिलाता है।

'मजरी-परिणय' अंक मे किशोर मन स्थिति के आगे की स्थिति चित्रित है। यहां राधा जी कृष्ण को जन्म-जन्मान्तर की रहस्यमयी लीला की एकान्त सगिनी मानती हैं। ''आम्रमंजरियों के नीचे यमुना के तट पर गोधूलिवेला, कृष्ण की आतुर प्रतीक्षा, कदम्ब के नीचे पोई के फल के लाल रग से लाज से धनुष की तरह दोहरी होती राधा के पैरों में कृष्ण का महावर लगाना और फिर रात के गहरा जाने पर राधा का उसी आम्रडाली को बाहों में घेरे रहते रहना, यह सब रोमांटिक प्रेम प्रणय के भाव-बोध को व्यक्त करते हैं।''[51] 'आम बौर का अर्थ' में राधा आम के बौर का ठीक-ठाक भाव न समझ सकने पर कनु से खिन्न न होने की प्रार्थना करती है। राधा के मन का प्रश्न 'तुम मेरे कौन हो' में अधिक उजागर हुआ है। राधा अपनी सखियों द्वारा पूछे जाने पर कनु को कभी एक मात्र अन्तरग सखा, रक्षक, बन्धु, सहोदर, आराध्य आदि बताती है तो कभी कनु उसका कुछ भी नहीं लगता है। यही नहीं, राधा को कनु कभी एक शिशु लगते हैं जिन्हें वह आंचल में वर्षा से भींगने के डर से छिपा रखी हैं। इस तरह प्रस्तुत खण्ड में एकनिष्ठ राधिका जी के प्रश्नाकुल हृदय की अत्यन्त मार्मिक अभिव्यंजना व्यक्त हुई है-

''मुझे इतने आकस्मिक मोड लेने पडे है
और कि मैं बिल्कुल भूल गई हूँ कि
मैं अब कहाॅ हूँ
तुम मेरे कौन हो?''[52]

'सृष्टि-सकलन' में राधा सृजन सगिनी है। इसमे श्रीकृष्ण की सम्पूर्ण इच्छाए तथा सकल्प एक मात्र राधा जी है। राधा और कनु के गहरे विलास का रूप ही तो पूरे संसार मे व्याप्त है। श्रीकृष्ण का अस्तित्व ही सम्पूर्ण जगत है। जगत कृष्ण की इच्छा है। इच्छा ही राधा है। कनुप्रिया कहती है-

"तुम्हारी सम्पूर्ण सृष्टि का अर्थ है
मात्र तुम्हारी इच्छा
और तुम्हारी सम्पूर्ण इच्छा का अर्थ हूँ
केवल मैं - केवल मैं - केवल मैं।"[53]

'आदिम भय' शीर्षक कविता के अन्तर्गत इसी भाव का विकास दिखाई देता है। यहां प्रकृति राधा है और श्रीकृष्ण विराट रूप में प्रस्तुत है-

"अगर ये उत्तुंग हिमशिखर
मेरे ही रूपहली ढलान वाले
गोरे कन्धे हैं जिन पर तुम्हारा
गगन सा चौड़ा और सावला और
तेजस्वी माथा टिकता है
अगर यह चादनी में
हिलोरे लेता हुआ महासागर
मेरे ही निरावृत्त जिस्म का
उतार चढाव है।"[54]

'केलिसखी' उपशीर्षक कविता में कनुप्रिया के शिथिल अधखुले गुलाबी तन को दिगन्त व्यापी अंधेरा हरण करने को तत्पर है'। उसके, पांव, पलकें, माथा, होठ आदि सब बेजान बेबस प्रतीत होने लगे हैं। राधा के तन की भावुकता, व्याकुलता एव मांसलता पूर्ण रूप से भावसत्ता में सम्पृक्त हो जाते हैं तथा उसके लोचन 'प्रतीक्षा के क्षण' बन जाते हैं। कनुप्रिया के पास प्रतीक्षा के क्षणों में पुकार के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। राधा कहती है-

"छलका गुलाबी, गोरा, रूपहली धूप छाँव वाली सीपी जैसा जिस्म
अब जिस्म नहीं है–
सिर्फ पुकार है।' -5

'इतिहास' खण्ड मे राधा विगत–स्मृतियो को याद कर कृष्ण से पूछना चाहती हैं कि वह कौन था, जिसके चरम साक्षात्कार का एक गहरा क्षण सारे इतिहास से बडा और सशक्त था। अब कनुप्रिया के अन्त चेतना मे केवल अवशेष स्मृतिया ही विद्यमान है। उधर राधा की मन·स्थिति भी बडी दयनीय हो गयी है। यहीं से कनु की भूमिका लीलाभूमि से युद्ध क्षेत्र की ओर अग्रसर होती है–

"नीचे की घाटी से
ऊपर की शिखरो से
जिसको वह जाना था
वह चला गया।"[56]

यहीं से कनु शासक, कूटनीतिज्ञ, इतिहास निर्माता के रूप में चित्रित है।

यद्यपि कनु एक महान् योद्धा बन गए हैं परन्तु राधा उसी आम्र के वृक्ष के नीचे बैठकर प्रणाम के क्षणों को याद करती तथा कनु का नाम बार–बार लिखती मिटाती है। उसकी स्मृतियों, घुटन, निराशा के बीच वह सोचती है–

"जहाँ तुमने मुझे अमित प्यार दिया था,
वहीं बैठकर कंकड, पत्ते, तिनके, टुकडे चुनती रहती हूँ।
तुम्हारे महान बनने में
क्या मेरा कुछ टूटकर बिखर गया है कनु?"[57]

श्री कृष्ण जिस समय अपनी सेनाओं के साथ युद्ध में भाग लेने जा रहे थे। उस समय वे शासक का प्रतिनिधत्व कर हरे थे। राधा के मन में दो प्रश्न उद्भूत होते हैं– क्या युद्ध भूमि सार्थक है या लीला भूमि। तन्मयता के प्रगाढ़ क्षण सार्थक है अथवा पाप–पुण्य, धर्म–अधर्म के नाम पर यह युद्ध। प्रणयलीला अर्थहीन है अथवा युद्धभूमि।

उस कनु के लिए कर्म, स्वधर्म, निर्णय दायित्व आदि महत्व रखते हैं परन्तु कनुप्रिया इस सबसे हटकर कनु को एकटक देखती रहती है। वह राधा से राधन वन गई है। कनु को युद्ध की थकान, उदासी, खिन्नता, तनाव, घुटन एव द्वद्व की स्थिति से शान्ति एव सान्त्वना का आधार केवल राधा ही है–

"अन्त मे तुम हारकर, लौटकर, थककर
मेरे वक्ष के गहराव मे
अपना चौडा माथा रखकर
गहरी नींद से सो गए हो।
और मेरे वक्ष का गहराव
समुद्र मे बहता हुआ, बडा सा, ताजा क्वार, मुलायम
गुलाबी वह पत्र बन गया है
जिस पर तुम छोटे से छोने की भाँति
लहरों के पालने में महाप्रलय के बाद सो रहे हो।"[58]

इतिहास की, अतीत की दुर्दान्ति शक्तिया जब मानव को बेबश तथा क्षुब्ध कर देती है तब व्यक्ति की प्रणयानुभूति ही सुख शान्ति प्रदान करती है।

अपने 'समापन' से कनुप्रिया कनु की जन्म–जन्मान्तर से प्रतीक्षा करती दिखाई देती है। उसी के शब्दों में –

"और जन्मान्तरों की अनन्त पगडण्डी के कठिनतम मोड पर खडी होकर
तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ
कि इस बार इतिहास बनाते समय
तुम अकेले न छूट जाओ।"[59]

इस प्रकार इतिहास के सृजन में असफलता, विरक्ति, विघटन तथा तनाव से बचने के लिए प्रणय–सम्बन्धों की अत्यन्त महिमा है। ये कोमल, तन्मयतापूर्ण–अनुभूतियां तथा संवेदनायें ही इतिहास को नूतन अर्थ देती है। कहने का तात्पर्य यह है कि कनुप्रिया मात्र

अन्तरग के लिए केलि सखी ही नहीं है, वह 'सावले तन के नशीले सगीत लय मात्र' नहीं है वरन् वह इतिहास को विराट्ता तथा नूतन अर्थ देने के लिए भी तत्पर है। डॉ0 सन्तोष कुमार तिवारी ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा है 'सामाजिक आन्तरिकता की एक सूत्रता के लिए राधा की पीडा, कसक और समर्पण की गहरी रागमयी जीवन प्रक्रिया आवश्यक है- मानवीय विघटन और खोखलापन रोकने के लिए। इन तथ्यों के आधार पर ही समीक्षकों ने 'कनुप्रिया' को 'अंधायुग' से एक चरण आगे की रचना घोषित किया है।''[60]

6. सपना अभी भी (1993 ई0)

डॉ0 धर्मवीर भारती का यह अंतिम काव्यसकलन है। इसमें उनकी 39 कविताओ का समावेश है। इस सकलन के 'निवेदन मे डॉ0 धर्मवीर भारती ने लिखा है- बहुत लम्बे अरसे के बाद मेरा कविता सकलन आपके हाथों में है। वैसे भी कविताएं लिखने के बीच-बीच मे पहले भी बहुत लम्बे अंतराल छूटते थे लेकिन इस अवधि में तो एक कविता और दूसरी कविता के बीच में कभी-कभी तो वर्षो का अंतराल रहा है। इस संकलन में सन् 1959 से लेकर सन् 1993 तक की कविताएं हैं- चौंतीस लम्बे वर्ष यानी दो वनवासों की अवधि से भी कहीं ज्यादा इन दो-दो वनवासों की समवेत अवधि के बाद भी घर लौट पाया हूँ या नहीं-पता नहीं।''

इस संग्रह में कुल 39 कविताएं हैं- कन-कन तुम्हे जी कर, उसी ने रचा है, रवीन्द्र से, दीदी के धूल भरे पॉव, सागर पर सूर्यास्त, चैती तीन टुकडे, शब्द तुमने रचे, तटस्थता तीन आत्मकथ्य, पुराना किला, शेष, परिणति, खाली हाथ तुम्हारे लिए, धीरे-धीरे अन्दरूनी मौत, दरबार म एक नवागन्तुकः गणतन्त्र दिवस, उबुद वाली द्वीप की एक दोपहर, पत्नी, दोस्तों तुम्हारे बावजूद, कभी-अब भी, कोई और तुम, आखिरकार, द्वार, एक सुखान्त? प्रेमकघनी, सोनारूके नाम, ग्रीग्री के पास, सूफले की चट्टान पर तुम्हारे साथ, रहो जहॉ हो-सुख से, प्यार-पकी उम्र का, प्रार्थना, मुनादी, प्रभु के लिए वर्षो बाद फिर एक कविता, पर्व, अलस्सुबह का प्यार, एक कविता इलाहाबाद पर, याद उस शहर की, क्या फायदा, कदमपोखर, अन्तरात्माः एक खाली, शाम की बातचीत, क्योंकि, अनाम, गंगालहरी।" यह काव्यरचना भारती जी के उस अनन्त सृजन-स्वप्न का साक्ष्य है, जिसने उन्हें आग्रहमुक्त रखकर सृजन के क्षेत्र में आजीवन सक्रिय बनाये रखा और जो उनकी सृजन शक्ति को उत्तरोत्तर गहन प्रभावी और परिपक्व बनाता रहा। इस संग्रह की कविताओं की सृजन तिथियों में वर्षो तक का अंतराल है। अतः प्रत्येक कविता का भावबोध और शिल्प सौष्ठव स्वतंत्र और अनूठा है। साथ ही प्रत्येक कविता गहन आत्मानुभूति, भावसमृद्धि से युक्त दुर्दम सृजन-व्यथा की प्रसूति है।

1951 मे प्रकाशित 'दूसरा सप्तक' के एक कवि के रूप मे भारतीय चर्चित हुए। उसके सवेदना प्रचुर कल्पना सपृक्त कविताओं के लिए वे जाने जाते थे। ठण्डा लोहा 1952 मे प्रकाशित हुआ और भारती का ऐसा कविरूप सामने आया जो नयापन का स्वागत तो करता है लेकिन अपने देश की मिट्टी पर मजबूती से पैर रोपकर तथा अपने देशकाल-समाज के सदर्भ मे विवेकपूर्ण उस नीवनता के रूपो को परख कर। इसीलिए भारती जी की कविता में भारतीय मिथकीय समृद्धि सृष्टि का स्वागत है और उस नए परिवेश मे, समसामयिक परिदृश्य मे, आधुनिक सदृष्टि से नया रूपाकार दिया गया है। परम्परा का उपहास कर आयातित आधुनिकता का उत्साह भरा स्वागत नहीं है, मनोवैज्ञानिक कुंठओ को सहलाया-पुचकारा नहीं गया है, प्रणय और प्रेम को भोगवाद का पर्याय नहीं बनाया गया। अनुभूति के स्वरूप की जरूरत के रूप मे प्रयोगशीलता का स्वीकार है परन्तु प्रयोग के लिए प्रयोग आत्यतिक आग्रह नहीं है। भारतीय गीत परंपरा के सौन्दर्य बोध को नकारा नहीं गया है और कथ्य की मांग पर मुक्तछंद को भी प्रचुर रूप मे इस्तेमाल मे लाया गया है। शब्द की परंपरागत अर्थ सपदा को स्वीकारते हुए प्रतीकों, बिंबो एवं शब्द-संरचना कौशल से उन्हें आवश्यक नया रूप भी दिया गया है।

भारती की कविता में स्वस्थ रोमांटिक मूड की कविता एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति रही है। वस्तुत· रोमाटिक भावना जीवन का महत्वपूर्ण अंश है और सर्जनशील प्रवृत्तियों के मूल में इसका सहभाग होता है। प्रस्तुत सग्रह की रोमांटिक कविता का वैशिष्ट्य यह है कि यहाँ रोमानी तत्व संयत, परिपक्व और साझे में भोगे गये दर्द की समझ से आभिजात्य में समृद्ध हुआ है। पहले वाला उद्वेलता आवेग कुछ अन्तर्मुखी, काल में पक कर गम्भीर हो गया है। यहां प्रणय के आवेग का रूपांतरण प्रेम की धीमी परन्तु गहरी, अधिक आंतरिक, अधिक व्यामिश्र प्रवाहिनी के रूप में हुआ है। व्यामिश्र इस अर्थ में कि दुनिया की बाहरी मार से भी और पारस्परिक साझे जीवन में अनिवार्यतः उत्पन्न खट्टे, कटु तीखे अनुभवों से प्रेम-धारा अधिक बहु आयामी, चिंतनोन्मुख और अनेक स्तरीय बन गयी है। कर्तव्य, विवेक और दायित्व का मिलाजुला बोध अन्त· सलिला की भाँति इस प्रेम की आद्र और रसवान बनाए रखता है। पारस्परिक कारूणिकता का दृढ धागा अजब ढंग से दंपती को बाँधे रखता

है। 'सपना अभी भी' मे दपती प्रेम के विविध रूप सामने आते हैं। इसमे सुध है, उदासीनता है, तन्मयता की टूटन हैं- लेकिन प्रेम का मूल स्रोत कहीं भी खण्डित नहीं होता। पति और पत्नि के बीच विविध भावात्मक सबधो को काव्यात्मक स्तर पर चित्रित किया गया है। 'सपना अभी भी' मे भारती ने गृहस्थ धर्म के विविध आयामी स्वरूप के बडे स्पष्ट चित्र उकेरे है। प्रौढावस्था के मासल परन्तु सहिष्णु गभीर प्रेम का यह रूप प्राय. हिन्दी मे नया है, अनोखा है। पुरूष और स्त्री की विषम शारीरिक अपेक्षाओं, आकाक्षाओं को रेखांकित कर भारती ने गृहस्थ प्रेम की वास्तविकता को भी प्रस्तुत किया है। यह ऐसी कटु वास्तविकता है कि अपने एकात क्षणो मे पुरूष गुस्सैल सॉप की तरह मन ही मन फुफकारता रहता है, परन्तु इन स्थितियो के बावजूद गृहस्थ प्रेम की नींव मजबूत होती है जिसका आधार बच्चे, पारिवारिक सदस्य और कर्तव्य भावना भी है। गृहस्थ जीवन की यह भी वास्तविकता है कि दोनो को फिर भी सब कुछ साथ लेकर, सहकर, एक-दूसरे के साथ निभाना पड़ता है। संबंधो के बीच की दरारे, भॅवर के बावजूद सब कुछ सहकर जीना पडता है। टूटने और जमने की स्थितियो की बड़ी चित्रात्मक अभिव्यक्ति भारती ने की है। असल में भारती के पूरे काव्य ससार में प्रणय और प्रेम का एक काव्यात्मक विकास मिलता है।

इस सबके बावजूद भारती की आतरिक गहन आस्था 'प्रार्थना' जैसी कविता में व्यक्त होती है। भारती की काव्यरचना-प्रक्रिया की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि गीतिकाव्य की तरलता और कल्पनाशीलता तथा व्यावहारिकता के साथ यथार्थ का उग्रपक्ष भी समन्वित होकर प्रकट होता है। दोनो का विलोम संबध नदारद होता है। भारती का मानसिक जुडाव भारतीय सामान्य मनुष्य से कितना गहरे स्तर पर था। इसका साक्ष्य उनकी एक सशक्त कविता 'सोनारू के नाम' कविता देती है-

"सोनारू
तुम्हारे दादा गुजर गए
लेकिन जरा देख लो कि ठग अभी बाकी तो नहीं है।
मैं इतने जादू भरे सौन्दर्य से घिरा
इस कटावदार चॉद और पहाड़ी झरने के पास

उदास खडा हूँ,
जाते समय ले जाऊँगा अपने साथ
सिर्फ यह हरे पन्ने–सा खुवसूरत समुद्र
और तुम्हारी झुर्रियो मे सूखी विहार की गगा की
एक मुट्ठी रेत–।''[61]

डॉ0 धर्मवीर भारती ने 'दूसरा सप्तक' की भूमिका मे अपनी काव्य–रचना–प्रक्रिया का अभीष्ट प्रतिपादित करते हुए लिखा है– ''मैनें सबसे पहले लिखे सरलतम भाषा में रंग–बिरगी चित्रात्मकता से समन्वित साहसपूर्ण उन्मुक्त रूपोपासना और उद्दाम–यौवन के सर्वथा मांसलगीत जो न मन की प्यास को झुठ्लाएँ और न उसके प्रति कोई कुण्ठा प्रकट करे। जो सीधे ढंग से अपनी बात आगे रखे। आदमी की सरल और सशक्त अनुभूतियों के साथ निडर खेल सके, बोल सके।'' इस वक्तव्य को यदि आधार माना जाय तो कहा जा सकता है कि भारती प्रेम और सौन्दर्य का चित्रण करने वाले रोमानी भाव–बोध के रचनाकार है। पर उनकी काव्य रचना प्रक्रिया मे प्रेम और सौन्दर्य के भाव बोध सहज स्वीकार्य है। प्रिय के 'फिरोजी होठों पर' यदि भारती फिदा है तो उस फिदाई को स्वीकार भी करते हैं। किसी कुण्ठा के कारण उस पर नैतिक और दार्शनिक आवरण नहीं डालते। भारती को अगर ''प्रिय के चरण'' प्यारे लगते हैं तो उस पर एक से बढकर एक उपमानों की झडी लगा देते हैं। कहीं वे चरण ''शरद के बादलों से उजले घुले'' लगते हैं कहीं वे ''बेहोश मृदुल नाजुक तूफान'' महसूस होते हैं। इतने पर भी कवि का मन भरता नहीं और उन चरणों को परिश्तों के घरों की छांह में दुबकी हुई पूर्णिमायें, चुम्बनों की पखुरियों के 'दो जवान गुलाब', खण्डहरों में सिसकते 'स्वर्ग के दो गान' आदि न जाने कितने रूपों में उनकी छवियों को बॉध लेना चाहता है? भारती जी हरिवंशराय बच्चन की तरह कहीं भी प्रेम न करने का हलफनामा नहीं देते। उनकी सुस्पष्ट स्वीकृति है ''न हो यह वासना, तो जिन्दगी की माप कैसे हो?'' अत· प्रिय की ''मदभरी अंगड़ाइयॉ'' और ''सांस की पुरवाइयां'' चूमने में उसे छायावादी कवियों की तरह ''झिलमिल तारों की जाली'' नहीं ओढनी पड़ती है। प्रिय के उद्दाम यौवन और मदमाते वय की साहसपूर्ण स्वीकृति भारती को जहॉ छायावादी

रचनाकारो से अलग करती है। वही अनुभूति की प्रमाणिकता उन्हें प्रयोगवादी कवियो के बीच महत्वपूर्ण ढंग से प्रतिष्ठित करती है। यदि अनुभूति की सच्चाई प्रयोगवादी काव्यधारा की मूल विशेषता मानी जाय तो भारती जी की प्रेम सम्बन्धी रचनाए प्रयोगवाद जो आगे चलकर नयी कविता मे परिणत हो जाता है, के अन्तर्गत स्वीकृति होनी चाहिए। छायावादी और छायावादोत्तर कवियो के बाद रोमाटिक प्रवृत्ति गिरिजाकुमार माथुर जैसे प्रयोगशील कवि मे परिलक्षित होती है किन्तु माथुर पर प्रयोगशील आन्दोलन का प्रभाव है और उनकी काव्य रचनाओ में सौन्दर्य, प्रेम, कल्पना और स्वप्न, वैयक्तिक भाव उल्लास तन्मयता में अभिव्यक्ति होने के बजाय बिम्बचित्रों में स्थानान्तरिक हुए हैं। प्रयोग की यह भूमि सहज प्रगीतात्मक भाव व्यंजना में बाधक होती है। पर नयी कविता के रचनात्मक दौर में कई रचनाकारों ने अधिक सहज रुप में भाव व्यजना की है। "इसमें भारती जी को नयी कविता के आधुनिक परिवेश में रोमांटिक मूड के सर्वाधिक निकट माना जा सकता है। यह तो सच है कि उन्होनें नयी कविता के मूल्य बोध को मुख्यत इसी आधार पर विकसित किया है।"

भारती जी का काव्य–बोध छायावादी कवियों की तरह प्रेम की रहस्यवादी शब्दावली नहीं गढता, थोथी आदर्शवादिता में, उपदेशात्मक अन्त नहीं अपनाता अपितु वह निष्छल मन की यथार्थवादी अनुभूति है और सम्भवत· इसी कारण उनका काव्य इस जगत् और जीवन के संघर्षो में विकसित होकर आज भी प्रासंगिक बना हुआ है। विगत और आगत के विवेकपूर्ण मंथन और अनागत के लिए मूल्यवान रत्नों का अनुसंधान डॉ0 धर्मवीर भारती के काव्यसृजन का मुख्य अभीष्ट है।

सन्दर्भ-संकेत

1 आचार्य नद दुलारे बाजपेयी . नयी कविता पृ0-50; दि मैकमिलन कंपनी आफ इडिया लि0, प्र0स0-1976

2 डॉ0 रघुवंश . भारती का काव्य पृ0-3, दि मैकमिलन कपनी आफ इंडिया लि0, नई दिल्ली प्र0स0-1980

3 डॉ0 सतोष कुमार तिवारी· नई कविता के हस्ताक्षर, पृ0-236, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा प्र0सं0-1980

4 डॉ0 धर्मवीर भारती · 'दूसरा सप्तक' (सपा0) अज्ञेय-वक्तव्य, पृ0-163; प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली प्र0सं0-1951

5 डॉ0 धर्मवीर भारती : 'दूसरा सप्तक' (सपा0) अज्ञेय पृ0-177, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली प्र0सं0-1951

6. डॉ0 रवीन्द्र भ्रमर : हिन्दी के आधुनिक कवि, पृ0 260; प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली प्र0सं0-1951

7 डॉ0 धर्मवीर भारती : 'दूसरा सप्तक' वक्तव्य पृ0-163 ; प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली प्र0सं0-1951

8. डॉ0 धर्मवीर भारती · 'दूसरा सप्तक' वक्तव्य पृ0-164, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली प्र0सं0-1951

9. डॉ0 धर्मवीर भारती · 'दूसरा सप्तक' वक्तव्य पृ0-165, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली प्र0सं0-1951

10 डॉ0 धर्मवीर भारती : 'दूसरा सप्तक' वक्तव्य पृ0-169; प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली प्र0सं0-1951

11. डॉ0 धर्मवीर भारती : 'दूसरा सप्तक' वक्तव्य पृ0-171 , प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली प्र0सं0-1951

12. डॉ0 धर्मवीर भारती : 'दूसरा सप्तक' वक्तव्य पृ0-183; प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली प्र0सं0-1951

13 डॉ0 धर्मवीर भारती 'दूसरा सप्तक' वक्तव्य पृ0-165, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली प्र0स0-1951

14 डॉ0 धर्मवीर भारती 'दूसरा सप्तक' वक्तव्य पृ0-172, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली प्र0सं0-1951

15 डॉ0 धर्मवीर भारती 'दूसरा सप्तक' वक्तव्य पृ0-175, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली प्र0सं0-1951

16 डॉ0 धर्मवीर भारती 'दूसरा सप्तक' वक्तव्य पृ0-176, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली प्र0सं0-1951

17 डॉ0 धर्मवीर भारती 'दूसरा सप्तक' वक्तव्य पृ0-184-185, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली प्र0सं0-1951

18 डॉ0 धर्मवीर भारती 'दूसरा सप्तक' वक्तव्य पृ0-183, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली प्र0सं0-1951

19 डॉ0 धर्मवीर भारती 'दूसरा सप्तक' वक्तव्य पृ0-187, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली प्र0सं0-1951

20 डॉ0 प्रभाकर माचवे : उद्धृत विवेक के रग, (संपा0) डॉ0 देवीशंकर अवस्थी, पृ0-21, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली सं0-1978

21 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा' की भूमिका से उद्धृत, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5 द्वि0सं0-1970

22 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा' की भूमिका भाग पृ0-4, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5 द्वि0सं0-1970

23. डॉ0 धर्मवीर भारती . 'ठंडा-लोहा' पृ0-4, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5 द्वि0स0-1970

24 डॉ0 धर्मवीर भारती : 'ठंडा-लोहा' पृ0-7, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5 द्वि0सं0-1970

25 डॉ0 धर्मवीर भारती : 'ठंडा-लोहा' पृ0-7; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5 द्वि0सं0-1970

26 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा' पृ0-10, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5 द्वि0स0-1970

27 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा' पृ0-46, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5 द्वि0स0-1970

28 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा' पृ0-34, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5 द्वि0स0-1970

29 डॉ0 धर्मवीर भारती : 'ठडा-लोहा' पृ0-25, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5 द्वि0सं0-1970

30 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष' भमिका भाग, पृ0-12, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी; प्र0सं0-1959

31 डॉ0 रघुवंश भारती का काव्य, पृ0-12, दि मैकमिलन मपनी आफ इडिया लि0, नई दिल्ली, सं0-1980

32 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 27-28; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0सं0-1959

33 डॉ0 धर्मवीर भारती . 'सात गीत वर्ष', पृ0 31, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0सं0-1959

34 डॉ0 धर्मवीर भारती . 'सात गीत वर्ष', पृ0 68, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी; प्र0सं0-1959

35. डॉ0 धर्मवीर भारती : 'सात गीत वर्ष'; पृ0 64, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

36 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष'; पृ0 63, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी; प्र0स0-1959

37 डॉ0 धर्मवीर भारती · 'अंधायुग' भूमिका भाग, पृ0 3; किताब महल, इलाहाबाद सं0-1983

38. डॉ0 धर्मवीर भारती : 'अंधायुग'; पृ0 12; किताब महल, इलाहाबाद सं0-1983

39 डॉ0 धर्मवीर भारती 'अंधायुग', पृ0 3-4, किताब महल, इलाहाबाद स0-1983

40 डॉ0 धर्मवीर भारती 'अधायुग', पृ0 13, किताब महल, इलाहाबाद स0-1983

41 डॉ0 धर्मवीर भारती 'अधायुग', पृ0 23, किताब महल, इलाहाबाद सं0-1983

42 डॉ0 धर्मवीर भारती 'अधायुग', पृ0 23, किताब महल, इलाहाबाद सं0-1983

43 डॉ0 धर्मवीर भारती . 'अधायुग', पृ0 64, किताब महल, इलाहाबाद सं0-1983

44 डॉ0 धर्मवीर भारती 'अधायुग', पृ0 76, किताब महल, इलाहाबाद सं0-1983

45 डॉ0 धर्मवीर भारती 'अधायुग', पृ0 102, किताब महल, इलाहाबाद सं0-1983

46 डॉ0 धर्मवीर भारती · 'अंधायुग', पृ0 102; किताब महल, इलाहाबाद सं0-1983

47 डॉ0 धर्मवीर भारती · 'अधायुग', पृ0 103; किताब महल, इलाहाबाद सं0-1983

48 डॉ0 धर्मवीर भारती, डॉ0 रमेश कुतल मेघ का लेख (संपा0)-डॉ0 लक्ष्मण दत्त गौतम, पृ0 188, धर्मवीर भारती; कुमार प्रकाशन, 20/5 मोतीनगर, नई दिल्ली; प्र0सं0-1974

49. कनुप्रिया - पृ0 16, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सप्तम् स0-1981

50. डॉ0 रघुवंश- भारती का काव्य पृ0 47; दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लि0, नई दिल्ली, प्र0स0-1980

51. डॉ0 धर्मवीर भारती - कनुप्रिया, पृ0 48; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सप्तम् सं0-1981

52 डॉ0 धर्मवीर भारती – कनुप्रिया, पृ0 44, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सप्तम् सं0–1981

53 डॉ0 धर्मवीर भारती – कनुप्रिया, पृ0 45, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सप्तम् सं0–1981

54 डॉ0 धर्मवीर भारती – कनुप्रिया, पृ0 53, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सप्तम् सं0–1981

55 डॉ0 धर्मवीर भारती – कनुप्रिया, पृ0 60, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सप्तम् सं0–1981

56 डॉ0 धर्मवीर भारती – कनुप्रिया, पृ0 63, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सप्तम् सं0–1981

57 डॉ0 धर्मवीर भारती – कनुप्रिया, पृ0 74, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सप्तम् स0–1981

58 डॉ0 धर्मवीर भारती – कनुप्रिया, पृ0 78, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सप्तम् सं0–1981

59. डॉ0 सन्तोष कुमार तिवारी– नयी कविता के हस्ताक्षर; पृ0 238, नई कविता के प्रमुख हस्ताक्षर, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा; प्र0सं0–1980

60. डॉ0 चन्द्रकांत वांदिवडेकर डॉ0 धर्मवीर भारती ग्रथावली; पृ0 314, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; सं0–1998

61. डॉ0 धर्मवीर भारती : 'दूसरा–सप्तक' संपा0– अज्ञेय; पृ0 176; प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र0सं0–1980

62 डॉ0 रघुवंश · भारती का काव्य पृ04, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लि0, नई दिल्ली, प्र0सं0–1980

(ख) डॉ0 भारती की काव्यकृतियों का शिल्पपरक विवेचन

डॉ0 जगदीश गुप्त ने नए कवि के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए लिखा है– ‘‘नए कवि की दृष्टि सार्वभौम है। अपने देश, अपनी भापा और अपने साहित्य के प्रति सम्मान की भावना उसे मनुष्य मात्र की एकता और साहित्य मात्र की अखण्डता की प्रतीति से विरत नहीं करती। वह सकीर्णता और पारिधिमूलक एकता के स्थान पर उदारता और व्यापकता का वरण करता है। अनुभूति के क्षेत्र मे उसका आग्रह सच्चाई और ईमानदारी पर है, विशेषकर वैयक्तिक अनुभूति पर। वह व्यक्ति स्वातंत्र्य का समर्थक है। वह किसी दर्शन–प्रणाली से नहीं बधा है।[1] पर गजानन माधव मुक्तिबोध ने रचना मे मानव–चेतना को महत्व देने की बात प्रतिपादित की है। उन्होने लिखा है– ‘‘मानव संबधो की अवस्था विशेष के अनुसार मानव की विश्वदृष्टि वनती है। यह विश्वदृष्टि रचनाकार की चेतना का ही रूप है।’’[2] इस प्रकार कहा जा सकता है कि डॉ0 जगदीश गुप्त जहॉ नये कवि के व्यक्तित्व विश्लेषण की उधेड बुन करते हुए उसके व्यक्ति–स्वातत्र्य और ईमानदारी से सपृक्त अनुभूति पर बल देते हैं वहीं मुक्तिबोध कवि की उस चेतना को महत्व देते हैं जो मानवीय सबंधों से जुडे रहने से प्रसूत होती है। इसी को डॉ0 नामवर सिह ने रचनाकार को अपनी शक्ति और प्रतिभा बनाए रखने के लिए ‘‘जनशक्ति से सहयोग लेना या जुडा या जुडा रहना कहा है।’’[3]

डॉ0 धर्मवीर भारती नई कविता के प्रतिनिधि कवि हैं। उन्होनें अपनी काव्य रचना–प्रक्रिया में मनुष्य जीवन के चित्रण को महत्व देने के लिए व्यक्ति–स्वातंत्र्य, उदार–सार्वभौम भावना, विवेक और दायित्व, ईमानदारी, सच्चाई जैसे मानवीय मूल्यों पर विशेष बल दिया है। अत· देखना यह है कि उनकी काव्य रचना–प्रक्रिया में स्तर, भावभूमि, शिल्प, काव्यभाषा, बिंब, प्रतीक, मिथक और टोन का स्वरू‍ क्या है? वह किन रूपों में मानवीय संबंधो की व्याख्या करता है? उनकी रचनाओ में जीवन को ग्रहण करने की दृष्टि क्या है? वह कितनी सार्वभौम है, कितनी व्यापक है और कितनी कवि के विश्वासों से ओतप्रोत है क्योंक कविता नहीं हो या पुरानी, उसके परखने का सर्वमान्य निकष उसमें ग्रहीत मानव

जीवन या डॉ0 भारती के शब्दो मे 'मानव-मूल्य' ही होगा। इस दृष्टि से डॉ0 भारती की रचनाओ मे स्तर, भावभूमि, शिल्प, टोन की काफी विविधता है। परिणामत कवि 'ठण्डा लोहा', 'दूसरा सप्तक' के रोमानी भावबोध से गुजरता हुआ 'सातगीत वर्प', अधायुग' और 'कनुप्रिया'[1] के सास्कृतिक एव आधुनिक भाववोध तक पहुचा है।

प्रयोगवाद और नयी कविता के कवियो ने भाषा प्रयोग के प्रति बडी सजगता दिखाई। अलकार, छंद, तुक के समाप्त हो जाने पर नए कवियो ने भापा को ही अन्तिम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधार माना है। शब्दो की वाह्य सगीतात्मकता समाप्त हो जाने पर नए कवियो ने शब्द की लय को महत्व दिया। अज्ञेय ने अनुभव किया कि आज के जीवन की जटिल सवेदना, बदले हुए मानवीय सबधो की अभिव्यक्ति के लिए पुरानी (छायावादी) भाषा चुक गई है, उसके उपमान चॉद, कमल, निर्झर, फूल, पराग आदि अर्थ की सुनिश्चितता के कारण रूढ हो गए हैं, मैले हो गए हैं– 'देवता इन प्रतीको से कर गए है कूच' अत उन्होनें सर्जनात्मक भाषा पर बल दिया और कहा कि ''काव्य सबसे पहले शब्द है और अंत में भी यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है। सारे कवि धर्म इसी परिभाषा से नि·सृत होते हैं।''[4] अत· नये कवियो ने अर्थवान शब्दो की खोज पर बल दिया और उसके लिए उन्होने भोगी हुई अनुभूति को ही प्रामाणिक आधार माना। छायावादी संवेदना का आधार वह आदर्शवादी दिव्य जीवन था, जो उनका अपना जिया हुआ नहीं था, इसीलिए उनकी भाषा भी यथार्थपरक न होकर एक झूठी दिव्यता की प्रभा फैलाने वाली थी, अत्यन्त बिछलनभरी भाषा 'न तन की न मन की'। नया कवि शब्दो के प्रयोग के प्रति सजग और सचेष्ट हैं, वह भावों का फेनिल उच्छ्वास न होकर विचारों की बेचैनी का जीवित भोग है। नया कवि कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थ भर देना चाहता है। उसने अत्यन्त साधारण और परिचित शब्दों में नयी भंगिमायें और अर्थछांयायें विकसित की है जो उसके सार्थक भाषा-प्रयोग को सृजित करता है। नयी कविता अच्छे शब्दो के संगत प्रयोग पर बल देती है। शब्दों के प्रयोग की यह प्रकृति छायावादी भाषा की प्रयोगविधि तत्समता, रमणीयता और नादात्मकता से भिन्न है। नयी कविता ने जिस कला-चेतना को विकसित किया है, उसमें कटाव का तीखापन का तराश उत्पन्न करने की चेष्टा तथा कम से कम

शब्दों मे अधिक से अधिक बात कहने की उत्सुकता दिखाई देती है। नयी कविता का शब्द चयन, शब्द-रूप, वाक्याश और मुहाविरे मुक्त भाव से अपनाये गये और वे कवि की सृजनात्मक चेतना द्वारा साधित होकर किसी दूरवर्ती लोक की सृष्टि न करके नितात साधारण आसपास के यथार्थ से युक्त होकर घरेलू जैसे प्रतीत होते हैं।[5] नये कवियों ने अपनी अनुभूति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए अंग्रेजी और उर्दू के शब्दो के भी प्रयोग किये हैं। ध्वनियो, विराम चिन्हो और कोष्ठको के प्रयोग से भी काम लिया गया है। प्रयोग की इतनीगहरी चेतना नयी कविता से पूर्व के कवियो मे नहीं दिखाई देती है। शब्दों के संगततम चुनाव के कारण नये साहित्य का शिल्प अधिक सघटित है।

नया कवि लक्षणा, व्यजना, प्रतीक आदि पुराने साधनो का अपने ढग से उपयोग करता है। वह शब्दो के प्रयोग मे उनकी नयी सगति खोलता है। यह नयी शब्द सगति है-मुक्त आसग (फ्री एसोसिएशन) की। मुक्त-आसंग-पद्धति से नया कवि अपने मन, उपचेतन मन की जटिलताओ की अभिव्यक्ति करता है। एक शब्द दूसरे शब्द की सार्थक सगति मे नया अर्थ व्यजित करता है। इस तरह नयी कविता मे काव्य-सत्य और उसके प्रयोग के साधन (भाषा) दोनो के प्रति अधिक सचेतनता दिखाई देती है।

नया कवि भाषा में अमूर्तन के आधुनिक सिद्धान्त को स्वीकार करता है जिसका अर्थ है स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना। इसीलिए आधुनिक कविता में शब्द के चरम अर्थ को न लेकर उसके उन्मुक्त, वैकल्पिक अंश को ग्रहण किया जाता है। काव्य-भाषा के लिए शब्दार्थ की सुनिश्चितता सहा नहीं। अतः नया कवि अर्थ की सुनिश्चितता, स्थूलता तोड़कर उसकी अमूर्त और उन्मुक्त प्रकृति को पुनः स्थापित करता है।[6] भाषा का यह सर्जनात्मक रूप ही कलाकृति के विशुद्ध और प्रमाणित होने का आधार है। इसीलिए नयी कविता का समीक्षक आधुनिक कविता का मर्म ग्रहण करने के लिए काव्य भाषा को ही एकमात्र विश्वसनीय माध्यम मानता है क्योकि वह रचना की उत्कृष्टता की सबसे अधिक विश्वसनीय और कसौटी है।[7]

नयी कविता में प्रतीक और बिंब काव्य-निर्माण प्रक्रिया के विशिष्ट तत्व हैं। प्रतीक

और बिब अप्रस्तुत होते हुए भी भाषिक प्रक्रिया मे प्रस्तुत के स्थानापन्न हो जाते हैं। नयी कविता में बिब योजना अर्थ और अनुभव को विकसनशील बनाये रखती है और कवि की सवेदना की अनेक अर्थ छविया प्रस्तुत करती है; प्रतीक योजना किसी विचार या सकेत को भाव-चित्र मे बदल देती है। इसी तरह नयी कविता मे प्रस्तुत का प्रयोग केवल सादृश्य व्यक्त करने के लिए न होकर उसका सम्बन्ध कवि की सवेदना की अभिव्यक्ति से रागात्मक स्तर पर जुडा हुआ होता है। अभिप्राय यह कि नयी कविता में शब्द-योजना, उपमान, प्रतीक, जीवन-स्थितियो का यथार्थपरक अकन छायावादी कविता से भिन्न और आगे का विकास है। भाषा का यह यथार्थमुखी रूप और उसे साधारण बोलचाल से एक कर देने का प्रयत्न नयी कविता की प्रमुख विशेषता है।

किन्तु भाषा को आज की कला का प्रमाणिक, विश्वसनीय प्रतिमान मानते हुए भी इस बात का ध्यान तो रखना ही पडेगा कि यह 'आज के जीवन की धडकन को व्यक्त करने वाली लय को गहरे स्तर पर पकड सके, परिपाटीग्रस्त अभिव्यक्ति और बाजारू अभिव्यक्ति के खतरे को बचाकर जीवित अभिव्यक्ति करने मे समर्थ हो, कथ्य और कथन में स्पर्धाभाव या द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध साध सके।''[5] भाषा का इसी रूप में प्रयोग सर्जनात्मक है और उसके अतिवादी रूप-कला के लिए से बचकर काव्य के सत्य को धूमिक नहीं पड़ने देता है।

डॉ0 धर्मवीर भारती की काव्य-भाषाः

धर्मवीर भारती भाषा को भाव की अनुगामिनी मानते हैं। वे भाषा के सहज प्रयोग अर्थात् अनुभूति प्रेरित भाषा के समर्थक है। वे मानते हैं कि अपार्थिव कल्पना, टेढे -मेढे शब्दजाल, अस्पष्ट रूपक और उलझा हुआ जीवन दर्शन कविता की सजीवता को नष्ट कर देते हैं। अत भारती भाषा के निश्छल और सहज प्रयोग पर बल देते हैं जो मानव-जीवन की सजीव अभिव्यक्ति कर सके।

भारती की भाषा का रूप बोलचाल का है जो तत्सम् तद्भव और उर्दू के शब्दों के प्रयोग से बनी है। उसमें देशज और बोलियों के शब्द भी मिलते हैं। रोमानी प्रसंगों में

अगर उर्दू शब्दो के प्रयोग हुए हैं तो आधुनिक भावबोध वाली कविताओं मे भाषा तत्सम और तद्भव शब्दावली अपनाती है जो अपने समन्वित रूप मे बोलचाल की लय धारण कर लेती है। 'ठण्डा लोहा' की अधिकतर रचनाये रोमानी भावबोध की हे और 'सात गीत वर्ष', अंधायुग' और 'कनुप्रिया' की रचनाये कवि के आधुनिक भावबोध को स्वर देती है। इसीलिए उर्दू शब्दो का जितना अधिक प्रयोग 'ठण्डा लोहा' की कविताओ मे मिलता है, उतना उनकी बाद की रचनाओं मे नहीं। उर्दू शब्दो के प्रयोग से बनी कविता के कुछ उदाहरण देखिए–

(1) इन फीरोजी होठो पर
बरबाद मेरी जिन्दगी
तुम्हारे वक्ष की जादूभरी मद्होश गरमाई
तुम्हारी चितवनो मे नरगिसो की पात शरमायी।'

(2) यह थके कदम यह हवा सर्द
यह जख्म चीरता हुआ दर्द।''

(3) हो गये बेहोश दो नाजुक मृदुल तूफान
मेरी गोद मे।''

ऐसे प्रसंगों में कवि की भाषा और शैली पर उर्दू का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। इनके अलावा भारती की रचनाओ मे विशेषकर 'ठडा लोहा' की रचनाओं में गुलाब, तीखा नेजा, जाफरानी, इन्तेहा, गवाही, जरूरतमद, खुदकुशी, आमादा, जिस्म, दोशीजा, महज, हैवानियत, तूफान, लाश, रोशनी, खुरेगी, गरीबी, मासूम, कसम, मजदूरी, आवाज़, मखमूर, हरगिज, किस्मत, कसूर, खुद, ताकत, चीख, आवाज, बेजबान, जवान, जहर, बेहोश, गलत कदम, अजब, कफन, बारीक, गुमसुम, शमा, अरमान, सितारे, तडपना, कमजोर आदि अनेक शब्दों के प्रयोग भरे पडे हैं।

''उर्दू के गजल और शेर जीवन की अर्थवती छवियो की समग्र और सबंद्ध चेतना को रूपायित नहीं करते। गजल के प्रत्येक शेर का भावबोध पाठक को निरायास रूप में उपलब्ध होता है। वह पाठक को आवेगात्मक तनाव और उसमे होने वाली श्रांति से बचाये

रखता है।'[2] भारती की शैली मे उर्दू के परपरित प्रेमकाव्य का प्रभाव देखा जा सकता है जो स्थूल तथा उत्तेजना बिबों की सृष्टि के कारण इस भाव-व्यजना की मार्मिक प्रेमानुभूति के रूप में व्यक्त करने मे असमर्थ रह जाती है। प्रिय के उत्तेजक रूप पर ही सारा ध्यान केन्द्रित करने के कारण कवि जीवन का कोई जटिल अर्थ सदर्भ खडा नहीं कर पाता है। कवि का मन प्रिय के जाफरानी तन, गर्म होंठ, गेसुओ की पर्तो के जहर, स्पर्श के जुल्म, सास मे चुम्बन की लहर, नसों मे रेशमी तूफान और चुम्बन की पाखुरी के दो जवान गुलाब के मादक चमत्कार मे अटक जाता है। उर्दू शब्दो के प्रयाग से भाषा रवानगी तो पैदा होती है किन्तु तन्मयता नहीं। भाषा केवल अप्रस्तुतो का उपयोग ऊपरी सादृश्य, स्थूल बिम्ब-विधान करके रह जाती है, जीवन का अन्तर्द्वद्व नहीं प्रस्तुत कर पाती। उर्दू के शब्द प्रयोगों द्वारा प्रयोगो द्वारा कविता में लाई गई जीवन स्थिति मे पाठक भोक्ता की अपेक्षा एक तटस्थ दर्शक बना रह जाता है- देखिए-

तुम्हारे गर्म होठो पर
सुलगता मूँगिया बादल
तुम्हारे स्पर्श के ही
जुल्म से सयम न टिक पाता
किसी गुमनाम टोने में
बधा मैं अकुलाता।'[3]

कवि प्रिय के गर्म होठ और बदन के स्पर्श से उत्पन्न मादकता, व्याकुलता का केवल ऊपरी प्रभाव कथन करके रह जाता है और पाठक का ध्यान भी गर्म होठों पर सुलगता मूँगिया बादल के चुम्बन बिब पर अटक कर रह जाता है। स्पर्श के जुल्म से संयम का न टिक पाना और न किसी गुमनाम टोने मे बँधा अकुलाना प्रिय के रूप और कवि पर पडे उसके प्रभाव का सपाट कथन मात्र है। इसी तरह उमंगो की लहर पर डोलता सा जाफरानी तन, बिजलियो के अछूते फूल में प्रिय के रूप के स्पर्श बिंब को मूर्त नहीं कर पाता। पाठक का ध्यान बिजलियो के अछूते फूल के मादक चमत्कार मे ही अटककर रह जाता है। निश्चय की 'बसती दिन' के वातावरण में कुंजो में छिप-छिप कर दोशीजा स्त्रियों

को छेडने वाला फागुन, लतरों के ताजे फूलो पर ताजी भूले करता हुआ भँवर, फूलों के कंधे पर सिर घर अलसाकर सो रही तितलियाॅ और अम्बर से बरस रहे रिमझिम मस्त फिजा का सूनापन प्रिय को आमन्त्रित करते हैं और कवि मनुहार चुम्वन और आलिंगन के वातावरण मे प्रिय की किरनो जैसी नरम मुलायम बाहो के अलसायें बंधन कसता जाता महसूस करता है, फिर भी उस आवेश में केवल मादकता है, तन्मयता नहीं, अभिव्यक्ति में अनुभूति की तरलता न होकर कथन का चमत्कार ही प्रधान हो जाता है–

''फूलों के कधो पर सिर धर
सो रही तितलिया अलसाकर
कुछ चुपके से समझा जाता यह मस्त फिजा का सूनापन
अम्बर से बरस रहे रिमझिम
मनहरन निमत्रण, आलिगन मीठी मनुहारें, विष चुम्बन।''[14]

'मस्त फिजा का सूनापन' शब्द–संगति बहुत उचित नहीं लगती और इसी कारण यह प्रयोग केवल चमत्कार पैदा करके रह जाता है, एक ऐसा सूनापन जिसका कोई बिब नहीं बनता और आगे की पंक्तियो मे भी चुम्बन, आलिंगन मनुहारें आदि केवल अम्बर से बरस कर ही रह गए हैं उससे न कवि भीग गया और न पाठक ही। अम्बर से 'बरस रहे रिमझिम' क्रिया का प्रयोग कवि के भाव को छायावादी धुँधलका प्रदान कर देता है। इसी तरह कुँजो मे छिप–छिप छेड रहा दोशीजा कलियों को फागुन प्रयोग में दोशीजा कलियों की छेड़छाड को रोकता है, वह पाठक के मन को अपने अजनबीपन के विशेष में अटका देता है। लेकिन कहीं–कहीं उर्दू शब्दों का बडा सीधा प्रयोग भारती की कविता मे दिखाई देता है, जिससे भाषा मे शक्ति, वाक्य विन्यास में स्पष्ट और सरलता आई है। देखिए–

''क्या हुआ दुनियां अगर मरघट बनी
अभी मेरी आखिरी आवाज बाकी है
हो चुकी हैवानियत की इन्तेहा
आदमीयत का मगर आगाज बाकी है।''[15]

आखिरी आवाज, हैवानियत, इन्तेहा तो रोजमर्रा के शब्द हैं ही, कविता में आदमीयत की लय ने 'आगाज' को भी दुरूह नहीं बनने दिया। लेकिन जहां उर्दू शब्दों के प्रयोग से वाक्य विन्यास में कोई बाधा नहीं पहुची, अर्थ संप्रेषण निर्वाध हुआ है, वहा भी इनके प्रयोग से अर्थ की कोई द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया नहीं बनी है, बल्कि चारों ओर एक भावुकता का धुँध फैलकर रह जाता है, यहा तक कि गभीर प्रसगों में भी। एक उदाहरण है-

"यह दर्द विराट जिंदगी में होगा परिणत
है तुम्हें निराशा फिर तुम पाओगे ताकत
उन अँगुलियों के आगे कर दो माथा नत
जिनके छू लेने भर से फूल सितारे बन जाते है ये मन के छाले।"[16]

दर्द, जिन्दगी, छाले, फूल सितारे के प्रयोग से कवि ने जो निराशा में ताकत पाने का समाधान ढूंढा है, वह एक सरल सीधा कथन मात्र लगता है। अस्तित्वादी चेतना के इस पीडा बोध की महिमा का साक्षात्कार कवि ने शब्दों के प्रयोग की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया से बिना गुजरे सीधे कर लिया है।

निष्कर्ष यह कि भारती की भाषा में उर्दू शब्दों के प्रयोग प्रिय के प्रेम और सौन्दर्य के चित्रण मे अधिक हुए हैं जो एक चमत्कार की सृष्टि तो करते हैं किन्तु भावानुप्रवेश नहीं करा पाते, भाषा में रवानगी और साफगोई तो लाते हैं किन्तु जीवन- छवियों का संश्लिष्ट रूप नहीं प्रस्तुत करते। उर्दू शब्दों के प्रयोग ने कवि की प्रेमानुभूति को भावुकता के धरातल पर ही अनुकूलता प्रदान की, किन्तु उस प्रेम की अनुभूति को जीवन रूप नहीं ग्रहण करने दिया। उर्दू गजल शैली नयी कविता की बौद्धिकता को वहन नहीं कर पाती।

हिन्दी भाषा की प्रकृति तद्भव परक है। वैसे नए कवियों ने तत्सम् शब्दों के प्रयोग किए हैं और भारती की रचनाओं विशेषतः अंधायुग और कनुप्रिया में तत्सम शब्दों के प्रयोग हुए हैं। किन्तु भारती की भाषा की मूल प्रकृति बोलचाल की है। अतः तत्सम शब्द भी तद्भव शब्दों की संगति में कवि के विवक्षित अर्थ की अभिव्यक्ति कराने में सफल हुए हैं। सर्वप्रथम हम उन तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों की एक संक्षिप्त सूची दे रहे हैं जो उनकी रचनाओं में प्रयुक्त हुए हैं।

तत्सम शब्द समूह

स्पप्न, गीत, आत्मा, समर्पित, आस्था, विश्वास, मौन, दीप, उत्तर, विवश, लहर, अर्चना, मृदुल, कोमल, शुभ, दिशा, स्वर्ग, वरदान, रश्मि, पूजा, निष्काम, ज्योति, पावन, केश, धनुष, प्रत्यचा, गाण्डीव, स्वर्ग, वासना, प्राण, साध्य, विहग, प्रतिभा, अर्पित, विस्तृत, पवत, शिखर, अकाक्षा, ब्रह्मास्त्र, सामूहिक, रथ, गति, दु ख, तटस्थ, मिथ्या, सघर्ष, युद्ध, क्षण, कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व, विवेक, प्रतिहिसा, प्रतिशोध, जर्जर, वदन-कल्पना, स्तब्ध, द्वीप, विक्षुब्ध, प्रवाल, आच्छादित, शून्यता, अधकार, भविष्य, मर्यादा, शख, ध्वनि, शैशव, पराजय, अस्तित्व, वाणी, सत्य, पशु, मोह, पथ, द्रष्टा, शिल्पी आदि।

तद्भव और देशज शब्द-समूह

ठडा लोहा, सास, सात सपना, ऑसू, फूल, सूरज, चाद, उजला, पांव, पहर, दान, नींद, कली, बादल, मौत, तरूणाई, मदमाते, रतनार, कजरारे, कामकाज, सांस, सिंगार, धरती, अंधेरा, अंधियारा, अगुलियां, कौन, निमंत्रण, चुम्बन, निगलना, खेत, दुबली, अंजुली, बात शाम, उदासी, आचल, मोती, दादी, गाव, धाम, दुधिया, कछुए, पीठ, धरती, निहत्था, हाथ सूना, उठना, सझा, पहला, कपना, बबस, कच्चा, हथेली, माथ, झूठा, धुरी, पहिया, रूखी, सिवार, आम, सजी, आचल, तिनका, पगडंडी, सांस, सांवरा, पुकार, फैलना, गांठ, डगर, डगर, चौपट, लपट, चट्टान, टूटना आदि।

यद्यपि भारती की काव्य भाषा में तत्सम, उर्दू, अंग्रेजी के शब्दों के प्रयोग हुए है, फिर भी उसकी मूल प्रकृति तद्भवपरक शब्दों के प्रयोग की है और इसी कारण वह दैनिक व्यवहारकी भाषा के निकट पहुच गई है, गद्यमुखी हो गई है। तत्सम शब्द तद्भव शब्दों की संगति में प्रयुक्त होकर कवि के इष्ट अर्थ को व्यज्जित करने में सफल हुए हैं। उनके अर्थ की प्राचीन अभिधारणात्मक तद्भव शब्दों की संगति के आधुनिक जीवन संदर्भो की व्याख्या करने में समर्थ हुई है। एक उदाहरण है-

"बडे-बडे महारथी
अकेली निहत्थी आवाज को

अपने ब्रह्मास्त्रो से कुचल देना चाहे
तब मैं रथ का टूटा पहिया
उसके हाथों में
ब्रह्मास्त्रो से लोहा ले सकता हूँ।"[17]

यहाँ 'ब्रह्मास्त्र' का प्रयोग एक प्राचीन अमोघ हथियार का तो अर्थ देता ही है, उससे भी अधिक व्यंजना करता है समाज के उन रूढ विचारों का जो सामान्य शक्ति के स्वातंत्र्य में बाधक है। इसी तरह 'महारथी' समाज के उन सुविधा और शक्ति सम्पन्न लोगों का प्रतीक बन गया जो सामान्य जन के अधिकारो का अपहरण कर उन्हे सामान्य और उपेक्षित ही बनाये रखना चाहते हैं। शब्द-विन्यास की इस कलात्मकता के कारण ही भारती की भाषा में तत्सम शब्द दुर्बोध नहीं होने पाते और अर्थ की गत्यात्मकता के कारण स्थिर और निर्जीव नहीं गते। देखिए-

"जब कोई भी मनुष्य
अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास को।
उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है
नियति नहीं है पूर्व निर्धारित
उसको हर क्षण मानव-निर्णय बनाता मिटाता है।"[18]

यहा कवि ने मूल्यबोध परक तत्सम शब्दावली को अपनाया है फिर भी चुनौती देता है, बदल जाती है, बनाता, मिटाता क्रिया के प्रयोग ने तत्सम् शब्दों की गम्भीरता को तोडकर उन्हें सुबोध बना दिया है। इस तरह परम्पराबद्ध ईश्वरता के स्थान पर कवि ने बडे सुबोध और प्रभावशाली ढंग से मानवीय ईश्वरता को प्रतिष्ठित कर दिया है।

अगर छायावादी कविता ने द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक तत्सम शब्दों को तोडा, उन पर कल्पना और भावुकता का रंग चढाया, तो नयी कविता ने छायावादी तत्सम शब्दों को जीवन के यथार्थ से जोडकर गत्यात्मकता प्रदान की। दूसरी बात यह कि छायावादी कवियों की तरह नये कवियों को तत्सम शब्दों के अभिजात्य रूप से कोई माह नहीं था। वे तो

अर्थवान शब्दो की तलाश करते हैं चाहे वे तत्सम से मिले या तद्भव से। यहाँ तक कि उन्हें उर्दू और अग्रेजी शब्दो के प्रयोग करने मे भी कोई हिचक नहीं होती। आज आजीविका देने वाले के सामने कलाकार की शक्ति के व्यर्थ बन जाने की अभिव्यक्ति करते हुए भारती तत्सम और उर्दू के शब्दों के प्रयोग एक साथ करते हैं जो अपनी शब्द- संगति में इष्ट अर्थ की सफल अभिव्यक्ति करते हैं-

"मेरा विख्यात धनुष
तुमको मिलेगा किसी निर्जन तरु शाखा पर
मुरदा चिमगादड सा टँगा हुआ।"[19]

भारती की भाषा की प्रधान विशेषता है कविता में पाठ्को से संवाद स्थापित कर लेने की। कविता मे यह सवाद, नाटकीय मुद्रा मे कवि की अनुभूति को बातचीत की शैली मे सहज सप्रेष्य बना देता है। देखिए-

"कैसा लगेगा तुम्हे
जब तुम यह जानोगे
कि दूसरे जब जूझ रहे थे नवयुग लाने को
मैने सिर्फ उत्तरा की गुडिया सजायी थी।"[20]

भारती की भाषा का संवाद गुण तत्सम शब्दों के आभिजात्य रूप को न केवल तोड़कर अर्थ के सामान्य धरातल पर उतारता है बल्कि उनसे युगीनसंदर्भ की व्यज्जना भी करता है।

"युद्ध क्षेत्र कर्म क्षेत्र मे मुझको ढूढोगे व्यर्थ तुम
आज तो मिलूँगा मैं तुमको पराये अत पुर में
चाटुकार विद्वानों मूर्खा महिषियों
अशिक्षित विदूषकों से घिरा हुआ।"[21]

युद्ध क्षेत्र, कर्मक्षेत्र अन्तःपुर में चाटुकार, विद्वानों और मूर्खो महिषियों और अशिक्षित विदूषकों से घिरे हुए अर्जुन की विवशता को और गहरा बनाते हैं। शब्दों की संगतियां ऐसी बिठाई गई है कि एक तरफ अन्तःपुर की विराटता और भव्यता खुलती है तो दूसरी तरफ

अपने व्यक्ति स्वातत्र्य का दलन महसूस करते हुए उसी में जीवन जीने को मजबूर अर्जुन का वृहन्नलापन भी प्रकट होता है।

भारती की भाषा पाठकों से सवाद स्थापित करने की कला में अप्रतिम है। प्रबन्धात्मक कविताओ मे तो कथा के कारण सवादात्मकता आ ही जाती है, मुक्त कविताओं में भी कवि किसी न किसी रूप मे बातचीत की लय उभार देता है। कहीं पर पाठकों से सीधे-सीधे मैं (आधुनिक अर्थ में सबके लिए) की शैली में बातचीत करता है तो कहीं वाक्यों में क्रिया पदो के प्रयोग द्वारा। देखिए-

(1) "दर्पणों मे चल रहा हूँ मैं
चौखटों को छल रहा हूँ मैं
सामने लेकिन मिली हर बार
फिर वही दर्पण मढी दीवार।"[22]

(2) "कह दो उनसे
जी खरीदने आये हों तुम्हें
हर भूखा आदमी बिकाऊ नहीं होता।"[23]

(3) "सुनते है तुम किसी अवतार में कछुये थे।"[24]

संवादों में ही आधुनिक रचना जन्म लेती है क्यों कि इसी में आधुनिक मानस के अन्तर्द्वन्द्व को निखारने की अधिकतम गुन्जायश बनती है। विजय देवनरायण साही इस 'संवाद' को ही 'आतरिक एकालाप' कहते हैं जो आज के इस अनैतिक और विश्रृखल युग में कवि की बहुत बडी जिम्मेदारी की तरह महसूस होता है।[25] उनकी प्रसिद्ध कविता 'मछलीघर' की रूढियों अभावों, और शोषणों के बीच जीने वाले वर्ग का जीवन चित्र प्रस्तुत करती है। अज्ञेय, कुंवरनारायण और नरेश मेहता की लम्बी कविताओं में संवादात्मकता का गुण देखा जा सकता है। किन्तु भारती की कविता चाहे 'मुक्तक' हो, चाहे प्रबन्धात्मक संवाद की शैली अवश्य पकडती है, किन्तु कभी-कभी यह संवादात्मक स्थिति अनुभूति को अत्यन्त सरल और सपाट ढंग से प्रस्तुत कर देती है, एक स्थिति विशेष का संकेत बिना किसी

द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया के प्रस्तुत कर देती है, भारती की कविता 'बातचीत का एक टुकडा' की कुछ पक्तिया देखिए–

"जब मैं अपनी शामें वरवाद नहीं करता
कुछ कामकाज में हरदम खोया रहता हूँ।
बातें ?
अब बाते करने वाला रहा कौन ?"[26]

यहा बातचीत की शैली अत्यन्त गद्यात्मक रूप धारण कर लेने के कारण कवि की मनोदशा को किसी अतद्वन्द्व में नहीं प्रस्तुत कर पाती, अकेलेपन की करूण दशा को किसी क्रिया–प्रतिक्रिया में न ग्रहण कर केवल एक स्थिति विशेष की तरफ संकेत कर देती है। इस दृष्टि से विजय देवनारायण शाही की 'मछलीघर' और 'एक आत्मीय की याद' कवितायें अच्छी बन पडी है। जहां भारती 'बातचीत का एक टुकडा' मे 'अब बातें करने वाला रहा कौन ?' कहकर अकेलेपन की दशा का सपाट वर्णन करके रह जाते है, वहा साही प्रेम की अनुभूति को बातचीत की लय मे अन्तर्द्वन्द्व के धरातल पर परत दर परत खोलते चले जाते हैं। कवि ने पहले बातचीत के अनुभव को प्रस्तुत किया और फिर उस अनुभव के अनुभव को स्मृतियों के सहारे गत्यात्मक रूप में बिम्बित कर दिया–

"सचमुच जब मैं बाते कर रहा था
तब तुम कभी नहीं थे
सिर्फ वे शब्द थे जो मुझे तराशते चले जा रहे थे
और तब मैं तुम्हे नहीं, खुद को भी नहीं
उस तीसरे को देख रहा था
जो अक्सर मेरी मृत्यु के भीतर से
अनायास उद्‌भूत होने लगता है।
और जब तक मैं बोलता रहा
कलाकृति की तरह, वह निर्मित होता रहा
फिर मैं जब चुप हो गया

बाजीगर की गेदों की तरह

वह लुज्ज पुज्ज, न जाने किस खीखल में समा गया।''[27]

अनुभूति के यथार्थ को इसी गत्यात्मक रूप में पकडना भाषा मे अन्त सचरित लय को नाट्कीय रूप प्रदान करना है। भारती की भाषा की लय इस दृष्टि से अनुभूति की अति सरलीकृत रूपों में प्रस्तुत करती है, उनके अत्यधिक विशेषणों के प्रयोग अनुभूति में तनाव न पैदा कर उसे सरल सपाट बना देते हैं। दूसरी बात यह कि अत्यधिक विशेषणों के प्रयोग कवि के भावुक होने के कारण सकेत देते हैं और भावुकता कवि के मन को यथार्थ की स्थिति मे नहीं रहने देती। वह उसे कोई न कोई समाधान ढूंढ कर अंतद्वन्द्व से बाहर कर देती है इसीलिए वैयक्तिक चेतना वाली नयी कविता का अधिकांश आज के जीवन के विघटन, टूटन और कडवाहट को भावुकता की लय में ग्रहण करता है। 'कनुप्रिया' तो भावुकता की पुतली है जो, जो बिना विशेषणों की पंक्ति बिछाये एक शब्द नहीं बोलती, 'अधायुग' के पात्र भी कभी-कभी धुआधार विशेषणों के प्रयोग करते हैं जिससे कोई यथेष्ठ बिम्ब नहीं बनता। देखिए-

''भिखमगे, लंगडे, लूले बच्चों की,

एक बडी भीड, उसपे ताने कसती

पीछे-पीछे चल आती है।''[28]

जिस तरह 'अंधायुग' की भाषा उसके पात्रों की विभिन्न मन.स्थितियों उनकी आस्था-अनास्था के अन्तर्द्वन्द्वों की जीवंत अभिव्यक्ति करते हुए भी कहीं-कहीं भावुकता के धरातल पर उतर जाती है और अनावश्यक विशेषणों के प्रयोग के कारण अशक्त हो जाती है ठीक उसी प्रकार 'कनुप्रिया' की भाषा भी राधा के हृदय की भावाकुल तन्मयता की विभिन्न स्थितियों की मनोहर अभिव्यक्ति होते हुए भी कहीं उर्दू शब्दों और विशेषणों के प्रयोग के कारण आधुनिक भावबोध के स्तर से गिरने की गवाही देने लगती है। एक तरफ तो 'कनुप्रिया' की भाषा आधुनिक भावबोध की लय पकडती है-

''मान लो कि मेरी तन्मयता के गहरे क्षण

रगे हुए, अर्थहीन आकर्षक शब्द थे-

तो सार्थक फिर क्या है कनु?''[29]

तो दूसरी तरफ वह 'जिस्म' की भाषा बोलती है–

> ''और तुम क्या जानो कैसे मेरे सारे जिस्म मे
> आम के बौर टीस रहे हैं
> और उनकी अजीब सी तुर्श महक
> तुम्हारा अजीब सा प्यार है।''[30]

जिस्म में 'आमबौर का टीसना', बौर की तुर्श महक, सेतु जिस्म निरावृत जिस्म का उतार–चढाव, कांपते हुए गुलाबी जिस्म, शिथिल अंधखुला गुलाब, तन मुहलगी जिद्दी, नादान मित्र, शोख़ चंचल विचुम्बित पलके, निवंसना जलपरी, साबित मणि जडित दर्पण आदि के प्रयोग उर्दू और हिन्दी के तत्सम शब्दों के अनमेल मेल से बने है जो सार्थक अभिव्यक्ति में बाधक सिद्ध होते है। ''भारती के उर्दू शब्द उनके रोमानी गीतों में तो खप जाते हैं किन्तु राधाकृष्ण के प्रसग में उनका प्रयोग विनाशकारी सिद्ध हुआ है।''[31] अगर उर्दू शब्दों के अनुपयुक्त प्रयोगों पर ध्यान न दिया जाय तो कनुप्रिया की भाषा राधा के प्रेमी की सहज सलोनी भाषा है जिसका स्वरूप बोलचाल का है और इसी स्तर पर वह छायावादी भाषा से भिन्न स्तर की भाषा बन जाती है। राधा की भावाकुल तन्मयता की अभिव्यक्ति करने वाली बोलचाल की इस सहज भाषा की लय में ही कवि ने आधुनिक भावबोध को पकड़ा है और भाषा के इसी रूप में शब्दों की नई सार्थकता मिली है। 'अंधायुग' की भाषा जहां आज के मूल्यों के विघटन के चितन में गद्यात्मक लय पकड़ती है, वहां 'कनुप्रिया' की भाषा राधा की संवेदना की आच में गलकर सहज काव्यात्मक बन गई है। रागतत्व की पीठिका पर आधुनिक शिल्प और भावबोध दोनों के रचाव का 'कनुप्रिया' एक सुगठित कृति है जिसमें कवि की दृष्टि गहरी और मानवीयता अधिक पूर्ण है। इसीलिए उसका काव्यत्व अधिक उन्नत है।

कवि की भाषा जब कथन की वक्रता या व्यंजना–भंगी का रूप ग्रहण करती है तो उसमे नाटकीयता के गुण आ जाते हैं, जिसके सहारे कवि पात्रों की विभिन्न मन स्थितियों, उसकी क्रिया–प्रतिक्रिया, उतार–चढाव की मार्मिक अभिव्यक्ति करता है। कथन की यह वक्रता भाषा मे लक्षणा और व्यजना शक्ति के सहारे चलती है। लक्षणा काव्य की जीवित है, प्राणतत्व है। भारती की रचनाओं मुक्तक और प्रबन्धात्मक दोनों में भाषा की लक्षणा और

व्यंजना शक्ति से काम लिया गया है। भारती की भाषा के व्यजना भंगी प्रयोग के उदाहरण देखिए–

(1) सुनते है तुम किसी अवतार में कछुए थे
अपनी इस बज्रोपस पीठ पर
तुमने यह धरती टिकायी थी
लेकिन उपयोग क्या किया था
सुकोमल मर्मस्थल का ?''[32]

(2) ''जीवन भर मैने आकाश में
निरर्थक चक्कर काटे
ऊचे पर्वत ऊबड–खाबड घाटी वाली
धरती पर कैसे उतरता है
नीचे अंधियारा था।''[33]

(3) ''सुखद है मेरे लिए झुर्रियां पडती हुई पलके उठाकर
गुफा में पडे–पडे समुद्र को देखना।''[34]

'अधायुग' और 'कनुप्रिया' में पात्रों के संवादों में यह उक्ति–वक्रता अपने चरम पर दिखाई देती है। 'अंधायुग' के प्रहरी के इस कथन में उनके जीवन की निरर्थकता की व्यंजना कितनी गहरी और मार्मिक है–

(1) ''मर्यादा, अनास्था, पुत्रशोक, भविष्यत्
ये सब राजाओं के जीवन की शोभा है।''[35]

(2) ''हम जैसें पहले थे
वैसे ही अब भी हैं
शासक बदले
स्थितियां बिल्कुल वैसी ही है।''[36]

काव्य अन्तत लक्षणा पर आधारित होता है। लक्षणा से ही काव्य में प्राण प्रतिष्ठा होती है। इसके मूल में किसी भाव या विचार को मूर्त कर देने की शक्ति निहित रहती है। 'कनुप्रिया' मे राधा के प्रश्नो में भाषा की लक्षणा शक्ति अपने चरम पर दिखाई देती है और इसी कारण राधा के मन की क्रिया-प्रतिक्रिया उसके प्रश्न, उसकी जिज्ञासायें अपनी उक्ति-वक्रता में नाटकीय मुद्रा धारण कर लेती है। राधा के प्रश्नों में भारती की भाषा की लक्षणा शक्ति और नाटकीय मुद्रा को एक साथ देखिए-

"न्याय, अन्याय, सदसद् विवेक-अविवेक
कसौटी क्या है? आखिर कसौटी क्या है?
और लहरे थपकी देकर तुम्हे सुला देती है
सो जाओं योगेश्वर जागरण स्वप्न है
छलना है, मिथ्या है।"[37]

'कनुप्रिया' की प्रेमपूर्ण संवेदना तो बिना नाटकीय मुद्रा अपनाए, बिना व्यंजना भंगी का सहारा लिए अभिव्यक्त होना ही नहीं जानती। यहा तक कि उसके स्थिर चित्र भी नाटकीय संकेतों से अनुविद्ध है-

मैनें कोई अज्ञात वन-देवता समझ
कितनी बार तुम्हे प्रणाम कर सिर झुकाया
पर तुम खडे रहे अडिग, निर्लिप्त, वीतराग, निश्चल
तुमने कभी उसे स्वीकारा नहीं
इस सम्पूर्ण के लोभी तुम
भला उस प्रणाम मात्र को क्यों स्वीकारते
और मुझ पगली को देखो कि मैं
तुम्हें समझती थी कि तुम बीतराग हो, कितने निर्लिप्त हो।"[38]

भारती की भाषा में अनुभूति और विचार का सह-अस्तित्व है। इसीलिए दूसरे नए कवियों की तरह उन्होनें भाषा में विरामचिन्हों, कोष्ठकों, क्योंकि, इसलिए, चूंकि, अर्थात, जैसे निरर्थक शब्दों के प्रयोग बहुत कम किये। अनुभूति प्रेरित भाषा कैसे कविता बनती है, देखिए-

"मैं क्या करूँ,
मातुल।
वध मेरे लिए नहीं नीति है
वह है अब मनोग्रन्थि।
इस वध के बाद
मास पेशियो का सब तनाव
जैसे खुल गया
कहते क्या इसी को है
अनासक्ति ?"[39]

निष्कर्ष यह कि भारती की भाषा में अनुभूति और चिन्तन का सुन्दर समन्वय है। उर्दू शब्दों और विशेषणों के अतिशय प्रयोग से उसमें स्फीति अवश्य पैदा हुई, किन्तु वह दुर्बोधता के शाप से मुक्त है। भारती की भाषा साधारण बोलचाल की लय पकड़ती है और संवादात्मकता तथा नाटकीयता के गुणों से अनुस्यूत है। वह लक्षणा और व्यंजनाधर्मी है। उसकी रूपात्मक क्षमता अद्‌भुत है जिसके कारण भाषा पात्रों की विभिन्न मनःस्थितियों को बिम्ब और प्रतीक के धरातल पर ग्रहण करने में समर्थ है।

बिम्ब–विधान

विशेष की अभिव्यक्ति को स्वीकारने और सामान्य की अभिव्यक्ति को अस्वीकार करने की मान्यता ने नयी कविता में बिम्ब–विधान को इतना महत्व दिया कि वह काव्य में प्रतिमान के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। एजरा पाउण्ड ने लिखा कि "बिम्ब विधान की क्षमता से शून्य लेखन केवल व्यर्थ का विस्तार या उत्पादन है। बिंब विधान वाली एक भी रचना जीवन भर के विधान शून्य लेखन से श्रेष्ठ और महान है। (It ıs better to produce one ımage ın a lıfe tıme than to pıoduce Volumınour works)[40] 'तीसरा–सप्तक' के वक्तव्य में डॉ0 केदारनाथ सिंह की मान्यता है कि "कविता में मैं सबसे अधिक ध्यान देता हूँ बिम्ब विधान पर। बिम्ब विधान का सम्बन्ध जितना काव्य की विषय वस्तु से होता है, उतना ही उसके रूप से भी। वह विषय को मूर्त और ग्राह्य बनाता है और रूप को संक्षिप्त और

दीप्त। एक आधुनिक कवि की श्रेष्ठता की परीक्षा उसके द्वारा आविष्कृत विम्वों के आधार पर ही की जा सकती है। उसी विशिष्टता और उसकी आधुनिकता सवसे अधिक उसके विम्वो मे ही व्यक्त होती है।"

आज नयी कविता मे जिस विम्व को प्रतिमान का महत्व मिल गया है, उसके स्वरूप पर विचार कर लेना आवश्यक है। पुराने भारतीय आचार्यों ने रस के अन्तर्गत विभावन व्यापार मे ध्वनि और सादृश्यमूलक अलकारों के प्रसग में प्रकारांतर से बिम्ब का समावेश भले कर लिया हो, और विम्व शब्द को दृष्टात और निदर्शना अलंकारो की परिभाषा मे खोज निकाला हो, किन्तु भारतीय, काव्य चिन्तन में अर्थ के भीतर निहित या उससे व्यजित होने वाली बिम्बात्मकता के प्रति समुचित दृष्टि नहीं अपनाई गयी। भारतीय साहित्य-चितन का अलकार-विधान प्रस्तुत अप्रस्तुत का अंग तो है, पर रचना प्रक्रिया में वह भाषा में पर्यवसित नहीं हो पाता, भाषा का अविभाज्य अग नहीं बन पाता, जबकि बिम्ब काव्य भाषा की निर्माण प्रक्रिया का अग बन जाता है। बिम्ब को स्वतत्र काव्य-प्रतिमान के रूप मे स्थापित करना आधुनिक पाश्चात्य काव्यचितन का परिणाम है। हिन्दी मे वह अग्रेजी 'इमेज' शब्द का पर्याय है जिसका अर्थ है, किसी पदार्थ का मनश्चित्र या मानसी प्रतिकृति। 'संस्कृत का आलेख्य प्रख्य या चित्र काव्य तो प्रतिकृतिवत् रूप सादृश्य का वैचित्रय समाविष्ट काव्य था जिसमे रसोद्रेक की क्षमता नहीं होती थी।"[42] अत नयी कविता में बिम्ब को महत्व मिला-ह्यूम एजरापाउण्ड, एलडिग्टन और सी0डी0 लीविस के काव्य चितन से। हिन्दी में अग्रेजी 'इमेज' शब्द का अनुवाद 'बिम्ब' शब्द आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की देन है। शुक्ल जी ने काव्य मे बिम्ब शब्द का स्वरूप और महत्व बताते हुए लिखा कि 'काव्य का काम कल्पना में बिम्ब अथवा मूर्त भावना उपस्थित करना होता है, बुद्धि के सामने कोई विचार लाना नहीं। बिम्ब जब होगा तो विशेष का होगा सामान्य या जाति का नहीं।" छायावादी कवियों ने बिम्ब के प्रयोग अवश्य किये किन्तु मूलत वह अनुभूति शून्य कल्पना की वायवीयता मे निर्मित एक 'चित्र भाषा' बनकर रह गया, वह भाषा का तत्व नहीं बना। प्रगतिवादी कविता मे भी बिम्बो की रचना पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। लोकजीवन और यथार्थ प्रकृति से संबधित बिम्ब ही उनकी कविता में महत्वपूर्ण बने। नयी कविता ने यथार्थ

को अपनी कविता का आधार वनाया और न केवल सौन्दर्य बल्कि जीवन के वैविध्य, जटिलता और वैचारिक सघर्ष के सशक्त बिम्बों की रचना की।

काव्य चिन्तन का स्वरूप जानने के लिए बिम्व की परिभाषा से परिचित होना आवश्यक है। डॉ0 नगेन्द्र ने लिखा है कि काव्य विम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस छवि है जिसके मूल मे भाव की प्रेरणा रहती है।[43] स्पष्ट है कि बिम्ब निर्माण में भाव की सघनता और कल्पना की दृष्टि की आवश्यकता होती है। किन्तु डॉ0 नगेन्द्र की परिभाषा यह नहीं स्पष्ट करती कि बिम्ब काव्य वस्तु को भी गति और इच्छित आकार (शिल्प) प्रदान करता है। सी0डी0 लीविस ने विम्ब की शक्ति और स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि कविता में बिम्ब विशिष्ट ढंग से भिन्न-भिन्न रूपों में बिठाये गये दर्पणों की पक्तियो की तरह होते हैं, जो काव्य वस्तु को प्रतिबिम्वत करना न होकर उसमे प्राण-प्रतिष्ठा करना और संदर्भोचित शिल्प प्रदान करना भी होता है। बिम्ब में अमूर्त को मूर्त कर देने की अद्भुत क्षमता होती है।[44] अत नयी कविता इस पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार बिम्ब को काव्य रचना प्रक्रिया का तत्व मानकर चलती है। इन परिभाषाओं में बिम्ब के विषय में निम्न तथ्य प्रकट होते हैं-

1 काव्य बिम्ब भाव गर्भित मानस छवि है।

2 काव्य बिम्ब कल्पना द्वारा निर्मित होता है।

3 काव्य बिम्ब काव्य वस्तु को गति और रूप दोनों देता है।

4 काव्य बिम्ब अमूर्त सवेदन को मूर्त करता है।

अत "बिम्ब का मूल गुण मूर्त होता है चाहे वह किसी पदार्थ का बिम्ब हो, चाहे किसी गुण का। जिन बिम्बों का अमूर्त माना जाता है, वे अचाक्षुण होते है, किन्तु अगोचर नहीं होते"[45] एन्द्रियता बिम्ब की प्रथम और अन्तिम कसौटी है।[46] काव्य बिम्ब के माध्यम शब्द है। प्रत्येक सार्थक शब्द में कोई न कोई बिम्ब निहित रहता है किन्तु अतिशय प्रयोग के कारण शब्द जब अपना अर्थ खो देता है, अर्थात् एक निश्चित अर्थ में रूढ़ हो जाता है तो कवि उसे प्रयोग में लाकर उसमें नया अर्थ भरता है अथवा नया शब्द गढता है। नयी कविता मे बिम्ब और प्रतीक को इतना महत्व मिला कि वे अप्रस्तुत होते हुए भी भाषिक-

प्रक्रिया मे प्रस्तुत के स्थानापन्न हो गये और काव्य रचना-प्रक्रिया में विशिष्ट तत्व बन गये। स्वीकार किया गया कि बिम्ब निर्माण मे केवल भौतिक सादृश्य उपस्थित न कर जीवन का अनुभूति प्रेरित इतिहास चित्रित होना चाहिए। देखिए-

"कानों तक प्रत्यचा खींचने के लिए ख्यात
मेरी भुजाये ये
मिलेगी हर छोटे से छोटे दरवारी के सामने
प्रणाम से झुकी हुयी।"[47]

काव्य में लक्षणा के प्रयोग से भी विम्ब बनता है। प्रत्येक लक्ष्यार्थ एक प्रकार का बिम्ब ही होता है जैसे- "सामने देखा खडा था अस्थि पजर एक। यहाँ दुर्वलता के आधिक्य को अस्थि पजर द्वारा बिम्बित (मूर्त) करता है। इस दृष्टि से मुहाविरे वडे काम के होते हैं। उनके मूल मे लक्षणा होती ही है। निराला की 'भिक्षुक' कविता देखिए-

"वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनो मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को-भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोलो को फैलाता है।"[48]

विवश हवाये
शीश झुकायें
खडी मौन है।[49]

प्रिय से अलग होने की उदास और निराश मनोदशा के अधिकतर गीत कवि के 'सात गीत वर्ष' में संकलित हैं जिनमें कहीं प्रेम की बीती स्मृतिया 'मेघ दुपहरी' के माध्यम से बीतरागी उदासी का बिम्ब प्रस्तुत करती है तो कहीं 'आँगन' उसकी बीती प्रणय लीलाओं का चित्र संजोये हुए उपस्थित हो जाता है-

"बरसो बाद उसी सूने आगन मे
जाकर चुपचाप खडे हो जाना
कोने से फिर उन्हीं सिसकियो का उठना
फिर आकर बाहो मे खो जाना
दो गाढी मेहदी वाले हाथो का जुडना
कपना वेवश होकर गिर जाना।"[50]

स्मृतियो के सहारे बने ऐसे बिम्बो को स्मृति बिम्ब भी कहा जा सकता है। 'दिन ढले की बारिश' में कवि प्रिय के रूप को स्मृतियो के सहारे दृश्य-बिम्ब में अकित करता है-

"और वही बल खाई मुद्रा
कोमल शख वाले गले की
वही झुकी मुदी पलक सीपी मे खाता हुआ पछाड
बेजवान समुन्दर।"[51]

कवि का भग्न मन टूटे जलयान जैसा हो गया है और वह थकी लहरो से पीछे छूटे हुए प्रवाल द्वीप (प्रिय) का पता पूछता है-

"अदर एक टूटा जलयान
थकी लहरो से पूछता है पता
दूर पीछे छूटे प्रवाल द्वीप का।"[52]

(क) **स्पर्शबिम्ब** कविता मे त्वक् (स्पर्श) इन्द्रिय के सहारे पदार्थ की कोमलता, कठोरता आदि के अनुभव को कवि मूर्त सवेद्य बनाता है-

"मेरी बाहो मे शव जैसा ठंडा
कौन गिरा ?"[53]

नयी कविता के कवि साही के भी प्रिय के गुलाबी जिस्म की मृदुलता और गुनगुनापन सुबह की धूप में ही महसूस होती है-

मृदुल कुछ-कुछ गुनगुने से देह के स्पर्श से
अब तुम वापस चले जाओ
नीची निगाहो से
इस बद कमरे मे खिले हुए
नाजुक फूलो, सफेद सीपियो और सदाबहार पत्तियों के बारे मे
विचारते रहो।[54]

नया कवि अनुभूति को उसके वातावरण के साथ देना चाहता है, अपनी अनुभूति को उसकी समग्रता और अविचल रूप मे ग्रहण करने के लिए और इसीलिए उसकी रचना प्रक्रिया, बिम्ब-विधान को गत्यात्मक रूप ग्रहण करना पडता है।

बिम्ब-विधान की प्रक्रिया कुछ इतनी जटिल और विस्तृत है कि इसके भेद-प्रभेद के अनेक आधार स्वत बन जाते हैं। भिन्न-भिन्न दृष्टियों एवं तत्वगत प्रमुखता के आधार पर हर बिम्ब का वर्गीकरण किया गया है।[55] यहां हम सरचना गत (आभ्यंतर तथा वाह्य) कुछ प्रमुख भेदो के आधार पर भारती के बिम्ब-विधान का निरूपण करेंगे। कविता की संरचना के आभ्यतर आधार पर बिम्ब के प्रकार है-

(1) इन्द्रिय सवेद्य (2) वस्तु प्रधान (3) भाव प्रधान (4) अलंकार प्रधान

(1) इन्द्रिय संवेद्य बिम्बः

बिम्ब विधान में ऐन्द्रिय आधार प्रमुख रहता है। ऐन्द्रिय आधार न लेकर बने बिम्बों के पांच भेद किये जाते हैं- दृश्य, स्पृश्य, श्रव्य, घ्रातव्य और आस्वाद्य। इसमें ज्ञानेन्द्रिय जन्य सवेदनायें संमूर्तन का आधार लेती है।

दृश्य बिम्बः दृश्य बिम्ब का आधार रूप होता है। काव्य मे जब सवेदना रूप का आधार लेकर प्रकट होती है, तो दृश्य का चाक्षुप बिम्ब बनता है। जैसे-

"ये शरद के चाँद से उजले धुले से पांव
मेरी गोद में।"[56]

शरद का उजला धुला चाद प्रिय के चरणो के रूप को प्रत्यक्ष या गोचर बनाता है और गोद मे धारण करने की क्रिया उस प्रत्यक्ष को मूर्त रूप देने मे सहायक है। भारती मूलत रोमानी चेतना के कवि हैं। अत उनकी प्रेम और सौन्दर्यपरक रचनाओ मे दृश्य बिम्बो का विधान अधिक हुआ है। कवि की प्रिय के रूप मे इतनी तीखी आसक्ति है कि प्रिय की एक ही छवि को अनेक कोणो से देखता है। कवि प्रिय के चरणो पर अनेक उपमाये निछावर कर देता है। कभी वह उन्हे 'चुम्बनो की पाखुरी के दो जवान गुलाब' कहता है तो कभी 'सात रगो की महावर से रचे महताब' और 'स्वर्ग के खंडहर मे सिसकते स्वर्ग के दोगान कहता है। इस तरह कविता मे प्रिय के चरणो की अनेक छवियाॅ साकार हो उठती है। 'उदास प्रिय' के सौन्दर्य का एक दृश्य-बिम्ब देखिए-

''मुॅह पर ढक लेती हो आचल
ज्यो डूब रहे रवि पर बादल।''[57]

सतोष न होने पर इसी रूप का दृश्य कवि एक दूसरी भगिमा से प्रस्तुत करता है।

''दिन भर उडकर थकी किरन
सो जाती हो पाखे समेट, आचल मे अलस उदासी बन
दो भूले भटके साध्य विहग पुतली में कर लेते निवास।''[58]

किन्तु ऐसे बिम्बो मे कवि की अनुभूति की सवेदनशीलता न होकर मात्र दृश्य विधान दिखाई देता है। धनिको के सामने आज के कलाकार की विवशता का बिम्ब आधुनिक भावबोध की रचना 'वृहन्नला' मे देखा जा सकता है-

''मेरा विख्यात धनुष
तुमको मिलेगा किसी निर्जन तरु शाखा पर
मुरदा चिमगादड़-सा टगा हुआ।''[59]

कहीं-कहीं भारती का प्रिय के सौन्दर्य का चित्रण अपनी बिम्बात्मक छवि में छायावादियों जैसा लगने लगता है। 'मुग्धा' प्रिय की एक छवि गत्यात्मक दृश्य बिम्ब में देखी जा सकती है-

"कुजो की छाया मे झिलमिल
झरते हैं चादी के निर्झर
निर्झर से उठते बुदबुद पर
नाचा करती है परिया हिलमिल।"[60]

इस दृश्य को देखकर पत का 'मोती की लडियों से सुन्दर, झरते है झाग भरे निर्झर' याद आने लगते हैं। प्रिय के रूप विधान में कवि की दृष्टि कहीं-कहीं रीतिकालीन दृश्य भी प्रस्तुत करने लगती है। 'घाटी का बादल' मे घाटी की हालत देखी जा सकती है-

"इस कामातुर मेघधूम के
औचक आलिगन मे पिसकर
रतिश्राता सी मलिन हो गयी।"[61]

और इसके बाद बादल का चित्र और चरित्र दोनो एक साथ देखिए-

"थका हुआ बादल
पश्चिम के श्याम निरावृत शिखरो पर
क्षण भर गहरी नींद सो गया।"[62]

आधुनिक भावबोध की रचना, 'कनुप्रिया मे भी रीतिकालीन-नित नीर भरी गगरी ढरकावै' वाली अज्ञात यौवना का दृश्य देखा जा सकता है-

"भरे हुए घडे में अपनी चचल आँखों की छाया देखकर
उन्हें कुलेल करती चटुल मछलिया समझकर
बार-बार सारा पानी ढलका देती है।"[63]

भारती की रोमानी मूड की कविताओ का एक तेवर वह भी है जिसमें प्रिय से अलग होने पर कवि की मनोदशा का दृश्य उपस्थित होता है। प्राय ऐसी कविताओ में मन की उदासी को स्मृतियो के सहारे बिम्बित किया गया है। प्रेम की असफलता में उदासी तथा निराशा सघन होती है। निराशा से भरे कवि के प्रिय की मनोदशा का अमूर्त बिम्ब विधान देखिए-

"मैं साँसे लेती हूँ जैसे
टूटे फूटे बरबाद मकबरे की
नीवो मे दबी हुई
अभिशाप ग्रस्त प्रेतात्माये
नि श्वासे भरती है।"[64]

प्रिय अपने पत्र मे कवि को लिखता है-

"मैं चला जा रही हूँ ऐसे
जैसे लहरो पर विवश लाश बहती जाये।"[65]

कवि भी अब जीवन की समस्याओं के बचाव मे तथा प्रणय के मोहभग के कारण प्रिय को अपने 'ठडा लोहा' बन जाने की स्थिति का बोध कराता है। उसकी इस विवशता का एक दृश्य बिम्ब देखिए-

"मैं पगडडी के कठिनतम मोड पर
तुम्हारी प्रतीक्षा मे
अडिग खडी हूँ, कनु मेरे।"[66]

आज की जिन्दगी से बार-बार जूझने और हर बार परास्त होने से उत्पन्न निरर्थकता की अनुभूति को कवि दर्पणो मे चलने और असफलता मे प्रतिबिम्बो के हसने के बिम्बों से प्रकट करता है-

"दर्पणो मे चल रहा हूँ
चौखटों को छल रहा हूँ
सामने लेकिन मिली हर बार
फिर वही दर्पण मढी दीवार .
किन्तु अकित भीत पर बस रग से
अनगिनत प्रतिबिब हसते व्यग से।"[67]

अलंकार प्रधान बिम्बः

जब बिम्ब-विधान मे अलकरण प्रधान हो जाता है और कवि अपने कथन को चमत्कार अथवा स्वच्छन्द कल्पना से भर देता है जिसके कारण अनुभूति शेष हो जाती है तो अलकार प्रधान बिम्बों की रचना होती है। इस प्रकार के बिम्बो के मूल मे केवल आकार साम्य या रूप रग का साम्य मुख्य रहता है। जैसे-

"जाजेट के पीले पल्ले की यह दोपहर नवम्बर की।"[68]

कवि का कहना है कि अब उसका बोध रोमानियत से गैर रोमानियत मे बदल गया है। इसकी अभिव्यक्ति मे ही उसकी रोमानियत (स्वच्छन्द कल्पना) का एक बिम्ब देखा जा सकता है-

"जल सी निर्मल
मणि सी उज्जवल
नवल स्नात
हिम धवल
ऋजु
तरल
मेरी वाणी।"[69]

इसी तरह कवि अपनी 'आस्था' को अलकृत श्रेणी मे बिम्बित करता है-

"अब भी धुली है सुबह की बारीक कच्ची धूप।"[70]

इसी तरह किरनों की 'नरम मुलायम बाहों, लहर पर नाचते ताजे कमल की छॉव, जैसे चरण, तुम्हारे स्पर्श की बादल घुली कचनार नरमाई, मृदालो सी मुलायम बांह, आदि पंक्तियो में कवि ने स्पर्श के अनुभव को बिम्बों मे ग्रहण किया है।

(ख) आस्वाद्य बिम्बः आस्वाद्य बिम्ब को रस्य बिम्ब भी कहा जाता है। यह बिम्ब कविताओं में प्रायः नहीं के बराबर होते हैं। कवि इसे चुम्बन के माध्यम से व्यक्त करता है। जैसे-

"तुम्हारे गर्म होठो पर
सुलगता मूगिया बादल।"[71]

अथवा– "तुम्हारी सास मे बारीक
चुम्बन की लहर छायी।"[72]

(ग) घ्राण बिम्बः इसमें घ्राणेन्द्रिय के सहारे सवेदना को मूर्त रूप दिया जाता है उदाहरण है–

"आधी रात भटकने वाले इन रजनीगधा के फूलो
की प्रगाढ मधुर गन्ध
आकारहीन, रूपहीन, वर्णहीन।"[73]

अथवा– "तुम्हारे पास डाल पर खिली
तुम्हारे कन्धो पर झुकी
वह आम की ताजी, क्वारी तुर्श मजरी मैं ही थी।"[74]

अथवा– "वह भी थी आंगन की वेल
किन्तु महक रही थी आज बडी दूर से।"[75]

(घ) श्रव्य बिम्बः श्रव्य या श्रोत बिम्ब वह है जो गुंजायमाण वर्णो के प्रयोग का आधार ग्रहण करता है। ऐसे बिम्बो का प्रयोग नयी कविता में क्वचित ही मिलेगे। उदाहरण है–

"दीख नहीं पडते हैं पेड
मगर डालों से ध्वनियों के
अगणित झरते हैं झर–झर।"[76]

(2) वस्तु प्रधान बिम्बः

इस प्रकार के बिम्ब विधान में कवि किसी दृश्य या स्थिति का यथा तथ्य वर्णन करने पर जोर देता है। कुछ उदाहरण लिए जा सकते हैं–

(1) "एक अजनबी को देख
आंगन में नहाती हुई गौरैया भागी
और झुरमुटों में छिपकर व्याकुलता से चहकी।"[77]

(2) "बहुत उदास सा पीले गुलाब का चेहरा
हथेलियो मे टिका हुआ गुमसुम।"[78]

(3) "अपनी कुण्ठाओ की
दीवारो मे बदी
मैं घुटता हूँ।

(4) "काली चट्टानो पर
उदास बैठा
मैं सोच रहा।"[80]

(5) "खाली हाथ
नगे पाव
रक्त सने
फटे हुए वस्त्रो में
टूटे रथ के समीप
जडा था निहत्था ही।"[81]

(6) "जिस तरह बाढ के बाद उतरती गंगा
तट पर तज जाती विकृत शव अधखाया
वैसे ही तट पर तज अश्वत्थामा को
इतिहासो ने खुद नया मोड़ अपनाया।"[82]

(3) भाव प्रधान बिम्ब–

भाव प्रधान बिम्बों में इन्द्रिय सवेद्यता अत्यन्त गहन स्तर पर होती है। एक प्रकार से अनुभूति की तीव्रता दृश्य पक्ष को धूमिल कर देती है। कुछ उदाहरण लिए जा सकते हैं–

"लगता है इन पिछले वर्षो में
सच्चे झूठे, मीठे–कडवे, सघर्षो मे
इस घर की छाया थी छूट गयी अनजाने

जो झुककर मेरे सिरहाने

कहती है

भटको बेबात कहीं

लौटोगे अपनी हर यात्रा के बाद यहीं।''[83]

प्रिय के अभाव मे कवि की उदासी और विवशता का यथातथ्य रूप उसके दिन गुजारने मे बिम्बित हुआ है-

''सूरज मे नहाए हुए

नीले कमल सा यह चैत का नशीला दिन

मैने बिताया नहीं

केवल गुजार दिया।''[84]

नया कवि पहले के लोगो के श्रमशलय जीवन को महत्व देता है, किन्तु आज अपने ऐतिहासिक बोध की प्रखरता मे उसे जिदगी पहले की तुलना मे अधिक कडवाहट भरी महसूस होती है। वह ईश्वर के कच्छप अवतार की तरह पृथ्वी को केवल पीठ पर धारण करके अपनी जिम्मेदारी से युक्त नहीं हो पाता, बल्कि उसके भीतर की पाप, उबकाई, सीलन, कीचड को भी अपनी सवेदना मे जीता है। भारती ने इस सत्य की अनुभूति को 'एक अवतार मे' कच्छप और उसके पीठ पर धरती को धारण करने के बिम्ब-विधान मे ग्रहण किया है।

''सुनते है तुम किसी अवतार मे कछुये थे

अपनी इस वज्रोपम पीठ पर

तुमने यह धरती टिकायी थी

लेकिन उपयोग क्या किया था

सुकोमल मर्म स्थल का?

उससे क्या नीचे उत्तर

थाहा था अनस्तित्व का सागर

पतन्नोन्मुख होकर।''[85]

कछुए का बज्रोपम पीठ पर धरती को टिकाना एक दृश्य बिम्ब है किन्तु इसमे 'सुकोमल मर्मस्थल का उपयोग' की कडवाहट भरी अनुभूति की व्यजना मुख्य है।

कवि अपने जीवन की उपलब्धि की अभिव्यक्ति कर रहा है किन्तु अनुभूति के अभाव मे सारा कथन एक चमत्कारपूर्ण उक्ति का बिम्ब बनकर रह गया है, कोई भावानुभूति नहीं हो पाती। जैसे–

"देखो मुझे
हाय मैं हूँ वह सूर्य
जिसे भरी दोपहर मे
अधियारे ने तोड दिया।[86]

'साझ के बादल' का बिम्ब विधान भी अनुभूति न जगाकर, एक स्वच्छद कल्पना का बधा बधाया छायावादी रूप प्रस्तुत करके रह जाता है। देखिए–

"ये अनजान नदी की नावे
जादू के से पाल
उडाती
आती
भँवर चाल।"[87]

कविता की सरचना का वाह्य आधार लेकर जिन बिम्बों का निर्माण होता है, वे मुख्य रूप से दो हैं- (1) साद्र बिम्ब (2) विवृत बिम्ब। ये कविता के स्वरूप और गठन की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं।

(1) सान्द्र बिम्ब ऐसे बिम्बों मे शब्दो की सश्लिष्ट योजना बहुत महत्वपूर्ण होती है एव सुगठित अभिव्यक्ति छवि के केन्द्रीकरण पर विशेष बल दिया जाता है। साद्रण का अर्थ होता है–केन्द्रीकरण। इनका अनुभूति पक्ष दुर्बल किन्तु अभिव्यक्ति की कसावट पूर्ण होती है जैसे–

"रख दिए तुमने नजर मे बादलो को साधकर
आज माथे पर सरल सगीत से निर्मित अधर
आरती के दीपको की झिलमिलाती छाह मे
बासुरी रखी हुई ज्यो भागवत के पृष्ठ पर।"[88]

प्रिय के अधर का कवि के माथे पर रखने की क्रिया को भगवत के पृष्ठ पर बासुरी रखने की क्रिया से अत्यन्त सुगठित ढ्ग से उपमित किया गया है, फिर भी इस दृश्य बिम्ब से कोई रागात्मक अनुभूति नहीं उत्पन्न होती। "बिम्ब विधान मे केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति छायावादी है। आज की कविता मे प्राय केन्द्रीय बिम्ब होते ही नहीं या होते हैं तो उनकी स्थिति बहुत कुछ प्रतीकात्मक होती है।"[89]

(2) विवृत बिम्ब किसी छोटी अनुभूति या विषय को कल्पना और चिन्तन के सहारे ऐसे विवृत किया जाता है कि पूरी कविता मे वह एक सघटित इकाई के रूप मे अभिव्यक्त होती है और उससे जो बिम्ब बनता है उसे विवृत बिम्ब कहते हैं। नयी कविता में छोटी-छोटी अनुभूतियों के चित्र कविता की इसी प्रकार की सरचना से बने हैं। जैसे-

"बाधो!
यह नदी घृणा की है
काली चट्टानो के
सीने से निकली है
अन्धी, जहरीली गुफाओं से
उबली है।"[90]

डॉ0 भारती की 'रथ का टूटा पहिया' कविता आज के जीवन मे सामान्य से सामान्य के महत्व को स्थापित करने की अनुभूति का विवृत रूप है-

"मैं
रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेकों मत।"[91]

निष्कर्ष यह कि डॉ0 भारती की रचनाओ मे चाहे वे रोमानी मूड की हो, या आधुनिक भावबोध की, बिम्ब विधान हुआ है जिससे उनकी कविता सहज सप्रेष्य तो बनी ही है, उसमे सक्षिप्तता और दीप्ति के गुण भी आये हैं। बिम्ब-विधान से कवि की कविता में विभिन्न अनुभूतियो को एक केन्द्रीय सार्थक अन्विति मिली है। बिम्ब विधान का उनकी कविता मे यह सरचनागत योगदान है। कविता मे दृश्य बिम्ब प्रस्तुत करने की भारती की क्षमता अद्भुत है। प्रिय के रूप और छवियों को तरह-तरह से मूर्त करने मे उनकी कविता का चारुत्व बढा है। भारती की वर्ण बोध की क्षमता तो समूची नयी कविता मे अद्वितीय लगती है। रगों का इतना सटीक बोध और उनके प्रयोग की नवीनता प्राय दूसरो मे नहीं दिखाई देती। उनके बिम्ब प्राय रोजमर्रा के जीवन मे प्रयुक्त विशेषणो और उपमानो से बनते हैं और सदर्भोचित अर्थ क्षमता से सम्पन्न होते हैं। अत वे दुर्बोधता या क्लिष्टता से मुक्त है। रचनाओ मे बिम्ब विधान के पीछे कवि की अनुभूति की ऊष्मा और सक्रिय कल्पना की शक्ति दिखाई देती है जबकि नयी कविता की कतिपय रचनाओ मे बिम्ब विधान होने के बावजूद कवि की अनुभूति सप्रेष्य नहीं बन पाई है और ऐसी कविताओं की अनुभूति कितनी भी जीवन सघर्षो के बीच जन्मी हो, ताजी, हो, जन सामान्य की दावेदार हो, किन्तु सप्रेष्य न बन पाने पर वह रचना को भ्रूण बना देती है और ऐसी रचनाये आलोचको की तमाम वैसाखियों का सहारा लेने के बावजूद पाठकों के बीच उपेक्षित हो जाती है। डॉ0 केदारनाथ सिह भी स्वीकार करते हैं कि निर्दिष्ट अनुभूतियों के अभाव मे बहुत से बिम्ब केवल एक वैचित्र्य की सृष्टि करके रह जाते हैं और कभी-कभी रचना मे विरोधी बिम्बो को लाकर बिठा देने से नयी कविता मे दुर्बोधता पैदा हुई है।"[92] भारती का बिम्ब विधान अनुभूति प्रेरित होने के कारण रचना को सजह सवेद्य बनाता है। हाँ जहा उनका बिम्ब विधान उर्दू शैली से प्रभावित है, वहॉ वह कथन की चमत्कारोक्ति बन कर रह गया है, उसमें अनुभूति की तन्मयता नहीं उभर पाई है। जैसे-

"उमगो की लहर पर
डोलता सा जाफरानी तन
बिजलियों के अछूते फूल-"[93]

–के स्पर्श के बिम्ब में–ध्यान 'बिजलियों के फूल' के मादक चमत्कार में अटक कर रह जाता है।

दूसरी बात यह है कि बिम्ब कवि के सपूर्ण व्यक्तित्व से निर्मित होता है। उसमें उसकी जीवन–दृष्टि, उसके उपचेतन का प्रोद्भास तथा मानस के निगूढ़तम गहरों की अनुगूँज रहती है। इस दृष्टि से भारती के बिम्बो का मूल स्वरूप रोमानी है। ये आधुनिक भावबोध की रचनाओ मे भी इसके लिए जगह बना लेते हैं। 'घाटी का बादल' कविता में घाटी का कुमारी रूप मे चित्रित बिम्ब 'रति श्राता बनिता' का बन गया है और बादल 'कामातुर' नायक का। 'कनुप्रिया' तो 'गुलाबी तन' और 'रूपहली ढलान वाले गोरे कन्धों' से बनी ही है। इससे यह सिद्ध होता है कि भारती का मानस आधुनिक जीवन की जटिलता को सहज रूप में नहीं स्वीकार कर पाता।

काव्य मे प्रतीक योजना

काव्य या साहित्य मे जब कोई प्रस्तुत या उपमान प्रयुक्त होते–होते किसी विचार, भाव या वस्तु के एक निश्चित अर्थ में रूढ हो जाता है, तो वह उस अर्थ विशेष का प्रतिनिधान या प्रतीक कहलाता है। प्रतीक एक प्रकार से रूढ उपमान का ही दूसरा नाम है, अर्थ की अनेक सम्भावनाओ से विरहित होकर अर्थ विशेष के लिए सीमित। उसे उसी अर्थ में एक सामाजिक स्वीकृति मिल जाती है जैसे नदी के जल के थपेडे खाते–खाते कोई प्रस्तर खण्ड घिसकर शालिग्राम की एक गुटिका बन जाता है और समाज में वह शिव का प्रतीक बन जाता है। धर्म, दर्शन, विज्ञान या कला के क्षेत्र में भौतिक अभौतिक अनेक प्रतीक जन्म लेते रहते हैं जो अनेक अमूर्त और अदृश्य वस्तुओं का प्रतिनिधान करके अनुभूति–क्षेत्र का विस्तार करते रहते है। किन्तु भाषा को सप्रेष्य बनाने के लिए इन धार्मिक, ऐतिहासिक और पौराणिक प्रतीकों का समाज के बीच प्रचलित होना आवश्यक है, अन्यथा उनका प्रयोग भाव–सप्रेषण क्षमता से शून्य होगा।

प्रतीक सामान्यत अपनी अर्थछाया दो धरातलों पर फेंकता दिखाई देता है। पहला प्रत्यक्ष धरातल और दूसरा परोक्ष धरातल। प्रत्यक्ष धरातल पर प्रस्तुत अनुभूति अभिधा की

तरह अर्थ का सामान्य प्रत्यक्षीकरण करती है किन्तु यहाँ अर्थ का ठहराव नहीं होता। यह तात्कालिक अनुभूति लक्षणा की तरह एक दूसरी अनुभूति की तरफ सकेत करने लगती है और कवि शब्दो के रचाव से इस सकेतिक अर्थ को सघन और मूर्त करने लगता है। यह अर्थ व्यग्यार्थ बन जाता है। यही प्रतीक का परोक्ष धरातल है। एक उदाहरण है-

''पार्टनर, झाड दो ना राख
दर्शक को बडी मनहूस लगती है
तुम्हारी उगलियो में दबी सिगरेट जल चुकी है
राख केवल रह गयी
पुरानी गठन के सपर्क के कारण।''[94]

अनुभूति के प्रत्यक्ष धरातल पर सिगरेट की राख पहले राख की अभिधा को प्रत्यक्ष करता है किन्तु पुरानी गठन, पुराने सपर्क शब्दों की सगति से एक-दूसरे अर्थ-समाज की सडी-गली मान्यताओ की ओर सकेत करने लगती है और इस तरह सिगरेट की राख समाज की मृत परपराओ की प्रतीति कराकर प्रतीक बन जाती है। किन्तु वह प्रतीति कवि के आशय का केवल प्रतिरूपण नहीं, बल्कि कवि के आशय का भावचित्र मे बदल जाता है। प्रतीक अर्थ और भाव के अनन्त विस्तार को शब्द की परिधि मे सीमित कर देता है। इस दृष्टि से प्रतीक का सर्वाधिक नैकट्य ध्वनि एव शब्द-शक्ति से है। जिस प्रकार वाच्यार्थ को अतिश मेत करके व्यग्यार्थ ध्वनि काव्य को जन्म देता है, उसी प्रकार शब्द के प्राथमिक अर्थ के द्योतन के पश्चात् जिस द्वितीय अर्थ का प्रत्यापन होता है, वह प्रतीकार्थ की सज्ञा से अभिहित किया जाता है। वस्तुत प्रतीक एक प्रकार से व्यग्यार्थ का ही परिणत रूप है। व्यग्यार्थ के ध्वनन के पश्चात ही शब्द प्रतीक का रूप धारण करते हैं। प्रतीक की आधारशिला ध्वनि या व्यग्यार्थ ही है।

नयी कविता का प्रतीक-विधान और डॉ0 धर्मवीर भारती

बिम्ब की तरह प्रतीक और प्रतीको का चुनाव कवि के व्यक्तित्व से सम्बन्धित होते हैं। अत नयी कविता के प्रतीक नये कवियों की वैयक्तिक अनुभूति, सामाजिक नियत्रण और

सर्जनाओं के अस्वीकार तथा व्यक्ति स्वातत्र्य की चेतना की अभिव्यक्ति करते दिखाई देते हैं। जिस तरह छायावादी कवियो ने अपनी स्वच्छद वैयक्तिक भावनाओ, आध्यात्मिक रहस्यवादी अनुभूतियों, अतृप्त यौन आकाक्षाओ की अभिव्यक्ति के लिए अपने प्रतीक प्रकृति, सस्कृति और कलाओ जैसे चित्र, मूर्ति, सगीत आदि से चुने और प्रगतिवादी कवियो ने अपनी द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दृष्टि की अभिव्यक्ति के लिए किसानो के जीवन मे काम आने वाले हँसिया, हथौडा, हल, कुदाली, भैंसागाडी, लाल सेना आदि को प्रतीक बनाया उसी तरह प्रयोगवाद और नयी कविता के कवियो ने अपने प्रतीक पुराण, इतिहास, धर्म, प्रकृति, राजनीति आदि से ग्रहण किये। इसमे प्रतीको का महत्व स्रोत की दृष्टि से न होकर पुरानी रूढियो के विरोध और आज की जटिल मानसिकता की अभिव्यक्ति की दृष्टि से है। नयी कविता ने पहली बार पौराणिक और प्राकृतिक स्रोतो से लिए गये प्रतीकों को उनके प्राचीन सदर्भो से काट कर आधुनिक सदर्भ के साथ सगति बिठाकर उन्हे भाषा का सहज अग बना दिया। नरेश मेहता की 'सशय की एक रात' के राम, कुँवरनारायण के 'आत्मजयी' का नचिकेता, धर्मवीर भारती के 'अधायुग' के अश्वतत्थामा, गाधारी, युयुत्स, कृष्ण आदि पात्र तथा 'कनुप्रिया' के कृष्ण और राधा आज के बदले हुए जीवन सदर्भो की मानसिकता की अभिव्यक्ति करते हैं। भारती ने तो ग्रीक पौराणिक कथा के पात्र प्रमथ्यु को भी अपनी आज की सवेदना का वाहक बनाया। विदेशी प्रतीको मे सलीव का प्रयोग हिन्दी की नयी कविता में अधिक हुआ। नयी कविता में प्रकृति से सर्वाधिक प्रतीक लिए गये जैसे गुलाब, फूल, कमल, नदी, द्वीप, साप, पुरुवाई, बरगद, धूप, आसमान, बाध, नार, पोखर, झील, मछली, सागर, नाव, सूरज आदि। नयी कविता की व्यक्तिवादी चेतना, नगरीकरण की प्रवृत्ति का प्रसार पश्चिम के मुक्त समाज से सम्पर्क एव फायडीय मनोवैज्ञानिक अनुसधानों आदि ने मिलकर नयी कविता को काम प्रतीक बहुल बना दिया। ये प्रतीक उनके समाज विच्छिन्न मन की पीडा, ऊब, खीझ, निर्वासन, व्यक्ति स्वातत्र्य की खोज आदि की अभिव्यक्ति करने में सहायक है। फिर भी इतना तो मानना ही होगा कि छायावादी और प्रगतिवादी प्रतीको की तुलना में नयी कविता के प्रतीक अलकारिता से मुक्त होकर शुद्ध प्रतीक बन गये और लाक्षणिक वक्रता से आगे बढ्कर अत्यधिक साकेतिक रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

आज की कविता मे जो जीवन मूल्यो का सकट है, जो सामाजिक और सास्कृतिक विसगतियॉ है उनको समसामयिक सदर्भो मे प्रस्तुत करने के लिए नये कवियो ने प्रतीकों का प्रयोग किया है। इन प्रतीको के प्रति चाहे वे धार्मिक ऐतिहासिक या प्राकृतिक किसी भी स्रोत से लिए गये हो, कवि का दृष्टिकोण वस्तुपरक है, बौद्धिक है, ताकि एक तरफ वे व्यक्ति या समाज की मनोदशा की यथार्थपूर्ण अभिव्यक्ति कर सके और दूसरी तरफ मानवीय सन्दर्भो मे नये मूल्यो के सृजन में प्रेरणा दे सके। आज के बदले हुए जीवन सन्दर्भो मे परम्परागत मूल्य नयी जीवन-दृष्टि बनाने मे बाधक सिद्ध हो रहे हैं। अत नये कवियो के प्रतीको मे रूढ परम्परा के प्रति विद्रोह तथा जीवन मूल्यो के प्रति कटु अनास्था एव चुनौती का दृष्टिकोण दिखाई देता है-

"उस पुष्प से, गध से बचो
जो अपने पराग मे तक्षक लिए फिरता है
जो परम्परा की निर्जीव सत्ता पर जीने वालो
तक्षक भागवत के पृष्ठ के ससर्ग मे भी
परीक्षित की मृत्यु लिए फिरता है।"[96]

नयी कविता में प्रतीकों का प्रयोग दो अर्थो मे किया गया है। एक तो युगीन मूल्य सकट को अभिव्यक्त करने के लिए और दूसरे इस मूल्य सकट के बीच मानवीय मूल्यों की सम्भावनाओ की खोज करने के लिए। भारती के काव्य मे काव्य प्रतीको के ये दोनों रूप मिलते हैं।

भारती के 'ठडा लोहा' में प्रतीक विधानवाली रचनाओं का अभाव है, क्योंकि उसमें कवि की दृष्टि सामयिक विसगतियों, मूल्य सकटो पर न होकर प्रिय के रूप पर बडे गहरे में आसक्ति दिखाई देती है। केवल 'ठडा लोहा' कविता कवि के प्रणय के मोहभग को, उसके मानसिक आघात-प्रत्याघात के दर्द को चित्रित करने के लिए प्रतीकार्थ ग्रहण करती है। जीवन की समस्याओं के दबाव मे कवि के गीत भरे होठो, स्वप्नभरी पलको और प्रेम पुलकित आत्मा पर अब गीत नहीं, स्वप्न नहीं, प्रेम नहीं, बल्कि ठडे लोहे की एक पर्त जम गयी है। अत वह अपने प्रिय से कहता है कि जीवन की इस कारा में आवाज लगाने पर

भी तुम्हे कोई उत्तर न मिले तो यही समझना कि धीरे-धीरे कोई इसको निगल गया है। 'ठडा लोहा' कवि के प्रेम के टूट जाने से उत्पन्न विवशता का प्रतीक है। इस सग्रह की दूसरी कविता है 'फूल' मोमबत्तियाँ और 'सपने' जो क्रमश जीवन के सघर्ष और उससे मिली खण्डित आशा के प्रतीक है किन्तु इनसे जीवन की विराट्ता को जो बोध दिया गया है, उसकी उपलब्धि कवि भावुकता के धरातल पर आश्वस्त होता है और एक मानवीय गौरव की भावना से भर उठ्ता है किन्तु यह विराट्ता अभी कवि के जीवन की अनुभूति नहीं बन पाई है। इस सग्रह की एक और प्रतीकात्मक रचना है 'मेरी परछाहीं' जो कवि मे साथ न देने की शिकायत कर कवि अपने जीवन से बाहर करना चाहता है या सदा-सदा के लिए उससे मुक्ति चाहता है-

"मेरी और तुम्हारी दूरिया कितने पीछे छूट चुकी हैं
वापस जा तू
वहीं जहाँ से शुरू हुई थी
यह पगडडी।"[97]

इसमें पगडडी जीवन का प्रतीक है। 'कवि और अनजान पगध्वनिया' मे 'अनजान पगध्वनिया' जीवन की आस्था की प्रतीक है जो 'कुठाओं की दीवारों मे बद घुट्ते हुए कवि मन को नयी चेतना (जीवन जीने की प्रेरणा) प्रदान करती है, अपराजित रहने का बोध देत है। 'ठडा लोहा' में प्रयुक्त प्रतीक कवि-निर्मित है। इन्हें प्रकार की दृष्टि से वैयक्तिक प्रतीक भी कहा जा सकता है, किन्तु प्रयोग की दृष्टि से इनका महत्व साधारण स्तर का है क्योकि इनमें जीवन के किसी जीवत रूप की आतरिक विवृत्ति नहीं मिलती है। हाँ, उनके प्रयोग कवि के रोमानियत से गैर रोमानियत की ओर प्रस्थान करने के सकेत अवश्य देते हैं।

भारती द्वारा प्रयुक्त प्रतीक मुख्यत ऐतिहासिक और पौराणिक है, जो आज के जीवन मूल्यों के सकट की अभिव्यक्ति करते हैं। ऐतिहासिक प्रतीक 'बाणभट्ट' आज के रचनाकारों की धनियों के हाथ बिकी हुई तेजस्विता का व्यग्यात्मक निरूपण है। कवि का व्यग है कि 'बाणभट्ट' की प्रतिभा आज जीवन के साधनों को जुटाने की विवशता मे बिक गई है, उसकी आत्मा सोने के जाल की सीमाओं में कैद है, उसके शब्द कूटज्ञों, बाधिकों, नगर-सेठों और

वेश्याओं को खुश करने मे बिके हुए हैं। आज वह अपने आश्रयदाता के हाथो पान का जूठा बीडा पाकर धन्य हो रहा है–

सत्य है राजा हर्षवर्धन के हाथो से मिला हुआ
पान का सुगन्धित एक लघु बीडा
चाहे वह जूठा हो ।
हाय बाणभट्ट! हाय!
तुमको भी, तुमको भी, आखिर यही होना था।"[98]

'बृहन्नला' एक पौराणिक प्रतीक है जिसके माध्यम से आज के कलाकार की दुहरी मानसिकता जीने की विवशता का मार्मिक चित्रण हुआ है। कलाकार भीतर से तो नृत्य, गीत, कविता, कलाओ का धाता (अर्जुन) है किन्तु बाहर यथार्थ जीवन मे अपनी स्थिति को बनाए रखने के लिए नित्य भयाकात अज्ञातवास करता हुआ विवश बृहन्नला। पूरी कविता मे कव ने 'बृहन्नला' प्रतीक का निर्वाह इतने कौशल के किया है कि एक तरफ कलाकार (अर्जुन) की शक्ति का अहसास पाठक करता चलता है और दूसरी तरफ उसकी मजबूरी (बृहन्नलापन) भी प्रकट होती चलती है। पूरा प्रतीक अपनी अभिशक्ति में विवशता का बिम्ब बन गया है। देखिए–

कार्नो तक प्रत्यचा खींचने के लिए ख्यात
मेंरी भुजाये मिलेगी
हर छोटे से छोटे दरबारी के सामने
प्रणाम से झुकी हुई
पाओगे तुम मेरा ओजस्वी सैनिक तन
कुत्सित नपुसक मुद्राओ में ढला हुआ
मेरी विख्यात घनुष
तुमको मिलेगा किसी निर्जन तरुशाखा पर
मुरदा चिमगादड सा टगा हुआ।''[99]

'भीतर उत्तरा की गुडिया सजाने' और बाहर अपनी प्रतिभा और स्वाभिमान के तटस्थ रखने का नाटक रचने का आत्मलोचन कलाकार की बेचैनी की सुन्दर विवृत्ति करता है।

नया कवि वैयक्तिक चेतना को महत्व देता है। वह पहले के लोगो के श्रमश्लथ जीवन को महत्व अवश्य देता है, किन्तु जिये हुए जीवन को। झूँठी सिद्धियों वाले प्रभामन्डित जीवन को वह स्वीकार नहीं करता। इसी मानसिकता के कारण भारती 'एक अवतार' प्रतीक के माध्यम से एक तरफ ईश्वर (कचछप अवतार) द्वारा सबके जीवन के दायित्व को वहन करने की क्षमता को झूठा सिद्ध करते हैं तो दूसरी तरफ नये कवि की उस गहरी सवेदना को स्वर देते हैं जो जीवन के गहरे से गहरे सकट को जीने से मिली है। कवि का व्यग्य है–

याद करो प्रभु
जब तुमने पीठ पर
धरती टिकायी थी
सबका बोझ अपने पर लेने की
ताकत कहाँ पाई थी।[100]

भारती की 'सपाती', 'रुक्मी की सेना' और 'बलराम' पौराणिक प्रतीकों वाली रचनायें जो 'कल्पना' अक 5 मई 1964 में छपी है, और बाद में डॉ0 रघुवश द्वारा सपादित 'भारती का काव्य' सग्रह में है, वे उन व्यक्तियों पर व्यग हैं, जो खुद का जीवन नहीं जीते, किन्तु बडी दार्शनिक भरी मुद्रा में आज के चुनौती भरे जीवन को ईमानदारी से जीने वालों के विषय में निर्णय दिया करते हैं। इतना ही नहीं, वे अपने को प्रथम कोटि का विद्रोही भी घोषित करते हैं जबकि सच यह है कि वे आज की कडवाहट भरी जिन्दगी से पलायन कर चुके हैं और विद्रोह की बेमानी भी समझते हैं। सपाती के कथन मे कवि का व्यग्य देखिए–

"मेरा भाई था जटायु
जो व्यर्थ के लिए जाकर भिड गया दशानन से
कौन है सीता

और किसको बचाये ? क्यो ?
निरादृत तो आखिर मे दोनो ही करेगे उसे
रावण उसे हरकर और राम उसे जीतकर।''[101]

आज जीवन युद्ध मे शामिल न होने वाले किन्तु दूर से ही निर्णय देकर जीवन जीने वालो पर अपनी प्रभुता स्थापित करने के छद्म पर कवि ने 'रुक्मी की सेना' कविता के माध्यम से व्यग्य किया है–

हममे से हर एक युद्ध को, सकट को
बडे बारीक स्तर पर जिया करता था
बात सिर्फ इतनी थी, शामिल नहीं थे हम
युद्ध हमें दूर से सुनाई दिया करता था।[102]

'बलराम' कविता उस नेता का प्रतीक जो आजादी की लड़ाई मे तो अलिप्त रहा, बलराम की तरह हल लेकर युद्धभूमि से दूर–दूर घूमता रहा गाव–गाव की, खेत–खेत की पदयात्रा करके समाज का सेवक कहलाने लगा। वास्तव में उसने जनता का दुख–दर्द कभी नहीं झेला और युग से असगत बन गया। फिर भी भोले गाव वालो की कृपा पर सतजन कहलाने लगा। देखिए–

''जिसे युग बदलना हो, वह रहे बदलता
मैं तो सतुष्ट हूँ
भोले गाव वालों की कृपा पर पलता
न मैं पक्ष में हूँ न मैं विरोधी हूँ
युग से असगत हूँ।[103]

'सपाती', 'रुक्मी की सेना' और 'बलराम' प्रतीक क्रमश नयी कविता पूर्व के रचनाकार, आलोचक और सत विशेष के अर्थ की प्रतीकात्मकता भी बहन करते दिखाई देते हैं।

भारती के काव्य में जीवन की मानवीय सभावनाओं, नये मूल्यों के सृजन की प्रेरणा की खोज भी की है। उनका 'टूटा पहिया' समाज की बडी ताकतों के बीच एक उपेक्षित

सामान्य जन की भावना, अस्तित्व चेतना की दृढता पूर्वक पहचान कराता है। वह कहता है कि जब बडे–बडे महारथी अकेली निहत्थी आवाज को कुचल देना चाहेंगे, तब मैं ब्रह्मास्त्रो से लोहा ले सकता हूँ। इतिहासों की सामूहिक गति झूठी पड जाने पर सच्चाई व्यक्ति का आश्रय लगी– सामान्य उपेक्षित टूटे हुए व्यक्ति का। अत –

"मैं
रथ का टूटा पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेंको मत।"

भारती का ग्रीक, पौराणिक प्रतीक 'प्रमथ्यु' भी जीवन में साहस और बलिदान के मूल्य की प्रतिष्ठा करता है, सामान्य जन के भीतर मूर्छित 'प्रमथ्यु' (साहस) को जगाकर और साथ ही साथ छायावादी कवियों की उस पलायन प्रवृत्ति पर व्यग्य करता है जो साहस और दृढता के अभाव में जीवन सघर्षो से बचकर आकाश मे निरर्थक चक्कर काटते रहे, अर्थात् जीवन के सुख–दु ख की बाते न कर चाद, सितारे और परियों की बातें करते रहे। प्रमथ्यु इस साहस को जगाने में कभी समाप्त होने वाली मर्मातक पीडा के भोगने के पीछे साहस के प्रतीक प्रमथ्यु का दृढ विश्वास है–

"कोई तो ऐसा दिन होगा
जब मेरे ये पीडा सिक्त स्वर
उसके मन को बेध मूर्च्छित प्रमथ्यु को जगायेंगे
उस दिन अकेला मैं रहूँगा नहीं
उसके हृदयों में जागूँगा।"[104]

समाज में प्रमथ्यु साहस, गिद्ध जीवन में पलायन प्रवृत्ति रखने वाले और द्युतितर उन पुराने विचावालों का प्रतीक है जिन्होनें आग (सुविधा और साधन) को अपने हित में कैद कर रखा है।

भारती ने महाभारत के ख्यात कथानक का उसकी ऐतिहासिक चेतना को अक्षुण्ण रखते हुए ऐसा विकास किया है कि वह आज के युगबोध को, युद्ध से उत्पन्न मूल्य सकट

को झकृत कर सके। इसीलिए महाभारत युद्ध अपने अधेपन की स्थिति का परिचायक मात्र न रहकर एक प्रतीक भी बन गया-आधुनिक युग के अधेपन का प्रतीक।"[105] अधायुग के पढने पर लगता है कि वास्तविक महाभारत तो अब हो रहा है, व्यास द्वारा लिखा हुआ तो कल्पित था। अधायुग के चरित्र एक तरफ पौराणिक कथा से जुडे हैं और दूसरी तरफ आधुनिक मूल्यों के भिन्न-भिन्न सकटो को इतने गहन स्तर पर जीते हुए चित्रित किए गए हैं कि वे अपने-अपने विचारों के प्रतीक भी बन गये कृष्ण, अश्वत्थामा, युयुत्स, माता गाधारी पात्र के रूप में एक स्तर पर कथानक को आगे बढाते हैं तो दूसरे स्तर पर अपने प्रतीक मूल्य को भी खोलते चलते हैं।"[106]

'अधायुग' शीर्षक ही महाभारत की घटना के आधार पर विश्वयुद्धो से उत्पन्न आज के मानवमूल्यों के सकटो और विकृतियो का प्रतीक है। पुस्तक के प्रारम्भ में ही कवि इस प्रतीक को स्थापित करते हुए कहता है-

युद्धोपरात
वह अधा युग अवतरित हुआ
जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, आत्माये सब विकृत हैं।[107]

मर्यादा की पतली डोरी दोनो पक्षो में उलझी हुई है। कृष्ण को छोड कर शेष सभी अधे हैं, पथभ्रष्ट है, आत्महारा और विगलित हैं, अपने अतर की अधगुफाओ के वासी और यह कथा उन्हीं अधो की है इसीलिए अधकार के इस अपराजेय समर से लडते हुए भारती ने इस कथा को अधों के माध्यम से ज्योति की कथा बना दी है और इसे ही मूल्यों के धरातल पर जीवन सभावनाओं की खोज भी कहा जा सकता है।

अधायुग के चरित्रों में अश्वत्थामा सबसे प्रभावशाली है। वह युद्ध से उत्पन्न हिसा, प्रतिशोध, रक्तपात, घृणा-मानव मात्र से घृणा जैसी विकृतियों का जीवन्त प्रतीक है। युधिष्ठिर के अर्द्धसत्य ने उसके मन के शून्य और कोमल की हत्या कर दी है और अब वह पशु मात्र रह गया है, अध बर्बर पशु। वध ही उसके जीवन का सत्य है। उसके वर्तमान में सिर्फ वह है और उसकी प्रतिहिसा। वह सोचता है कि-

मेरी इस पसली के नीचे

दो पजे उग आए

मेरी ये पुतलियाँ

जिन दातो के नोच खाए

पायें जिसे

बध केवल बध, केवल बध

अतिम अर्थ बने मेरे अस्तित्व का।[108]

माता गाधारी अधी पुत्र ममता का प्रतीक है। ममता विवेक शून्य होती है। अत दुर्योधन के पक्षधर अश्वत्थामा को युद्ध के लिए प्रेरित करना प्रकारान्तर से हिसा और प्रतिशोध को पालना है, जीना है। इसी अधी ममता में वह वर्तमान के जीवन के विवेक से शून्य हो गई है। वह कृष्ण का विरोध करती है और सत्य की खोज में पाण्डव पक्ष में जाने वाले अपने ही बेटे युयुत्स पर व्यग्य करती है। अपनी इस अधी नीति के कारण युद्ध से उत्पन्न सारी विकृतियों को झेलते हुए भी अपने पुत्र की विजय की आशा लगाये रहती है। कहती है–

"मेरी यह आशा

यदि अधी है तो हो

पर जीतेगा, दुर्योधन जीतेगा।"[109]

उसका दुर्योधन के विजय की आशा वर्तमान–निरपेक्ष भविष्य की आशा है, जो युद्धोन्माद की जडता के कारण पैदा होती है। वह इतनी कटु हो गयी है कि नैतिकता, मर्यादा, अनासक्ति, कृष्णार्पण को अधी प्रवृत्तियाँ मानती है। वह एक तरफ आँखो की पट्टी खोलकर दुर्योधन (अश्वत्थामा गलती है) के शरीर को बज्र बना देती है तो दूसरी तरफ प्रतिशोध की भावना में कृष्ण को शाप भी दे देती है जबकि इस शाप की प्रथम समिधा वह स्वय बनती है।

धृतराष्ट्र भी विवेक शून्य अधी वैयक्तिकता के प्रतीक हैं। वे स्वीकार करते हैं कि इस

युग मे मेरा स्नेह, मेरी घृणा, मेरा नीति, मेरा धर्म, बिल्कुल वैयक्तिक था, अपने से बाहर के यथार्थ से शून्य। मेरी ममता ही युद्ध मे नीति थी, मर्यादा थी। प्रहरी के शब्दों में वे अधे है अब तक कुछ भी नहीं देख सके। वे जीवन के व्यापक सत्य को अपनी वैयक्तिकता की परिधि में देखने वाले युद्ध के राजा के प्रतीक बन गए। उनकी सत्य चेतना पुत्रमोह और राज्यमद मे अधी हो गयी थी। इसीलिए उन्हे अपनी वैयक्तिक सीमाओ से बाहर आकर युद्ध की विकृतियो को सत्य को हाथो से छू-छू कर अनुभव करना पडता है-

> सिर्फ मैं सजय के शब्दो से
> सुनता आया था जिसे
> आज उसी युद्ध को हाथो से छू-छू कर
> अनुभव करने का अवसर पाया है।[110]

युद्ध के कारण मानव मूल्यो का आधार सत्य की मर्यादा कितनी धूमिल हो जाती है कि उसकी पहचान कोई भी पक्ष नहीं करना चाहता। ऐसे वातावरण में सत्य की खोज करने वाले मानव मन को गहरी वेदना भोगनी पडती है। इसका जीता जागता प्रतीक है युयुत्स। अपने पक्ष को झूठा समझकर वह कृष्णार्पित होता है, सत्य को पाने के लिए किन्तु विजय की दलीय भावना मे उसे वहा भी सत्य नहीं मिलता, बल्कि भीम द्वारा अपमानित होना पडता है। अपने पक्ष मे लौटने पर उसे माता गाधारी के व्यग्यबाण सहने पडते हैं- 'बेटा, भुजायें ये तुम्हारी पराक्रम भरी थकीं तो नहीं अपने बन्धुजनों का वध करते-करते?' और युयुत्स जैसे सत्यान्वेषी को युद्ध के वातावरण में आत्महत्या करनी पडती है।

'अधायुग' में प्रहरी साधारण जन के प्रतीक है जिनके नाम पर युद्ध रखा जाता है किन्तु जीत किसी की हो, दुर्योधन की या युधिष्ठिर की, उनकी हालत जैसे पहले थी वैसी ही अब भी रहती है। उनका सारा जीवन अन्धे शासकों के राज्य मे उपेक्षित और निरर्थक बीतता है, दुर्योधन के सूने गलियारे में बायें से दायें और दायें से बायें। उनकी मेहनत, उनकी आस्था, उनके साहस और उनके श्रम का कोई मूल्य नहीं। मूल्यों के सकट के इस युग में जीवन की निरर्थकता का तीखा अहसास अगर किसी पात्र में उभरा तो प्रहरियों में-

जैसे हम पहले थे
वैसे ही अब भी हैं।''

इसी तरह सजय उस तटस्थ ज्ञान के प्रतीक जो जीवन के अच्छे बुरे किसी भी रूप मे शामिल नहीं होता वह रथ मे पहिए के ऊपर लगे शोभा चक्र के समान है जो पहिए के घूमने के साथ-साथ घूमता है किन्तु स्वय जमीन नहीं छूता, उस पर चलता नहीं। इसीलिए उसकी वेदना बडी मर्मातक होती है।

याचक झूठे भविष्य का प्रतीक है वर्तमान से निरपेक्ष भविष्य का, कर्मो से शून्य भविष्य का। इसीलिए युद्ध के दौरान या जीवन के क्रम मे वह झूठा पड जाता है, उसकी हत्या हो जाती है और इसी आधार पर मानव जीवन की सम्भावनाओ की खोज करता हुआ कवि यह स्थापित करता है कि-

"नियति नहीं है पूर्व निर्धारित
उसको हर क्षण मानव-निर्णय बनाता मिटाता है।"[112]

क्योकि आचरण मे ही मानव अस्तित्व की सार्थकता है और यह आचरण वर्तमान में ही विवेक परिचालित होता है और इस विवेक आचरित वर्तमान से ही मानव भविष्य जुडा हुआ है-

"वर्तमान से स्वतन्त्र कोई भविष्य नहीं
हर क्षण इतिहास बदलने का क्षण होता है।"[113]

'युधिष्ठिर विवेक-शून्य आचरण के प्रतीक है। युद्ध में दलीय नीति के कारण उनकी जीवन भर सत्य बोलने की साधना व्यर्थ बन जाती है और अपने अविवेक के कारण जीवन के शुभ और कोमल मूल्यो को पशुता में बदल देती है।

'अधायुग' मे कृष्ण का चरित्र मानव-जीवन को मूल्य देने वाली आस्था का प्रतीक है, जो शुभ और अशुभ, आसक्ति और अनासक्ति दोनों को एक भाव से जीता है, गाधारी के शाप को भी और अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्रों से उत्तरा के गर्भ को बचाकर मानव भविष्य

को जीवन देने के दायित्व को भी यहा तक कि अश्वत्थामा के अगो से बहने वाले रक्त, पीप, पीडा की मर्मातक वेदना को वहन करने मे भी कृष्ण को कोई हिचक नहीं होती है। कृष्ण की आस्था ही वह ज्योति है, जहाँ तक भारती मूल्यो के सकट के अधेरे से गुजरकर पहुँचना चाहते हैं। 'अधायुग का सारा सघर्ष इसी आस्था और अनास्था के द्वन्द्व का चित्रण है जिसमे भारती का सर्जक व्यक्तित्व अपने सफलतम रूप मे दिखाई देता है। प्रतीको का इतना सार्थक और सफल प्रयोग नयी कविता की दूसरी रचनाओ मे दुर्लभ है। 'अधायुग' की भाषा और उसकी सवेदना आपस मे ऐसी घुल मिल गई है कि पात्रो के अलावा रथ, घुरी, पहिया, उस पर लगने वाला शोभाचक्र पख, पट्टी आदि अपने-अपने अर्थ के प्रतीक बन गए हैं।

'कनुप्रिया' में राधा की भावाकुल तन्मयता, 'पूर्वराग', 'मजरी-परिणय', 'सृष्टि-सकल्प' और 'इतिहास' के अन्तर्गत कृष्ण के साथ जिए हुए प्रेम प्रसगो की सघन होती हुई एक तरफ उसके प्रेम पूर्ण व्यक्तित्व की ऐसी सार्थकता सिद्ध करती है जिसके बिना कृष्ण का अस्तित्व अधूरा रह जाता है, उनकी निखिल सृष्टि अधूरी रह जाती है, उनके शब्द अर्थहीन शब्द बन जाते है कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व गली-गली मे बिखरे हुए अर्थहीन शब्द तो दूसरी तरफ राधा का ऐसे व्यक्तित्व की खोज उपलब्ध कराती है, जिसके आधार पर वह अपने आसिक्त का स्वातत्र्य अनुभव करती है, वह केवल जिस्म का सेतु नहीं रह जाती, लीला भूमि से युद्ध क्षेत्र तक पहुचने का सेतु। 'कनुप्रिया' मे प्रेम के तन्मय क्षणों का वर्णन अभीष्ट न होकर अभीष्ट है राधा के उस व्यक्तित्व की खोज जो कृष्ण के, पुरूष के इतिहास को अर्थवान बनाती है और इसी आधार पर राधा (नारी) का व्यक्तित्व कृष्ण (पुरूष) के जीवन को अर्थ देते हुए भी अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व निर्मित करता है। व्यक्तित्व की इस उपलब्धि की राधा एक प्रतीक बन जाती है, नारी के स्वतन्त्र अस्तित्व की खोज का प्रतीक। आज के जीवन में नारी के स्वतत्र अस्तित्व की सार्थकता की पहचान ही 'कनुप्रिया' की मूल उपलब्धि है। यद्यपि राधा की प्रेमाकुलता, तन्मयता के वर्णन मे मध्यकालीन वातावरण और भावबोध साकार हो उठा है और उनकी प्रेमव्यजना उर्दू की गजलशैली के निकट होने के कारण उसके व्यक्तित्व को आधुनिक बनाने में बाधा उत्पन्न करती है।

'कनुप्रिया' मे राधा के मन की सवेदना को व्यक्त करने के लिए कवि ने अनेक प्रतीको का सहारा लिया है जैसे पुण्यहीन अशोक वृक्ष राधा के प्रेम से शून्य कृष्ण के जीवन का प्रतीक है, जो उसके चरणों का स्पर्श पाकर खिलता है। आममजरी, श्यामलवनघास, उजली पगडडी, क्रमश सिन्दूर, राधा की काली अलके और उसमे पतली माग के प्रतीक हैं। आगडाली जिसे राधा कृष्ण की अनुपस्थिति मे घेरकर रोती रहती है, कृष्ण का प्रतीक बन जाती है। इसी तरह कृष्ण द्वारा भेजा हुआ अर्द्धोन्मीलित कमल राधा को सध्या समय बुलाने का प्रतीक है और अजुरी भर बेले के फूल कृष्ण की उन चचल उँगलियो के प्रतीक है जो राधा के स्पर्श को पाने के लिए व्याकुल है। अगस्त्य के कटावदार उजले फूल राधा के उतार-चढाव वाले सुन्दर चरणो के प्रतीक है जिन पर कृष्ण टीजले के पास बैठकर महावर लगाते हैं। राधा का चपकवर्णी शरीर, उसकी पलके उसकी बाहे तो अनेक बार पगडडियों के रूप मे प्रयुक्त हुई हैं जो कृष्ण के साथ चरम साक्षात्कार के क्षणो मे रीत-रीत जाती है। 'सेतु' का प्रयोग भी प्रतीकात्मक अर्थ रखता है, राधा के व्यक्तित्व का जिसे कृष्ण ने अब तक माध्यम के रूप में ग्रहण किया है। 'समुद्र-स्वप्न' राधा द्वारा देखे हुए कृष्ण के उस जीवन का प्रतीक है जो 'मै' (राधा) के बिना निरर्थक हो गया है। इसी प्रतीक के माध्यम से राधा कृष्ण के इतिहास को, सृजन-प्रलय के इतिहास को निरर्थक बताती है, उनके न्याय, अन्याय, विवेक, आचरण, दायित्व लेने की भावना को अनजिए जीवन का व्यर्थ प्रसार घोषित करती है और यह भी सिद्ध करती है कि कृष्ण इन सबका अर्थ पाने के लिए 'मैं' की पुकार कर रहे हैं–

"अब इस क्षण तुम
एक गहरी पुकार हो
सब त्याग कर
मेरे लिए भटकती हुई।"[114]

भारती ने 'कनुप्रिया' मे इन प्रतीकों का प्रयोग करके राधा के प्रेमानुभवों के सूक्ष्म स्तरों को उद्घाटित किया है और जब राधा का प्रेमानुभव, चित्रण में मूर्तात्मकता धारण कर लेता है तो उसे ये प्रतीक स्थिति की जडता से तोडकर अर्थ का विस्तार देते हैं। प्रतीकों के

इस प्रयोग कौशल के कारण 'कनुप्रिया' की भावकथा में कहीं भी एकरसता नहीं आने पाई है।

निष्कर्ष यह कि भारती के काव्य मे प्रयुक्त प्रतीको के मुख्य दो स्रोत हैं–पुराण और प्रकृति। उनके पौराणिक प्रतीक आधुनिक युग–बोध की अभिव्यक्ति मे सफल है। भारती के प्रकृति से लिए गए प्रतीक इतने सूक्ष्म और नवीन भावबोध के व्यजक नहीं बने हैं जितने ऐतिहासिक और पौराणिक प्रतीक। प्रतीकों के प्रयोग को देखते हुए यह लगता है कि हिन्दी में वयक्तिक चेतना को जब भी अधिक महत्व मिला है, प्रतीको का प्रयोग अधिक हुआ है। इस दृष्टि से छायावादी कविता मे प्रतीकों का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है, विशेषत प्राकृतिक प्रतीको के। किन्तु हिन्दी की नयी कविता छायावादी कविता से प्रतीक के प्रयोग मे अधिक कलात्मक और समर्थ है। नई कविता ने प्रतीको को आज की भाषा और सवेदना का अविभाज्य अग बना दिया। इस दृष्टि से नये कवियो मे भारती विशेष समर्थ हैं।

सन्दर्भ-संकेत

1 डॉ0 जगदीश गुप्त - नई कविता अक-5-6 (सपा0) पृ0 स0-1, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद,

2 गजानन माधाव मुक्तिबोध नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ0 113, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6, स0-1966

3 डॉ0 नामवर सिह इतिहास और आलोचना, पृ0 42, साहित्य प्रकाशन, मिण्टो रोड, इलाहाबाद, स0-1962

4 अज्ञेय (सपा0) तारसप्तक, पृ0 303, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, कलकत्ता, द्वि0स0-1966

5 डॉ0 जगदीश गुप्त नयी कविता अक-5-6, (सपा0) पृ0 13-14, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद,

6 डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी भाषा औद सवेदना, पृ0 28-35, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद,

7 डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी भाषा और सवेदना, पृ0 9, 40, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद,

8 डॉ0 नामवर सिह कविता के नए प्रतिमान, पृ0 118, 119, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र0स0-1968

9 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा', पृ0 18, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वि0स0-1970

10 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा', पृ0 71,भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वि0स0-1970

11 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा', पृ0 3,भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वि0स0-1970

12 डॉ0 देवराज साहित्य समीक्षा और सस्कृति बोध, पृ0 128, राजपाल एण्ड सस, दिल्ली-6, स0- 1954

13 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा', पृ0 19, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वि0स0-1970

14 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा, पृ0 20, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वि0स0-1970

15 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा, पृ0 45, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वि0स0-1970

16 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा, पृ0 83, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वि0स0-1970

17 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष, पृ0 80, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन वाराणसी, द्वि0स0-1959

18 डॉ0 धर्मवीर भारती 'अधायुग, पृ0 26, किताब महल, इलाहाबाद, स0-1983

19 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष, पृ0 77, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्र0स0-1959

20 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष, पृ0 78 भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्र0स0-1959

21 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष, पृ0 77, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्र0स0-1959

22 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष, पृ0 62, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्र0स0-1959

23 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष, पृ0 73, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्र0स0-1959

24 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष, पृ0 81, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्र0स0-1959

25 श्री विजयदेव नारायण साही 'मछलीघर' की भूमिका, पृ0 2, वाणी प्रकाशन, दरियागज, नई दिल्ली, स0-1983

26 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष, पृ0 74, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

27 डॉ0 विजयदेव नारायण 'मछलीघर', पृ0 20, वाणी प्रकाशन, दरियागज, नई दिल्ली, स0-1983

28 डॉ0 धर्मवीर भारती 'अंधायुग, पृ0 110, किताब महल, इलाहाबाद, स0-1983

29 डॉ0 धर्मवीर भारती कनुप्रिया पृ0 71, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

30 डॉ0 धर्मवीर भारती कनुप्रिया पृ0 34, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

31 डॉ0 देवी शकर अवस्थी 'विवेक के रग' (सपा0) पृ0 112, वाणी प्रकाशन- नई दिल्ली, स0-1978

32 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 81, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

33 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 22, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

34 डॉ0 रघुवश 'भारती का काव्य', पृ0 34, दि मैकमिलन कपनी आफ इडिया लि0, नई दिल्ली, प्र0स0-1980

35 डॉ0 धर्मवीर भारती 'अंधायुग', पृ0 81, किताब महल, इलाहाबाद, स0-1983

36 डॉ0 धर्मवीर भारती 'अंधायुग', पृ0 109, किताब महल, इलाहाबाद, स0-1983

37 डॉ0 धर्मवीर भारती 'कनुप्रिया', पृ0 77, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

38 डॉ0 धर्मवीर भारती 'कनुप्रिया', पृ0 38, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

39 डॉ0 धर्मवीर भारती 'अंधायुग', पृ0 46, किताब महल, इलाहाबाद, स0-1983

40 डॉ0 जगदीश गुप्त नयी कविता, अक-7 (स0), पृ0 187, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद,

41 अज्ञेय तीसरा सप्तक (स0), पृ0 114,115, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, कलकत्ता, द्वि0स0-1961

42 डॉ0 जगदीश गुप्त 'नयी कविता', अक-7 स0, पृ0 184, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद,

43 डॉ0 नगेन्द्र 'काव्य मे बिम्ब', पृ0 5, नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली, स0-1970

44 डॉ0 जगदीश गुप्त 'द इमेज इन ए पोयम आर लाइक ए सिरीज आफ रिर्स सेट एट डिफरेट ऐगिल्स सो दैट ऐज द थीम मूब्स आन इट इज रिफलेक्टेड इन ए नम्बर आफ डिफरेन्ट आसपेक्ट्स। बट दे आर मैजिक मिरर्स, दे डू नाट मियरी रिफलेक्ट द थीम, दे गिव इट आइफ एण्ड फार्म, इट इज इन देयर पावर टु मेक एक स्पिरिट विजिबुल', नयी कविता, अक-7, पृ0 188, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद,

45 डॉ0 नगेन्द्र 'काव्य मे बिम्ब', पृ0 5, नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली, स0-1970

46 डॉ0 नगेन्द्र 'काव्य मे बिम्ब', पृ0 6, नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली, स0-1970

47 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 77, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

48 निराला 'अपरा', पृ0 6, उद्घृत निराला रचनावली- राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,

49 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा', पृ0 2, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5, द्वि0स0-1970

50 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 58, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

51 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 104, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

52 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 105, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

53 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा', पृ0 53, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणासी-5, द्वि0स0-1970

54 श्री विजयदेव नारायण साही 'मछलीघर', पृ0 54, वाणी प्रकाशन, दरियागज, नई दिल्ली, स0-1983

55 डॉ0 रविनाथ सिह 'नयी कविता की भाषा' पृ0 210, अतुल प्रकाशन, कानपुर, स0-1980

56 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा', पृ0 3, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5, द्वि0स0-1970

57 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा', पृ0 7, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5, द्वि0स0-1970

58 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा', पृ0 7, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5, द्वि0स0-1970

59 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 77, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

60 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा', पृ0 25,

61 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 120, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

62 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 120, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

63 डॉ0 धर्मवीर भारती 'कनुप्रिया', पृ0 30, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सप्तम स0-1981

64 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा', पृ0 39, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5, द्वि0स0-1970

65 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा', पृ0 41, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5, द्वि0स0-1970

66 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा', पृ0 84, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5, द्वि0स0-1970

67 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा', पृ0 67, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5, द्वि0स0-1970

68 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा', पृ0 27, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5, द्वि0स0-1970

69 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 117, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

70 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा', पृ0 14, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5, द्वि0स0-1970

71 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा', पृ0 15, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5, द्वि0स0-1970

72 डॉ0 धर्मवीर भारती 'कनुप्रिया', पृ0 30, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सप्तम् 0स0-1981

73 डॉ0 धर्मवीर भारती 'कनुप्रिया', पृ0 32, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सप्तम् 0स0-1981

74 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 101, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सप्तम् 0स0-1981

75 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 64, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सप्तम् 0स0-1981

76 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 53, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सप्तम् 0स0-1981

77 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 52,, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सप्तम् 0स0-1981

78 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा', पृ0 56, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5, द्वि0स0-1970

79 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा', पृ0 55, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5, द्वि0स0-1970

80 डॉ0 धर्मवीर भारती 'अधायुग', पृ0 34, अन्धायुग, किताब महल, इलाहाबाद, प्रस्तुत स0-1983

81 डॉ0 धर्मवीर भारती 'अधायुग', पृ0 48, अन्धायुग, किताब महल, इलाहाबाद, प्रस्तुत स0-1983

82 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 55, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

83 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 112, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

84 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 31, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

85 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 60, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

86 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 90, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

87 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा', पृ0 33, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5, द्वि0स0-1970

88 डॉ0 केदारनाथ सिह 'आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान', पृ0 325, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली-6, प्र0स0-1971

89 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 67, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

90 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 79, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

91 डॉ0 केदारनाथ सिह 'आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान', पृ0 325, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली-6, प्र0स0-1971

92 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 77, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

93 डॉ0 जगदीश गुप्त 'नयी कविता', अक-1, पृ0 47, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद,

94 डॉ0 सुलेखा शर्मा 'काव्य शिल्प के आयाम', पृ0 85, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, स0-1992

95 डॉ0 जगदीश गुप्त 'नयी कविता' अक-5,6 (स0), पृ0 12, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद,

96 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठडा-लोहा', पृ0 80, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी-5, द्वि0स0-1970

97 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 75, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

98 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 77, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

99 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 82, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

100 डॉ0 रघुवश 'भारती का काव्य', पृ0 102, दि मैकमिलन कपनी आफ इडिया लि0, नई दिल्ली, प्र0स0-1980

101 डॉ0 रघुवश 'भारती का काव्य' पृ0 101, दि मैकमिलन कपनी आफ इडिया लि0, नई दिल्ली, प्र0स0-1980

102 डॉ0 रघुवश 'भारती का काव्य' पृ0 103, दि मैकमिलन कपनी आफ इडिया लि0, नई दिल्ली, प्र0स0-1980

103 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0 24, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0-1959

104 डॉ0 रामदरश मिश्र 'हिन्दी कविता', तीन दशक, पृ0 173, दि मैकमिलन कपनी आफ इडिया लि0, नई दिल्ली, स0-1974

105 डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी 'नयी कवितायें', एक साक्ष्य, पृ0 104, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र0स0-1976

106 डॉ0 धर्मवीर भारती 'अधायुग', पृ0 12, किताब महल, इलाहाबाद, स0-1983

107 डॉ0 धर्मवीर भारती 'अधायुग', पृ0 38, किताब महल, इलाहाबाद, स0-1983

108 डॉ0 धर्मवीर भारती 'अधायुग', पृ0 27, किताब महल, इलाहाबाद, स0-1983

109 डॉ0 धर्मवीर भारती 'अधायुग', पृ0 50, किताब महल, इलाहाबाद, स0-1983

110 डॉ0 धर्मवीर भारती 'अधायुग', पृ0 120, किताब महल, इलाहाबाद, स0-1983

111 डॉ0 धर्मवीर भारती 'अधायुग', पृ0 26, किताब महल, इलाहाबाद, स0-1983

112 डॉ0 धर्मवीर भारती 'अधायुग', पृ0 44, किताब महल, इलाहाबाद, स0-1983

113 डॉ0 धर्मवीर भारती 'कनुप्रिया', पृ0 79, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सप्तम् स0-1981

चतुर्थ अध्याय

डॉ0 भारती का कथासाहित्य : स्वरूप एवं विश्लेषण

(क) डॉ0 धर्मवीर भारती के उपन्यासो का अनुशीलन

(ख) डॉ0 धर्मवीर भारती की कहानियों का अनुशीलन

(क) डॉ0 धर्मवीर भारती के उपन्यासो का अनुशीलन

आधुनिक हिन्दी साहित्य मे बहुत कम ऐसे रचनाधर्मी हैं, जिनमें एक साथ कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास, आलोचना, निबन्ध, पत्रकारिता आदि विभिन्न विधाओ पर समान रूप से अधिकार हो। डॉ0 धर्मवीर भारती ऐसे ही रचनाधर्मी हैं, जिन्हे कवि के साथ-साथ उपन्यासकार, कहानीकार, निबन्ध लेखक, पत्रकार आदि विविध रूपों में प्रतिष्ठा मिली है, पर उपन्यास जगत मे भारती का विशिष्ट स्थान है। यो तो उन्होनें अधिक नहीं लिखा है, लेकिन जो कुछ भी लिखा है, वह अपने समय मे काफी चर्चित एव प्रशसित रहा है। डॉ0 धर्मवीर भारती ने सिर्फ तीन उपन्यास लिखे हैं-

1 गुनाहों का देवता (1949 ई0)

2 सूरज का सातवॉ घोडा (1952 ई0)

3 ग्यारह सपनों का देश (सपादन-लक्ष्मीचन्द जैन)

गुनाहों का देवता (1949 ई0) में कालेज जीवन की रग-बिरगी कथा है, जिसमें मध्यमवर्गीय जीवन की यथार्थता, मूल्य-सकर पारिवारिक सत्रास, मानसिक तनाव, अल्हड भावुकता, किशोर मन की आवेगात्मक-तीव्रता तथा आदर्शवादी रूप का प्रतिफलन है। "सूरज का सातवॉ घोडा" (1952ई0) नूतन शैली में नवीन धरातल की सूचना देता है। यह औपन्यासिक कला की दृष्टि से अत्यन्त प्रौढ प्रयोग है। जीवन के प्रति अडिग आस्था ही "सूरज का सातवॉं घोडा" है। इस उपन्यास में निम्न मध्य वर्ग की निराशाओ, अनास्थाओं, कुठाओं, मिथ्या-पाखण्डों, झूठी नैतिकता तथा उसके खोखलेपन का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण हुआ है। "ग्यारह सपनों का देश" एक समन्वित उपन्यास है, जिसमे दस लेखकों ने अपने-अपने सपनों को कल्पना के रगों में पिरोया है।

गुनाहो का देवता (1949 ई0)

डॉ0 धर्मवीर भारती कवि तथा नाटककार होने के साथ-साथ नई शिल्प के बहुचर्चित कथाकार भी रहे हैं। डॉ0 भारती ने शुरू में कहानिया लिखीं परन्तु उनकी प्रसिद्धि

कहानीकार के रूप मे उतनी नहीं हुई जितनी की उपन्यासकार के रूप में। यह उपन्यास कालेज जीवन की रग-बिरगी कथा है। "इसमे अल्हड भावुकता, किशोर मन की आवेगात्मक तीव्रता और आदर्शवादी रूप का समायोजन है। एक खास उम्र के पाठ्को को यह उपन्यास अपनी गतिमयी रग-रूपता और अभिव्यक्ति कलात्मकता से इतना खींच लेता है कि पाठ्क इस कदर लट्टू रहते हैं, जैसे साप बीन पर रहता है। मध्यवर्ग का वह समाज जो अपनी सस्कारगत गुफाओ में जकडकर प्रेम को 'गुनाह' समझता रहा। उस रूप सस्कार पर -गुनाहों का देवता' कडा प्रहार करता है। कहना चाहिए बन्द दिमाग की खिडकिया जकडी चट्कनिया खोलकर खोल देता है।"[1] 'गुनाहो का देवता' एक आदर्शोन्मुख सामाजिक उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास मे डॉ0 धर्मवीर भारती ने मध्यवर्गीय जीवन मे परिव्याप्त समस्याओं का विशद एव विस्तृत चित्रण किया है।

'गुनाहों का देवता' उपन्यास में प्रमुख रूप से दो पात्र हैं- चन्दर और सुधा। लेखक ने इन्हीं दोनों पात्रों के माध्यम से मध्यवर्गीय युवको तथा युवतियों का स्वरूप प्रस्तुत किया है। 'गुनाहों का देवता' नाम की सार्थकता के लिए उपन्यासकार ने अनेक पात्रों के माध्यम से चन्दर को 'देवता' कहलवाया है।

उपन्यास का मुख्य कथा चन्दर तथा सुधा के चरित्र पर आधारित है। इस उपन्यास में और भी पात्र हैं जिनकी भूमिका सराहनीय है जैसे- कैलाश, डॉ0 शुक्ला, विनती, गेसू, पम्पी, (पमिला डिक्रूजा) इत्यादि। गेसू, रवीन्द्र विसरिया बुआ, पम्पी आदि पात्रों का यद्यपि कथा में प्रत्यक्ष योग नहीं है फिर भी मुख्य कलाकार चन्दर तथा सुधा के चित्राकन में विशेष रूप से सहायता मिली है। चन्दर के चरित्र को चित्रित करने में सुधा और विनती के साथ गेसू तथा पम्मी का प्रत्यक्ष योगदान रहा है। चन्दर के अनेक बार भट्कने पर उसे सही निर्देश इन्हीं पात्रों के माध्यम से हुआ है। बर्टी के द्वारा धर्मवीर भारती ने चन्दर के चरित्र पर एक विशेष प्रभाव डालने का प्रयास किया है। अन्त में प्यार के नाम पर अपने को मर मिट्ने वाला चन्दर किस प्रकार पुन विवाह कर सुखी एव समृद्ध जीवन व्यतीत करने का निश्चय कर लेता है। इस तरह बुआ तथा विनती की कथा, गेसू की घटना, बर्टी तथा पम्मी की कथा का मुख्य कथा पर अवश्य प्रभाव देखाई देता है।

डॉ0 धर्मवीर भारती आरम्भ से ही चन्दर तथा सुधा की परस्पर आत्मीयता को दर्शाया है। पुस्तकालय से पुस्तके लेकर जाने से इसकी वास्तविक शुरूआत है। चन्दर तथा सुधा का इकट्ठे बैठकर चाय पीना, रूठना तथा एक-दूसरे पर ताने कसना आदि क्रम चलते रहते हैं। सुधा-गेसू एक अच्छी सहेली है। दोनो आपस मे बैठकर एक-दूसरे की बाते पूछा करती हैं। यहा पर गेसू का अख्तर से प्रेम का पता चलता है। चन्दर का सुधा से दिनों-दिन प्रेम बढता जाता है। दोनो एक-दूसरे को बहुत चाहते हैं। सुधा चन्दर के स्वास्थ्य का बहुत ख्याल रखती है, यहा तक कि चन्दर के चाय मागने पर सुधा दूध मे दो चार ही बूद चाय डालकर उसे पिलाती है। दोनों के सम्बन्धो मे और अधिक घनिष्ठता आ जाती है। चन्दर पर सुधा अपना अधिकार जमा लेती है। बिसारिया को घर मे विनती को ट्यूशन पढाने के लिए रखा गया है। सुधा गाव में शिक्षा प्राप्त कर रही थी परन्तु जब गाव वालों ने उसकी विवाह करने के लिए जोर देने लगे तब डॉ0 शुक्ला ने उसे अपने पास बुलवा लिया। कुछ दिनो बाद गाव से सुधा की बुआ और विनती उनके पास पहुच जाते हैं। उपन्यासकार ने यहा पर नगर और गाव के पक्ष को दर्शाया है। सुधा की बुआ चाहती है कि विनती से पूर्व सुधा की शादी हो जाय। इस बात पर चन्दर तथा डॉ0 शुक्ला तैयार नहीं होते हैं परन्तु उन्हे अपनी बहिन की बात माननी पडी। अन्त में कैलाश से सुधा की अनचाहे शादी तय हो जाती है। कैलाश ने डॉ0 शुक्ला तथा चन्दर की मुसीबत के समय में सहायता की थी। सुधा के न चाहने तथा मना करने के बावजूद चन्दर ने शादी की तिथि निश्चित करा दी। चन्दर तथा सुधा सामाजिक आदर्शे के भय से अपने प्रेमानुभूति को गुप्त रखना चाहते थे। विवाह का सम्पूर्ण कार्य दायित्व चन्दर के सिर था। सुधा का कैलाश के साथ विवाह हो जाता है। डॉ0 शुक्ला के साथ विनती रहने लगती है। चन्दर कभी-कभी सुधा के पास भी चला जाया करता था। इस बीच चन्दर को डॉक्टर की उपाधि मिल जाती है। सुधा के अभाव मे उपाधि मिलने की प्रसन्नता में कुछ फिकी पड जाती है। यहा पर डॉ0 भारती ने चन्दर और सुधा दोनों के जीवन में उदासीनता तथा निराशा को चित्रित किया है। सुधा कैलाश के साथ शारीरिक सम्बन्ध तो रखती है परन्तु मानसिक रूप से वह चन्दर की बनकर रहती है। नैतिक मान्यताओ का पालन करने वाला चन्दर भी भौतिक जीवन से

परेशान आकर तन्हाई को समाप्त करने के लिए पम्मी का हाथ थामता है। पम्मी भी उसे चाहने लगती है। परन्तु यहा भी चन्दर अपना पूर्व प्रेम भुला नहीं पाता है। चन्दर को अपना जीवन सुधा के वियोग मे व्यर्थ सा प्रतीत होने लगा है। अतएव जब सुधा कैलाश के साथ अपने घर आती है तो एक रोज कैलाश की अनुपस्थिति मे दोनो के अन्त गुप्त प्रणयानुभूति प्रज्ज्वल हो उठती है। चन्दर सुधा से शारीरिक सम्पर्क स्थापित करने की कोशिश करता है परन्तु चन्दर को अपमान, आत्मग्लानि तथा धिक्कार के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं आता। चन्दर सुधा से क्षमा याचना करता है, फिर दोनो की स्थिति पहले जैसी हो जाती है। चन्दर की स्थिति अब और भी दयनीय हो जाती है। उसका जीवन कुण्ठित, सत्रास, अनास्था, घृणा आदि से ग्रसित हो जाता है। चन्दर सुधा से जब कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहता है, चन्दर सुधा से पत्र लिखने को भी मना कर देता है। सुधा का जन्मो से चला आ रहा गुप्त तथा पवित्र प्रेम खण्डित हो जाता है। सुधा अन्दर ही अन्दर घुटती रहती है। उसका भी जीवन एक तरह से नष्ट हो जाता है। उसका खान-पान सब बन्द हो जाता है। इसी बीच विनती का विवाह सम्बन्ध ठीक न होने के कारण डॉ0 शुक्ला विनती तथा बुआ की स्थिति बिगड जाती है।

गेसू के जीवन एव चरित्र को देखते हुए चन्दर के मस्तिष्क में फिर से आदर्शो का लावा प्रस्फुटित होने लगा है। चन्दर अपने किये पर पछतावा करता है। सुधा के चरित्र की महत्ता चन्दर को उस समय प्रतीत होता है जब वह उसे स्टेशन पर लेने के लिए जाता है। सुधा चन्दर के समस्त पिछले कार्यो को भुलाते हुए अन्दर ही अन्दर चन्दर के बतलाये हुए मार्ग पर अपना कदम बढाती रहती है। अन्तत यहॉ तक कि सुधा को मरणासन्न अवस्था में डॉ0 शुक्ला के यहॉ पहुचा दिया जाता है और चन्दर को तार भेजकर बुलवा लिया जाता है। मरने के कुछ ही क्षण पूर्व सुधा चन्दर को बुलवाती है और कहती है, "मैं झुक नहीं सकती-विनती यहॉ आ-हॉ चन्दर के पैर छू अरे अपने माथे मे नहीं पगली मेरे माथे में लगा दे। मुझसे झुका नहीं जाता।"[2] इस प्रकार सुधा के प्राण निकल जाते हैं, सभी लोग खिन्न, उदास मुद्रा में देखते रह जाते हैं। चन्दर सुधा के अस्थि तथा राख को जल में प्रवाहित कर देता है और विनती को अपना लेता है। यही उपन्यास की कथा है।

प्रस्तुत उपन्यास मे डॉ0 धर्मवीर भारती ने ग्रामीण परिवेश के रीति-रिवाजो, रूढियों तथा अधविश्वासो को प्रस्तुत किया है। इस सन्दर्भ मे बुआ और विनती के चरित्र को देखा जा सकता है। बुआ के माध्यम से बाल-विवाह तथा नारी-शिक्षा से सम्बन्धित स्थितियों को उद्घाटित किया गया है। नगर तथा ग्रामीण अचल की परिस्थितियो की डॉ0 धर्मवीर भारती ने इस उपन्यास मे उभारा है। लेखक उपन्यास मे पात्रो के माध्यम से समाज मे फैली बुराइयों, रीति-रिवाजों, रूढियो, परम्पराओ आदि को नष्ट करने का आह्वान किया है। इस सन्दर्भ में डॉ0 शुक्ला का अभिमत है "सुधा का विवाह कितनी अच्छी जगह किया गया, मगर सुधा पीली पड गयी है। कितना दु ख हुआ देखकर और विनती के साथ यह हुआ। यह सचमुच जाति, विवाह तथा सभी परम्परा बहुत ही बुरी है। बुरी तरह सड गई है। उन्हें तो काट फेकना चाहिए। इस अनुभव के बाद सारा आदर्श ही बदल गया।"[3] वस्तुत युग की यही माग भी है। मूल्यो एव आदर्शों को युग, काल एव परिस्थितियो के अनुसार परिवर्तित होते रहना चाहिए।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत उपन्यास में डॉ0 धर्मवीर भारती ने मध्यवर्गीय समाज में पनपे सामाजिक बुराइयाँ, रीति-रिवाज, रूढियों, अधविश्वास आदि को पात्रों के माध्यम से रोमाटिक अन्दाज मे चित्रित किया है। डॉ0 भारती मूलत उत्तरछायावादी काल के स्वच्छन्दवादी कवि है। यही कारण है कि इनके उपन्यासो मे भी यह प्रवृत्ति विद्यमान है। डॉ0 भारती अपने को इस औपन्यासिक विधा में भी रोमाटिक भाव को अभिव्यक्त करने से बचा नहीं पाये हैं। इसमे कोई सन्देह नहीं है कि 'गुनाहों का देवता' में अनुभूति कीसहज अभिव्यक्ति हुई है, यह एक मनभावन एव प्रभावयुक्त रचना है, इसमें उपन्यास कला की विशिष्टता है।

सूरज का सातवाँ घोडा

डॉ0 धर्मवीर भारती द्वारा रचित 'सूरज का सातवाँ घोडा' एक प्रयोगात्मक लघु उपन्यास है। यह एक नूतन शैली तथा नये अन्दाज में चित्रित विविध विषयी उपन्यास है। यह एक अनेक सम्बद्ध कथा-प्रसगों का सकलन है। प्रस्तुत कथाकृति का प्रमुख पात्र

माणिक मुल्ला है, जो कथा सुनाता है।

वस्तुत प्रस्तुत उपन्यास मे नवीनता लाने के लिए लेखक ने प्राचीन पद्धतियों को ग्रहण किया है। 'प्रेम प्रकाश गौतम, 'सूरज का सातवॉ घोडा' को पाश्चात्य साहित्य से अनुप्राणित मानने के पक्ष मे है। उनके अनुसार, "अनेक कहानियो मे एक कहानी की प्रणाली का उपयोग 'सहस्ररजनी चरित्र', 'पचतत्र', 'हेप्ता मेरॉ', 'डेकामेरॉ आदि का अनुकरण न कर बोक्काशियो के 'डेकामेरॉ, और बाल्जाक की 'ड्रीम स्टोरीज' का अनुकरण किया है, इन दोनो मे भी बोक्काशियो 'डेकामेरॉ' का अधिक। वास्तव में बोक्काशियो ही इस रचना के निर्माण मे भारती का प्रेरणास्रोत और आदर्श रहा है। 'सूरज का सातवॉ घोडा' में आलोचना-प्रवृत्ति, रस लेने और विनोद करने की वृत्ति, भ्रष्टाचारग्रस्त समाज का उपहास, सात दोपहरों में विभाजन-यह सब बोक्काशियो-जैसी ही है। "बाल्जाक जैसी व्यग्यशीलता और समाज में चोट करने की प्रवृत्ति भी इस रचना मे है। उपशीर्षको की भी पद्धति भारती की अपनी न होकर परम्परागत रोमानी आख्यानो की अनयायिनी है।[4] लेखक का 'सूरज का सातवॉ घोडा' में सामाजिक परिस्थितियो का यथार्थरूप मे चित्रण करना तथा प्रगतिवादी मान्यताओं का मजाक उडाना, भारतीय मार्क्सवादियो की अवहेलना करना भी इस उपन्यास का लक्ष्य रहा है। जैसा कि डॉ0 धर्मवीर भारती ने प्रस्तुत उपन्यास के 'निवेदन' भाग मे स्वय कहा है, "पिछले तीन-चार वर्षो में मार्क्सवाद के अध्ययन से मुझे जितनी शाति जितना बल और जितनी आशा मिली है, हिन्दी की मार्क्सवादी समीक्षा और चिन्तन से उतनी ही निराशा और असतोष। अपने समाज, अपनी जन-सस्कृति और उसकी परम्पराओं से वे नितान्त अनभिज्ञ रहे हैं। अत उनके निष्कर्ष ऐसे हो रहे है कि उन पर या तो रोया जा सकता है या दिल खोलकर हॅसा जा सकता है।"[5]

'सूरज का सातवॉ घोडा' उपन्यास को डॉ0 धर्मवीर भारती ने 'सात दोपहरों' में विभाजित किया है। 'पहली दोपहर' में जुर्माना का नमक माणिक ने किस प्रकार चुकता किया, यहीं से उपन्यास कथा का श्रीगणेश होता है। माणिक तथा जमुना बचपन से एक-दूसरे को जानते थे। जमुना बडी चुलबुली नारी पात्र है। माणिक से जमुना आयु में लगभग पाच वर्ष बडी है परन्तु माणिक को तग करने, छकाने में चुकती नहीं है। जमुना

का स्वभाव ही कुछ ऐसा है। जमुना माणिक से प्रेम कहानियों की पत्रिकाए तथा फिल्मी गानों की पुस्तकें मगवाया करती थी। जमुना लगभग बीस वर्ष की हो चुकी है। जमुना के पिताश्री महेसर दलाल के कारण जमुना का सम्बन्ध तन्ना से टूट जाता है। इससे जमुना को ठेस पहुचती है। 'आगे चलकर माणिक उसके कोप का पात्र बनते हैं। माणिक जमुना के घर जाते हैं, उसकी गाय को रोटी खिलाने के लिए। जमुना माणिक को अपने घर पर पुए खिलाती और अपनी प्रेम-व्यथा सुनाती है। माणिक जमुना के घर बार-बार जाता है, वह न चाहते हुए भी जमुना और तन्ना के प्रेम-प्रसग को सुनता है। दोनो की विवशता घनिष्ठता मे परिवर्तित हो जाती है। जमुना माणिक से भी अपने पूर्व प्रेमी तन्ना की तरह व्यवहार करने लगती है। प्रस्तुत कथा का अन्त भी विविध प्रेम कथाओ की तरह ही होता है। जमुना की शादी किसी और से हो जाती हे। अन्तत लेखक ने निष्कर्ष रूप मे माणिक मुल्ला से कहलवाया है कि यदि प्रत्येक के पास गाय होती तो यह स्थिति उत्पन्न नहीं होती। वस्तुत अर्थ की विषमता ही इस प्रेम का मूल कारण बतलाया गया है। ''न उनके घर गाय होती, न मैं उनके यहा जाता, न नमक खाता, न नमक अदा करना पडता।'' यहीं पर माणिक मुल्ला की प्रथम प्रेम-कथा समाप्त हो जाती है। 'अनध्याय' शीर्षक मे तन्ना तथा जमुना के प्रेमकथा-प्रसग को श्याम द्वारा अत्यन्त दुखान्त मोड पर प्रस्तुत किया गया है।

'दूसरी दोपहर' मे किस प्रकार घोडे की नाल सौभाग्य का लक्षण सिद्ध हुई? इसमें माणिक ने जमुना की कथा का विकसित रूप दर्शाया है। रामो बोबो के सहयोग से उसी के भतीजे तिहाजू से जमुना की शादी हो जाती है। जमुना अपने पति तिहाजू से सतुष्ट है परन्तु सतान न होने से वह चितित रहती है। जमुना सतान के लिए ज्योतिषी के बताए हुए नियम का पालन करती है। वह रोजाना सुबह कार्तिक भर गगा नहाकर चण्डी देवी को पीले फूल और ब्राह्मणों को चना, जौ तथा यहा तक कि सोने का भी दान करती है। यहाँ पर धर्मवीर भारती ने प्राचीन सस्कृति को उजागर किया है। इस क्रियाकलाप में तागेवाला रामधन जमुना की विशेष रूप से सहायता करता है। एक दिन रामधन जमुना को बताता है कि माथे पर श्वेत तिलक वाले घोडे के अगले बाये पैर को घिसी हुई नाल का चन्द-ग्रहण के समय अगूठी बनाकर पहन ले तो उसकी मनोकामना पूरी होती है परन्तु साथ ही उसके

पति का देहावसान हो जाता है। पति का स्वर्गवास हो जाने से जमुना को गहरा दु ख होता है। लेकिन पडोसियो के समझाने-बुझाने पर जमुना रामधन को एक छोटी सी कुटिया दे देती है तथा जमुना पवित्र एव साधारण जीवन बिताने लगती है। श्याम जो पूर्व मे जमुना की कथा सुनकर दु खी थे, अब वह प्रसन्नचित हैं। मेहनत कभी बेकार नहीं जाती, इसी निष्कर्ष के साथ यह कथा समाप्ति पर पहुचाती है। 'अनध्याय' शीर्षक मे लेखक ने जमुना की जीवन-गाथा पर वाद-विवाद को नाट्कीय रूप से चित्रित किया है। रचनाकार, ओकार और प्रकाश अपने-अपने ढग से जमुना की इस कथा का अर्थ लगाते हैं। डॉ0 धर्मवीर भारती ने प्रस्तुत उपन्यास में मार्क्सवाद का अर्थ चित्रित किया है, जिसमें जमुना मानवता का प्रतीक है, माणिकमुल्ला मध्य वर्ग के, जमींदार सामन्त वर्ग के तथा रामधन श्रमिक वर्ग का प्रतीक है।

'तीसरी दोपहर' मे तन्ना की विघटित स्थिति का चित्रण हुआ है। इसका मूल आधार प्रणयानुभूति में आर्थिक विषमता है। तन्ना का जीवन उसकी माँ की मृत्यु के पश्चात अत्यन्त कष्टदायक बन गया है। घर में उसे अनेक प्रकार के ताने सुनने पडते हैं। इधर जमुना तथा उसकी माँ भी तन्ना से नफरत करने लगते हैं। तन्ना का जीवन महज खिलवाड बनकर रह गया है। तन्ना के पिताश्री महेसर दयाल उसकी एक अच्छी, सुशिक्षित लडकी से शादी कर देते हैं। तन्ना की मझली बहन जो दोनो पैर से लगडी है, फिर भी उसे प्राय कोसती रहती है, गालिया देती रहती है। मुहल्ले मे तरह-तरह की अफवाहे फैलने लगी है। उधर तन्ना के पिता जो कुछ भी कमाते थे वह सब एक साबुन बेचने वाली को दे देते हैं। इससे तन्ना पर पूरे परिवार का बोझ पड जाता है। विवाह के उपरान्त तन्ना को कभी चैन की नींद नहीं आई। वह चरित्रवान, ईमानदार था इसीलिए उससे कोई सन्तुष्ट, खुश नहीं रहता था। यहाँ तक कि दफ्तर में उसे परेशान करने के लिए कठिन से कठिन ड्यूटी दी जाती है। इसी बीच जमुना की शादी हो जाती है तथा इसके पिता का देहान्त हो जाता है। तन्ना से उसकी पत्नी भी नफरत करने लगती है। तन्ना की स्थिति बडी नाजुक हो जाती है। उसका शरीर सूखकर काटा होता जा रहा था। इधर पुलिस के डर के मारे तन्ना के पिता घर छोडकर भाग गये थे। प्रस्तुत परिस्थितियों से उत्पन्न तन्ना का जीवन अत्यन्त दयनीय हो गया था। उसका शरीर दिन-प्रतिदिन ऐसा होता जा रहा था मानों रगीन

गुब्बारे से धीरे–धीरे करके हवा निकाल दी गयी हो। उसके जीवन मे उत्साह, उमग नाम की कोई चीज नहीं रह गई थी। उसे सारे घर का दायित्व, पत्नी का घृणास्पद व्यवहार, नौकरी से बहिष्कार, शारीरिक दुर्बलता आदि के कारण बडी आत्मग्लानि होती है। यूनियन के प्रयास से तन्ना को नौकरी मिल गई परन्तु उसकी सास अपनी बेटी अर्थात उसकी पत्नी को अपने साथ लेते गई। शारीरिक रूप से इतना कमजोर हो गया था कि एक रोज टकी की झूलती हुई बाल्टी से टकराकर गिर पडा फलस्वरूप उसकी दोनो टागे कट गयीं। अन्तत तन्ना की अस्पताल मे मृत्यु हो जाती है।

'चौथी दोपहर' मे मालवा की युवरानी देवसेन की कहानी' शीर्षक कथा का चित्रण माणिक मुल्ला द्वारा होता है। इसमे माणिक मुल्ला ने लीला के रोमैटिक प्रेम को बडे ही सहज रूप मे चित्रित किया है। लिली तथा कम्मो के पारस्परिक सवाद मे लिली के दयनीय तथा निराशायुक्त जीवन की झाकी मिलती है। कम्मों का स्वभाव यथार्थवादी है। प्रस्तुत कथा में तन्ना के लीला से विवाह के पश्चात् उसके दु ख, विषाद, निराशा, घुटन युक्त जीवन का प्रस्तुतीकरण हुआ है।

माणिक मुल्ला ने 'काले बेट का चाकू' शीर्षक कहानी 'पाचवी दोपहर' मे सुनाई है। प्रस्तुत कथा में 'पहिया छाप साबुन' के मालिक चमन ठाकुर की पोषिता कन्या सत्तो के साथ माणिक मुल्ला का लगाव, आत्मीयता प्रस्तुत है। चमन ठाकुर गाव का नाई था। इसे फौज में हाथ कट जाने के कारण पेशन मिलती रहती है। साबुन के व्यापार मे सत्तो उसे काफी मदद करती है। कथा में नया मोड उस समय आता है जब सत्तो को चमन ठाकुर तथा महेसर दयाल अपने हवस का शिकार बनाना चाहते हैं और वह भागकर माणिक मुल्ला के पास चली जाती है। माणिक मुल्ला एक मर्यादित पुरूष पात्र का परिचय देते हुए अपने भाई चमन ठाकुर के पास सत्तो के आने की सूचना देते हैं। इस तरह चमन ठाकुर के साथ सत्तो को जाना पडता है तथा कुछ लोगों का कहना था कि एक रात ठाकुर और दयाल दोनों ने मिलकर सत्तो का गला दबोच लिया।

'छठी दोपहर' में पॉचवी दोपहर' की कथा से आगे की कथा सुनायी गयी है।

माणिक मुल्ला सत्तो की मृत्यु के सम्बन्ध में सुनकर बहुत दु खी एव आश्चर्यचकित होते हैं। इससे उनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पडता है। यही नहीं उनका स्वभाव भी असामाजिक तथा आत्मघाती हो जाता है। मित्रो द्वारा समझाने पर भी उनके स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं हो पाता। कुछ दिनों बाद जब माणिक मुल्ला घर से बाहर निकल रहे थे, उन्होनें देखा कि एक भिखारी (चमन ठाकुर) लकडी की गाडी मे बैठा हुआ है, उसे एक भिखारन (सत्तो) गोद मे एक छोटा बच्चा लिए हुए खींचती चली जा रही है। "माणिक को नजदीक से देखते ही सत्तो चौंककर दो कदम पीछे हट गई, फौरन उसका हाथ कमर पर गया शायद चाकू की तलाश मे, वह चाकू न पाकर उसने फिर प्याला उठाया और खून की प्यासी दृष्टि से माणिक की ओर देखती हुई आगे बढ गई।"[6] इस प्रकार माणिक मुल्ला सत्तो को जीवित देखकर मन-ही-मन में प्रसन्न हो गया तथा उन्होनें तन्ना के खाली स्थान पर आर0एम0एस0 मे नौकरी कर ली। अन्तत माणिक मुल्ला कविता-कहानी छोडकर नौकरी का आनन्दमय जीवन व्यतीत करने लगता है। 'अनध्याय' शीर्षक के अन्तर्गत माणिक मुल्ला, महेसर दयाल, चमन ठाकुर, जमुना, तन्ना एव सत्तो के दयनीय स्थिति का चित्रण बिम्ब, प्रतीक एव फैंटेसी शैली में उद्घाटित हुआ है।

'सातवाँ दोपहर' में माणिक मुल्ला द्वारा सुनाई गई कहानी 'सूरज का सातवाँ घोडा' अर्थात वह जो सपने भेजता है उसकी चर्चा की गयी है। इसमें माणिक मुल्ला द्वारा सात घोडो का स्पष्टीकरण किया गया है। लेखक के पूछे जाने पर माणिक मुल्ला उपर्युक्त कहानियों की सार्थकता पर प्रकाश डालते हुए सूर्य को बढाने वाले सात घोडों के विषय में बताते हैं- "तो वास्तव में सूर्य के रथ को आगे बढाना ही है। हुआ यह है कि हमारे वर्ग-विचलित, अनैतिक, भ्रष्ट और अधेरे जीवन की गलियों में चलने से सूर्य का रथ टूट गया है और बेचारे घोडों की तो यह हालत है कि किसी की दुम कट गई है तो किसी का पैर उखड गया है तो कोई सूखकर ठठरी हो गया है, तो फिर किसी के खुर घायल हो गये है। अब बचा है, सिर्फ एक जिसके पख अब भी साबूत हैं, जो सीना ताने गरदन उठाये आगे चल रहा है। वह घोडा है भविष्य का, तन्ना का, जमुना और सत्तो के नन्हे, निष्पाप बच्चों का घोडा, जिनकी जिन्दगी हमारी जिन्दगी से ज्यादा अमन-चैन की होगी, ज्यादा

पवित्रता की होगी, उसमे ज्यादा प्रकाश होगा, ज्यादा अमृत होगा। वहीं सातवॉ घोडा हमारी पलको मे भविष्य के सपने और वर्तमान के नवीन आकलन भेजता है। यद्यपि बाकी छ घोडे दुर्बल, रक्तहीन और विकलाग है पर सातवॉ घोडा तेजस्वी और शौर्यवान है और हमें अपना ध्यान और अपनी आस्था उसी पर रखनी चाहिए।''[7] प्रस्तुत उपन्यास में माणिक मुल्ला द्वारा कही गयी उसकी अपनी कथा है तथा इसमें घटित घटनाओ का उत्तरदायित्व भी माणिक मुल्ला ही है।

वस्तुत 'सूरज का सातवॉ घोडा' हिन्दी कथा-साहित्य में एक नूतन प्रयोग है और यही कारण है कि इस उपन्यास की रूपरेखा अन्य उपन्यासों से अलग है। एक विद्वान तो प्रस्तुत उपन्यास को उपन्यास ही नहीं मानते हैं, उनके अनुसार, ''भारती की यह रचना 'अनेक कहानियो मे एक कहानी' कही गई है परन्तु इसमे न अनेक कहानिया हैं, न एक कहानी, और न इसे अनेक कहानियो में एक कहानी कहा जा सकता है। उपन्यास या लघु उपन्यास भी यह सच्चे अर्थ मे नहीं है। वास्तव मे यह रचना एक कथा-निबन्ध है।''[8] परन्तु वास्तविकता इससे परे है। वस्तुत ''नवीन प्रयोग होने के कारण इस रचना में तथाकथित औपन्यासिक तत्वों का सम्यक् रूपेण नहीं हो पाया है-विशेषकर कथा का क्रमिक एव गठित विकास नहीं हो सका है। भारती की दृष्टि कथा-विकास के साथ ही अपने चिन्तन से पाठकों को परिचित कराने की ओर विशेष रही है यही कारण है कि मार्क्सवाद की अनेक आरोपित मान्यताओ पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तीक्ष्ण व्यग्य किया गया है। इसलिए उपन्यास में कथा-शैथिल्य आना स्वाभाविक है पर इससे इसे उपन्यास न मानना-एकागी दृष्टि का परिचायक है। वस्तुत रचयिता पारम्परित उपन्यासों की भाति उपन्यास लिखना नहीं चाहते थे, क्योंकि 'गुनाहों का देवता' वे लिख चुके थे-इसलिए नये धरातल एव ढग पर इन्होनें एक नया प्रयोग किया है, जिसमे तथाकथित औपचारिक तत्वो के निर्वाह के साथ वैचारिक पक्ष की समाविष्टि द्रष्टव्य है।''[9]

'सूरज का सातवाँ घोडा' में प्रस्तुत सभी कहानिया एव शीर्षक प्रतीकात्मक है। सूरज के सात घोडे हैं इसीलिए लेखक ने दिनों की सख्या भी सात ही रखी है। माणिक मुल्ला का स्वप्न सर्जक सूरज का सातवॉ घोडा ही है। माणिक मुल्ला के स्वप्न वस्तुत प्रतीकात्मक

है। प्रस्तुत उपन्यास की भूमिका भाग मे इसके गठन तथा इसके नूतन प्रयोग के सन्दर्भ मे श्री अज्ञेय का वक्तव्य सराहनीय है, "सबसे पहली बात है उसका गठन। बहुत सीधी, बहुत सादी, पुराने ढग की, बहुत पुराने, जैसा आपका बचपन से जानते हैं- अल्लिफ लैला वाली वाला ढग, पचतत्रवाला ढग, बोक्काशियो वाला ढग, जिसमे रोज किस्सागोई की मजलिस जुटती है, फिर कहानी मे से कहानी निकलती है यह सीधापन और पुरानापन आपको इसीलिए है कि भारती की बात के प्रति एक खुलापन पैदा हो जाय, बात यह फुरसत का वक्त काटने या दिल बहलाने वाली नहीं है, हृदय को कचोटने, बुद्धि को झझोड कर रख देने वाली है।"[10]

3 ग्यारह सपनो का देश

'ग्यारह सपनो का देश' भारती का तीसरा और अन्तिम उपन्यास है। समन्वित रूप से लिखा गया यह एक प्रयोग है, जिसका 'की-स्टोन' उपन्यासकार है। प्रस्तुत उपन्यास को क्रमश दस लेखकों ने (धर्मवीर भारती, उदयशकर भट्ट, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर, इलाचन्द्र जोशी, राजेन्द्र यादव, मुद्रा राक्षस, लक्ष्मी चन्द्र जैन, प्रभाकर और कृष्ण सोलकी) लिखा है। इस उपन्यास का सपादन श्री लक्ष्मी चन्द्र जैन (भारतीय ज्ञानपीठ-काशी) ने किया है। इस उपन्यास के पहले अध्याय का नाम "आदिम अग्नि और अनिश्चय की घाटियाँ" है जो 18 पृष्ठो का है। उपन्यास में कहीं भी क्रमबद्धता नहीं दिखती है। भारती ने इस उपन्यास में दो अध्याय लिखे हैं। दरअसल, प्रस्तुत उपन्यास दस लोगों का सपना बनकर रह गया है, उपन्यास नहीं बन पाया है।

वस्तु एव शिल्प की दृष्टि से डॉ0 भारती के उपन्यासों का विश्लेषण इस प्रकार है-

1 **शीर्षक** वासना और भावना के, मनुष्यत्व और देवत्व के सघर्ष के बीच उपन्यास की कथावस्तु विकसित होती है। नायक चन्दर देवत्व के परिधान ओढे रहता है, जिसके कारण उसे अनेक गुनाहों का शिकार होना पडता है। शीर्षक "गुनाहो का देवता" से इस वस्तु की व्यजना होती है।

'सूरज का सातवाँ घोडा' में नायक माणिक मुल्ला सात दिन तक सात दोपहरों के

समय अपनी प्रेमकथाये सुनाता है। उपन्यासकार ने लिखा है– ''माणिक मुल्ला को लगा कि सूरज के छ घोडे लगडे हैं, एक ही समर्थ है। लेकिन वह अधेरी रात की लम्बी यात्रा पार कर सुबह के उजाले तक कब पहुँच पायेगा, यह मुझे नहीं मालूम।''[1] अर्थात् 'सूरज का सातवॉ घोडा' शीर्षक से लेखक औपन्यासिक कथ्य को व्यजित करना चाहता है।

कथावस्तु 'गुनाहो का देवता' उपन्यास की कथायोजना पर लेखक की पकड बहुत गहरी है, और कथा के इस कसाव के कारण पाठक उपन्यास से आद्यत बधा रहता है। डॉ0 चन्द्रनाथ कपूर एक मेधावी छात्र हैं, जिसकी उच्च शिक्षा एव रहने–खाने की व्यवस्था सुधा के पिता डॉ0 शुक्ला ने की थी। सुधा डॉ0 शुक्ला की इकलौती कन्या है। सुधा और चन्दर के बीच अनुराग पैदा होता है, और प्रेमभावना का यह सस्पर्श एक–दूसरे को आलोकित करता रहता है। चन्दर मूलत आदर्शवादी रोमाटिक युवक है, जो सुधा के माध्यम से अपने अह देवता को पूजता है, पालता–पोसता रहता है। सुधा का विवाह तय होने पर सुधा स्वय विरोध करती है, किन्तु चन्दर ऊचे प्रेम मे शरीर को महत्वपूर्ण न मानकर सुधा को विवाह की स्वीकृति के लिए बाध्य करता है। सुधा का विवाह चन्दर के जीवन का महत्वपूर्ण मोड है। सुधा के ससुराल चले जाने पर वह यथार्थ स्थितियो का सामना नहीं कर पाता। चन्दर के मन का यह घाव पम्मी सहलाती है, उन्माद और वासना का यह झरना बनकर चन्दर के जीवन में बहती है। किन्तु आगे चलकर पम्मी भी चन्दर के देवत्व से ऊबकर उसे छोडकर चली जाती है।

चन्दर के 'देवत्व' को अपने देवत्व के खोखलेपन का पता चलता है और वह गुनाहों का शिकार होता रहता है। सुधा गर्भवती बनकर लौट आती है, कछ दिन वहा रहकर फिर अपने पति कैलाश के साथ लौट जाती है। अन्त में सुधा का गर्भपात होता है, जिसमे उसकी मृत्यु होती है। मरते समय वह चन्दर का नाम जपती रहती है।

उपन्यास के अन्त में नायक चन्दर उपनायिका विनती को अपनाता है, सुधा के स्थान पर उसे प्रतिष्ठित करता है।

उपरोक्त कथासूत्र के साथ–साथ उपन्यास मे गेसू और अख्तर, विनती, बर्टी और

उसकी पत्नी, पम्मी आदि की उपकथाओ का सयोजन भी भारती ने कलात्मक कसाव के साथ किया है। ''कथाकार का समूचा ध्यान कथा सगठन पर है।''[1] इसलिए पाठ्क को उपन्यास की कथा से हटने की फुरसत नहीं मिलती।

'सूरज का सातवॉ घोडा' कथा आलेख प्रयोगात्मक ढग का है। इस उपन्यास का नायक माणिक मुल्ला अपने प्रेम अनुभवो को अपने मित्रों के बीच सुनाता है। इस प्रकार मुख्यत श्रोता-वक्ता शैली को अपनाकर लेखक चला है। कथा प्रस्तुतीकरण मे प्रत्येक अध्याय का अपना अलग महत्व है। प्रत्येक अध्याय अपने आप में एक स्वतत्र कहानी है, और साथ ही साथ मूल कथा सूत्र से जुडकर उपन्यास की कथा की एक सीढी होने का दायित्व भी निभाता है।

'सूरज का सातवॉ घोडा' की कथावस्तु सक्षेप में इस प्रकार है- नायक माणिक मुल्ला बताते हैं कि बीस वर्षीया जमुना उनसे प्रेम करती थी किन्तु उसे एक बूढे धनवान की पत्नी बनना पडा। जमुना अपने बूढे पति की सेवा करती रही। रामधन तागेवाले के साथ उसके अनैतिक सम्बन्ध स्थापित हुए आगे चलकर वह विधवा बनी और फिर जमुना ने रामधन को पनाह दी।

जमुना का और एक प्रेमी था ''तन्ना''। तन्ना का विवाह लिली नाम की एक पढी लिखी लडकी के साथ हुआ। उसके पिता घर छोडकर भाग निकले तो परिवार का भार उसी पर पडा। एक दुर्घटना में तन्ना की दोनों टागे कट गयीं। वह मर गया। फिर लिली और माणिक मुल्ला ने मध्यवर्गीय रोमाटिक ढग का प्यार आरम्भ किया।

सत्तो का प्रवेश कथानक में एक भिन्न मूड का सृजन करता है। हृदय से सच्ची किन्तु आर्थिक विपन्नता के चक्रव्यूह में बधी यह निम्न वर्गीय स्त्री महेसर दयाल, चमन ठाकुर और अतत माणिक मुल्ल से भी धोखा खाती है।

इस प्रकार स्त्री-पुरुष सम्बन्ध के माध्यम से आज के समाज के बीच फैली मूल्यहीनता को रेखाकित कर अतत माणिक मुल्ला अपनी ओर से आशा और आस्था ही व्यक्त करते हैं। माणिक मुल्ला ने वर्तमान समाज व्यवस्था के रथ को खींचने वाले घोडों की

विकलागता को महसूस कर आने वाले भविष्य से आशा की है कि नया–सातवॉ घोडा बलवान होगा जिसपर हमे आस्था रखनी चाहिए।

स्पष्ट है कि 'सातवॉ घोडा के कथाश विविधमुखी होकर भी अतत मूल कथासूत्र से जुड जाते हैं। ये कथाश अपने आप मे विविध–भाषी हैं ही, कहानियो के बाद आने वाले अनध्याय भी विविध शिल्प रूपात्मक है, एक मे वर्णनात्मक पद्धति से प्रभाववादी आलोचना है, दूसरे में पारस्परिक विवाद का (अनुभावो और आवश्यक रगमचीय सकेतो के साथ) नाट्कीय विवरण है, तीसरे में दारूण दुखात को सुनकर बेचैनी की अवस्थानुकूल अर्धसुप्त मन मे असम्बद्ध स्वप्न विचारों का सिलसिला है और चौथे मे प्रतीकात्मक स्वप्न पद्धति के माध्यम से सभी कहानियो के प्रभाव का पजीयन हुआ है।''[13]

चरित्र–चित्रण चन्दर, सुधा, विनती, गेसू, पम्मी एव बर्टी 'गुनाहो का देवता' के प्रधन पात्र हैं। चन्दर इस उपन्यास का नायक है। चन्दर एक आदर्शवादी रोमाटिक प्रकृति का मेधावी युवक है, जो देवत्व की खोज करते हुए गुनाहों के चक्रव्यूहों में जा फसता है। नायिका सुधा एव विनती भी चन्दर के मन मे जगी हुई देवत्व की एषणा का पोषण करती रहती हैं, – ''घबडाओ न देवता, तुम्हारी उज्ज्वल साधना में कालिख नहीं लगाऊगी। अपने आचल से पोंछ लूगी''[14] तथा आप देवता हो सकते हैं, लेकिन हर एक तो देवता नहीं है।''[15] 'आशीर्वाद देवताओ से मागा जाता है, मैं अब प्रेत हो चुका विनती।''[16]

चन्द्रनाथ कपूर के इस चारित्रिक पहलू का उद्‌घाटन उपरोक्त कथोपकथन में काम और सेक्स के परिप्रेक्ष्य मे व्यक्त हुआ है। डॉ0 गणेशन ने इस भावना का विश्लेषण करते हुए लिखा है, ''गुनाहों का देवता मे चन्दर का जीवन काम अभुत्ति की प्रतिक्रिया का नमूना है। सुधा बाल्यकाल में ही चन्दर की आत्मा बन जाती है। उनमें शैशवी यौन आकर्षण (Intantıle Sexualıty) है जो वाह्‌य क्रियाओं की सीमा तक नहीं पहुचता जो केवल मानसिक विचार के रूप में रहता है, शारीरिक बनकर गहरी चेतना की उत्तेजित नहीं करता, एक तरह प्लेटोनिक प्रेम।''[17]

काम की अभुक्ति चन्दर के माध्यम से रहस्यात्मक ढ्ग से विश्लेषित की गई है।

उपन्यास के पूर्वार्ध में जिस आदर्शवादी स्तर तक वह स्वय को उठा हुआ पाता है, उत्तरार्द्ध में जिस प्रतिशोध भावना, आत्मपीडन एव परपीडन का वह शिकार है, उसका मूल चन्दर के प्रेम सम्बन्धी प्लेटोनिक दृष्टिकोण मे है, जो सेक्स को प्रेम मे स्थान नहीं देती। सुधा के साथ इसलिए चन्दर अपने आकर्षण को, शारीरिक धरातल पर उतारता नहीं। यह अभुक्त, कुण्ठित काम उस पर देवत्व के नकली आवरण चढाता है। परिणामत अभुक्ति का शिकार चन्दर गहरी हताशा और नैतिक पतन की खाई मे जा गिरता है। स्वय उसके मन मे द्वन्द के तूफान उठने लगते हैं– "विकलाग देवता! वही स्वार्थी है जो अपने से ऊपर नहीं उठ पाता। तेरे लिए अपनी एक सास भी दूसरे के मन के तूफान से भी ज्यादा महत्वपूर्ण रही है तूने अपने मन की उपेक्षा के पीछे सुधा को भट्टी में झोंक दिया। पम्मी के अस्वस्थ मन को पहचान कर भी उसके रूप का उपयोग करने मे नहीं हिचकता, विनती को प्यार न करते हुए भी विनती को तूने स्वीकार किया, फिर सबों का तिरस्कार करता गया।'[18] चन्दर को यह भी स्वीकारना पडता है कि उसने अपने प्रेम को अपने आप में अत्यन्त सकीर्ण रूप दिया–तूने मन की गगा को व्यक्ति की छोटी सी सीमा में बाध लिया, उसे एक पोखरा बना दिया, पानी सड गया, उसमें गध आने लगी, सुधा के प्यार की सीपी जिसमे सत्य और सफलता का मोती बन सकता है, वह मर गयी और रूके हुए पानी में विकृति और वासना के कीडे कुलबुलाने लगे।"[19] चन्दर के मन की काम शक्ति मुख्यत तीन दशाओं में चलित रही है। प्रथमत सुधा को लेकर उसके मन में प्लेटोनिक अशरीरी प्रेमभाव जागता है। सुधा जाने–अनजाने चन्दर से प्रेम करती है, किन्तु चन्दर का आदर्शवादी मन सुधा के विवाह के समय आदर्शवादी रूख अपनाकर उसका ब्याह कैलाश से होने देता है।

सुधा के न होने के अनुभूति चन्दर को सताने लगती है तो उससे मुक्ति पाने के लिए वह पम्मी जैसी आवारा औरत की पनाह लेता है। पम्मी जैसे चॅन्दर को शरीर का, यथार्थ प्रेम का सबक पढाकर चली जाती है। चन्दर स्वीकार करता है कि "पम्मी ने आज अपने बाहुपाश में कसकर जैसे मेरे मन की सारी कटुता, सारा विष खींच लिया। मुझे लगा बहुत दिन बाद मैं फिर पिशाच नहीं आदमी हू। यह वासना का ही दान है।"[20]

अतत चन्दर को विनती जैसी समझदार औरत को अपनाकर इस देवत्व का त्याग

कर अपने मनुष्यत्व की खोज करनी है। वास्तव मे चन्दर अपने मनोयोग से किसी स्त्री को पहली बार–सुधा को ही चाहता है। पम्मी के साथ का उसका सम्बन्ध मात्र प्रतिक्रिया ही कहा जा सकता है।''[21]

मन में उठने वाले काम के तूफान को बार–बार रोके रखने के कारण चन्दर को गुनाहों का शिकार बनना पडता है। इस मामले मे वह जितना ही अपने आप को सवारने की कोशिश करता है, गिरता रहता है। डॉ0 वार्ष्णेय के शब्दों में ''लेखक ने जितनी गरिमा और उच्चता चन्दर को दी है, उसकी शताश भी उसमें सही नहीं है वस्तुतत उसमे अह ही अह है, जिसकी तृष्टि के लिए वह सुधा की बलि चढा देता है। ''यदि हम चन्दर का मनोविश्लेषण करें तो हम पायेंगे कि चन्दर कुठाग्रस्त युवक है। वह अपने अह की तुष्टि के लिए गुनाह करता चला जाता है।''[22]

सुधा सुधा के व्यक्तित्व के मुख्यत दो रग इस उपन्यास में परिलक्षित होते हैं। पूर्वार्द्ध में सुधा अत्यन्त स्वच्छद, रोमाटिक, उर्दू के शेर कहकर खुशी से दिन काटने वाली कालेज छात्रा है। सुधा के इस उज्ज्वल रूप से नायक चन्दर अत्यधिक प्रभावित हैं, और स्वीकृति देता है कि ''मेरी जिन्दगी में एक ही विश्वास की चट्टान है, वह हो तुम। मैं जानता हू कि कितने ही जल प्रलय हो, लेकिन तुम्हारे सहारे मैं हमेशा ऊपर रहूगा। तुम मुझे डूबने नहीं दोगी। तुम्हारे ही सहारे मैं लहरों से खेल भी सकता हूँ। लेकिन तुम्हारा विश्वास कभी हिला तो मैं किन अधेरी गहराईयों में डूब जाऊगा यह कभी मैं सोच नहीं पाता।''[23]

विवाह के बाद सुधा अपने पति के घर चली आती है किन्तु अपने मन के जले हुए दिये की–लगी हुई, प्रीति को बुझने नहीं देती। यही कारण है कि ''प्रेम और पति के बीच समझौता वह कभी नहीं मान सकी और उसके चरित्र की रेखायें उत्तरात्तर निखरती गयी है।''[24]

सुधा का व्यक्तित्व निर्द्वन्द्व है, चन्दर की तरह द्विधाग्रस्त नहीं है। प्रेम सम्बन्धी सुधा की अपनी दृष्टि है, जिसके आधार है तपस्या, लगन, साधना और विश्वास। जीवन की असगतियों, विडम्बनाओं के सामने हम चन्दर को बराबर टूटता हुआ, पीछे हटता हुआ, देखते हैं, किन्तु सुधा अपने स्थान से एक पग भी पीछे नहीं हटती अत तक डटी रहती है। जीवन

को समझौते के स्तर पर कभी नहीं उतारा है। उसमे न गेसू की आदर्शवादी ही पलायन की प्रवृत्ति है, और न ही प्रमिला का वासना दर्शन। समझौते की हर शर्त को नकारने के कारण वह अपने पति को उसके अधिकारो से वचित रखती है। लेकिन चन्दर के देवत्व के साथ–साथ पशुत्व तक के कलक का स्वागत करना वह अपना धर्म समझती हैं। प्रसाद के नारी के आदर्श को "पीयूष–श्रोत" माना हे और "श्रद्धा सर्ग" में श्रद्धा के व्यक्तित्व का अकन किया है जिनकी याद हमे सुधा के चरित्र के बारे मे सोचते हुए आती है–

"दया, माया, ममता लो आज,
मधुरिमा लो अगाध विश्वास,
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ
तुम्हारे लिए खुला है पास।"[25]

नारी हृदय का यही उदात्त रूप शरतबाबू के साहित्य में मिलता है। शरत बाबू के "देवदास" के मुख्य तीन पात्रों की तुलना यदि "गुनाहों का देवता" के तीन पात्रों से की जाये तो इस बात पर अधिक प्रकाश पडता है।

प्रमिला डिकूज प्रमिला का अपना स्वतत्र जीवन दर्शन है, जो अनुभव को, जीवन के यथार्थ को प्राथमिकता के रूप मे स्वीकार करता है। पम्मी के जीवन में काम आभुक्ति के कारण कोई विडम्बना नहीं है। स्वय चन्दर के मन में सुधा के न रहने के बाद पैदा हुई रिक्तता की गहरी खाई को पम्मी ने भर दिया। स्वय चन्दर ही आगे चलकर उसके जीवन की इस वास्तविकता का समर्थन करता है कि, "माना कि किसी लडकी के जीवन मे वासना ही तीखी है तो क्या वह इसी से निन्दनीय है? क्या वासना स्वत में निदनीय है? गलत! यह तो स्वभाव और व्यक्तित्व का अन्तर है।"[26]

पम्मी पहले तो विवाह के नाम पर किसी व्यक्ति के हाथों बिक जाना अस्वीकारती है किन्तु आगे चलकर उसे फिर अपना घर, अपने पति के नीड के प्रति आकर्षण लगने लगता है– "खुले आकश में इधर–उधर भटकने के बाद, तूफानों से लडने के बाद मैं कितनी आतुर हो उठी हू बधनों के लिए, और किसी सशक्त डाल पर बने हुए सुखद सुकोमल नीड में

बसेरा लेने के लिए। जिस नीड को मैं इतने दिनो पहले उजाड चुकी थी, आज वह मुझे फिर पुकार रहा है। हर नारी के जीवन में वह क्षण आता है और शायद इसीलिए हिदू प्रेम के बजाय विवाह को अधिक महत्व देते हैं।"[27]

बिनती, गेसू और बर्टी के चरित्रों की योजना भी इस उपन्यास मे सोद्देश्य हुई है। विनती सुधा के व्यक्तित्व की अगली कडी है, जो उपन्यास के उत्तरार्द्ध में धीरे-धीरे सुधा का स्थान लेती है। विनती ने अपने जीवन में काफी तनाव महसूस किये हैं, और चन्दर को अनजाने में ही चाहने लगी है– "फिर आपने कहा था आप आयेंगे बराबर। पिछले हफ्ते से आप आये भी नहीं सोचा कि हमारा हाल क्या होगा? रोज सुबह शाम कोई भी आए तो हम दौडकर देखते थे कि आप आए हैं या नहीं।" आप समझ नहीं सकते कि हमारी जिन्दगी कितनी खराब है। अब तो हमारी तबियत होती है कि घर जायें। आप लडकी होते तो समझते चन्दर बाबू।"[28]

गेसू उपन्यास के कथानक में कम महत्व का होते हुए भी गेसू का चरित्र हमें प्रभावित करता है। उर्दू शायरों का प्रेम सुधा की तरह गेसू के लिए भी आदर्श है। अपने प्रेमी अख्तर के किसी दूसरी औरत के साथ शादी करने पर वह अखतर का समर्थन ही देती है।"[29]

दुख सहने, अपने आप को अटूट रखने की गेसू में जबर्दस्त सामर्थ्य है। विनती और सुधा से भी ज्यादा वह सघर्षशील है। जीवन भर शादी न करने का वह निश्चय कर चुकी है, और किसी अस्पताल में काम करने के लिए तैयार है।

वास्तविक दु ख और भक्ति मनुष्य के जीवन में शक्ति भर देते हैं, स्वत्व के प्रति आस्थावान बनाते हैं। इस तथ्य का उद्घाटन गेसू के माध्यम से पर्याप्त मात्रा में हुआ है। परम्परावादी होकर भी वह आधुनिक है।

सक्षेप में भारती की पात्र सृष्टि "गुनाहों का देवता" में विविधमुखी है। चन्दर मध्यमवर्ग के उन युवकों का प्रतिनिधि है, जो किसी न किसी सस्ते जवीन के सघर्षो से जूझ अपने लक्ष्य को पा लेते हैं। प्रेम सम्बन्धी दृष्टिया इनकी प्राय दो तरह की है। चन्दर, विनती, बर्टी एव गेसू आदर्शवादी किताबी प्रेम से चिपके रहते हैं तो पम्मी यथार्थ, शरीरी

प्रेम का आगह करती है। सुधा की मानसिकता और गेसू की मानसिकता में बहुत कुछ समानतायें हैं। दोनों के चरित्र बडे ही पवित्र और आदर्श प्रेम का समर्थन करते हैं। काम क्षुधा के मनोवैज्ञानिक यथार्थ का उद्घाटन बर्टी एव चन्दर के माध्यम से सफलता के साथ होता है। इनके अतिरिक्त बुवा कामरेड कैलाश, बिसरिया आदि पात्र भी कथानक के मूल सूत्र को विकसित करते हैं।

भारती के दूसरे उपन्यास "सूरज का सातवाँ घोडा" के पात्र हैं माणिक, जमुना, लिली, तन्ना, सत्तो, महेसर दयाल, चमन ठाकुर आदि।

नायक माणिक अनेक चरित्रों, घटनाओं, वादों को अपने में समेटकर उपन्यास का केन्द्र बन गया है। यथार्थ से टकराकर भावुक चन्दर के ध्वस्त मन की परिणति क्या होगी, जीवन के प्रति वह कौन सा रूख अपनायेगा इस तथ्य को हम माणिक के माध्यम से समझते हैं। "भावना से विरक्ति और वासना में आसक्ति और दोनों से मोहभग की जो धनी अनुभूति मिली, इसका चित्रण 'सूरज का सातवाँ घोडा' का मूल उद्देश्य है। यह लगता है कि गुनाहों के देवता का चन्दर के मानसिक अपनी सुधा से वचित होकर माणिक का रूप धारण करता है। माणिक मुल्ला चन्दर के मानसिक मथन से आबद्ध होकर, विविध अनुभूतियों से सम्पन्न होकर अपनी बात कहना चाहता है।"[30] हताशा, निराश और अनास्था के इस माहौल में भी अपनी जिदादिली को कायम रखने का माणिक का जीवन दर्शन जीवन की एक अनिवार्यता है। "हमारी जिन्दगी में जरा सी पर्त उधाडकर देखो तो हर तरफ इतनी गदगी और कीचड छिपा हुआ है कि सचमुच उस पर रोना आता है, लेकिन प्यारे बन्धुओं मैं तो इतना रो चुका हूँ कि अब आसू आता ही नहीं। अत लाचार होकर हसना पडता है। एक बात और है, जो लोग भावुक होते हैं वे सिर्फ रो-धोकर रह जाते हैं पर जो लोग हसना सीख लेते हैं कभी-कभी हसते-हसते जिन्दगी को भी बदल डालते हैं।"[31]

माणिक ने निम्न मध्यवर्गीय जीवन की समस्त विसगतियों को भोगा है। पलायनवाद उसके नस-नस में भरा हुआ है। प्रेम के फेरे में वह कई बार पडता है किन्तु यथार्थ के सामने आते ही वह प्रेम को छोडकर भाग खडा होता है। मध्य वर्गीय जीवन में व्याप्त इस ट्रेजडी की अभिव्यक्ति माणिक अपने सभी प्रेम प्रसगों के द्वारा करते हैं। कैलाश जोशी इसी

बात को सामाजिकता से जोडते हुए लिखते हैं कि "माणिक एक असफल प्रेमी है। अत जीवन की ठोकरों ने उन्हें हमसे ज्यादा सिखाया है, माणिक की इन ठोकरों से हमारा पूरा का पूरा समाज जुडा है। माणिक की चरित्र समाज की यथार्थता को स्पष्ट करने के लिए अपने आप में पूर्ण है और माणिक यह सभी कहानिया हमें कह भी देते हैं और इन सब कहानियों के नायक भी वे स्वय ही हैं।"[32]

माणिक का बार-बार किसी न किसी लडकी से प्रेम, प्रेम को लेकर उठे दायित्व को नकारने की प्रवृत्ति, भगोडेपन आदि को हम मध्यवर्गीय जीवन की असगतियों, मजबूरियों, निर्लज्जताओं का प्रतीक मान सकते हैं। माणिक के हर प्रेम प्रसग के पीछे मध्यवर्ग के जीवन का घिनौना यथार्थ है, और माणिक के चरित्र की गरिमा इसमें है कि वह खुले आम, हसी-मजाक के साथ उसकी स्वीकृति देता है।

माणिक की तीन प्रेमिकाओं का जीवन इस उपन्यास में अकित हुआ है- जमुना, लिली और सत्तो।

प्रथमत जमुना का उल्लेख आता है। उसके मनचाहे प्रेम को उसने टूटते हुए देखा है, पढाई में मन नहीं लगता, अत जमुना पढाई छोड देती है। आगे चल कर उसका विवाह एक बूढे अमीर के साथ होता है। फलत वह एक तागे वाले के साथ अनैतिक सम्बन्ध रखने लगती है। बूढा पति मर जाने पर वह तागे वाले को आश्रय देती है। वास्तव में जमुना हमारे समाज की एक पारपरिक समस्या है। हमारे देश की प्रत्येक स्त्री को इस समस्या से होकर गुजरना ही होता है। डॉ0 शैल रस्तोगी ने जमुना के विषय में लिखा है- "जमुना जैसी नारी के पीछे समाज के अत्याचारों और अनाचारों की कहानी है। समाज की मान्यतायें ही ऐसी है। समाज में जो थोथा आदर्शवाद दिन-ब-दिन विकसित हो रहा है उसको नष्ट किये बिना समाज में फैली अनाचार की नींव को भी नहीं कुरेदा जा सकता। नीवें इतनी गहरी है कि ऊपर से इन पर झूठी पवित्रता ने आवरण डाल दिया है।" भारती जी ने जमुना के रूप में समाज के एक ज्वलत प्रश्न को हमारे सामने रखा है।"[33]

स्वय उपन्यासकार का भी कहना है कि "जमुना निम्न वर्ग की एक भयानक

समस्या है। आर्थिक नींव खोखली है। उसकी वजह से विवाह, परिवार प्रेम की नींव हिल गई है। अनैतिकता छाई हुई है।"[34]

लिली लिली के माध्यम से भारती ने मध्यवर्गीय नारी की रोमाटिक मानसिकता का मखौल उडाया है। लिली प्रेम करती है माणिक से फिर तन्ना की पत्नी बन जाती है। लिली इटर तक पढी हुई है और जीवन सबधी उसके आदर्श रोमाटिकता से ओत-प्रोत है, जो तन्ना की विपन्न आर्थिक अवस्था से मेल नहीं खाते। अत तन्ना को छोड वह वापस मायके लौटती है। इस लाडली घोडी की लगाम बेचारा गरीब तन्ना अपने हाथ मे रख नहीं पाता। वास्तव मे लिली की यह मनोदशा मध्यवर्गीय समाज की नारी के मानस काएक्सरे है। लिली अपने स्वप्नो को टूटते देख इतनी क्रूर और बर्बर बन जाती है कि तन्ना के साथ वह निर्दय से निर्दय व्यवहार करने लगती है।

सत्तो इस उपन्यास का सबसे चर्चित पात्र सत्तो है। डॉ0 देवेन्द्र इस्सर ने लिखा है- "उपन्यास का सबसे अधिक सजीव और सशक्त अश है पाचवी दोपहर की नायिका सत्तो। सत्तो न जमुना है न ही लिली, बल्कि उसका अपना अलग व्यक्तित्व है।"[35]

बदी-उज्जामा का मत भी यही है- "सत्तो का चरित्र जितना दमदार, सजीव और जीता जागता है वैसा उपन्यास का कोई और चरित्र नहीं है।[36]

सत्तो का चरित्र प्रभाव डालने में अन्य पात्रों की अपेक्षा अधिक सफल इसलिए कहा गा है कि उसका व्यक्तित्व सकारात्मक (पाजिटिव) है। जीवन जैसा है, उसी रूप में उसको वह स्वीकार करती है। जमुना की तरह मध्यवर्गीय कुठाओं का वह शिकार नहीं है। लिली की तरह भावना के बवडर उसे पाशविकता के स्तर तक उडाते ही नहीं। अस्तित्व के सघर्ष में, अपने परिवेश को अनुकूल बनाने में जूझ-जूझ कर टूटना उसे अन्य पात्रो से अलग व्यक्तित्व देता है। "सत्तो मे कहीं भी कोई गाठ, कोई उलझन, कोई भय, कोई दमन, कोई कमजोरी नहीं थी। उसका मन धुली धूप की तरह स्वच्छ था।"[37]

सत्तो का चरित्र अतत इसीलिए अधिक गहरा हो जाता है कि उसके अपने तमाम सघर्ष, अपनी पूरी ईमानदारी के होते हुए भी वह ट्रैजिक बन जाता है। एक बच्चे की माँ

बन अतत उसे भीख मागनी पडती है।

इस प्रकार 'गुनाहो का देवता' और 'सूरज का सातवॉ घोडा' के चरित्रो मे कुछ मौलिक अन्तर दिखाई देता है। मुख्य अन्तर आर्थिक समस्या ही है। 'सूरज का सातवॉ घोडा'' मे चरित्रो का सचालन गति एव दिशा का सचालन आर्थिक स्थिति के अनुसार होता है।''[38] 'गुनाहो का देवता' की तुलना मे इस उपन्यास के पात्र अधिक क्रियाशील, गतिशील, स्वाभाविक एव यथार्थ है। वाह्य-परिस्थितिया उनके व्यक्तित्व को बदल डालती है। 'सूरज का सातवॉ घोडा' के पात्र भी प्रेम करते हैं किन्तु किन्हीं आदर्शो से मरते दम तक चिपके रहना उन्हे स्वीकार नहीं है। 'सूरज का सातवॉ घोडा' के नारी चरित्रो के विषय मे डॉ0 इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है कि ''जमुना की दृष्टि सामती है, लिली की आधुनिकवादी गुडिया की है और सत्तो शायद भावी दृष्टि का सकेत देती है।''[39]

देश -काल - वातावरण दोनो उपन्यासो के देश-काल, वातावरण चित्रण मे भारती के कवित्व की छाप देखने को मिलती है। ''गुनाहो का देवता'' का नायक भी प्रकृति से ही कलाकार और भावना प्रधान है। अत इस उपन्यास मे आद्यन्त ऐसे प्रकृति चित्र बिखरे हुए हैं, जिनका अकन करने वाला लेखक मूलत कवि साबित होता है। आरम्भ ही मे इलाहाबाद शहर का वर्णन काव्यात्मक ढग से किया गया है- ''सुबहे मलयजी, दोपहरें अगारा तोशामे रेशमी। धरती ऐसी कि सहारा के रेगिस्तान की तरह बालू भी मिली, मालवा की तरह हरे-भरे खेत भी मिलें और ऊसर और परती की भी कमी नहीं। सचमुच लगता है कि प्रयाग नगर का देवता स्वर्ग के कुंजो से निर्वासित कोई मनमौजी कलाकार है जिसके सृजन मे हर रग के डोर है।''[40]

इस उपन्यास का प्रकृति चित्रण पर्याप्त रूप से छायावाद के मानवीकरण से भी प्रभावित है- ''और लगता है कि जैसे हर फूल के पास अपना व्यक्तिगत सदेश है जिसे वह अपने दिल की पखुरियों मे आहिस्ते से सहेजकर रक्खे हुए हैं कि कोई सुनने वाला मिले और वह अपनी दास्ता कह जाय। और यह दुबली-पतली लम्बी सी नाजुक कली जो बहुत सावधानी से इस तरह ऑचल लपेटे हैं और प्रथम ज्ञात यौवना की तरह लाज में जो सिमटी

तो सिमटी चली जा रही है।"[41]

'गुनाहो के देवता' मे ऐसे चित्रण स्थान-स्थान पर मिलेगे। रूमानी उपन्यासो मे पाया जाने वाला वातावरण पूरे उपन्यास मे मोजूद है। वास्तव में इस उपन्यास के वातावरण के माध्यम से किसी अचल विशेष से हर परिचित नहीं हो सकते हैं। जिस काल का चित्रण उपन्यास मे है, उस काल का हमारा देश गुलाम था, स्वतत्रता की बलिवेदी पर अनेको युवक हसते-हसते आत्मसमर्पण कर रहे थे, किन्तु ऐसी एक भी घटना का चित्रण इस उपन्यास मे मिलता नहीं। दूसरी ओर इलाहाबाद जैसे परम्परावादी शहर मे ऐसे स्वच्छद प्रकृति के जीव अपनी रोमास भरी कथा को, प्रेम को कहा तक विकसित कर सकते हैं यह भी सवाल उठता है। राजनीतिक वातावरण का चित्रण भी उपन्यास मे नहीं है। इस प्रकार "गुनाहों का देवता" का यथार्थ देशकाल-वातावरण के चित्रण भी उपन्यास मे नहीं है। इस प्रकार -गुनाहो का देवता' का यथार्थ देशकाल-वातावरण के चित्रण की कसौटी पर खरा उतरता नहीं, अपनी भडकीली काव्यात्मकता के बावजूद।

'सूरज का सातवॉ घोडा' मे कथानक के परिवेश का अकन अधिक सजीव एव वास्तविक बना है। इस उपन्यास का वातावरण प्राय पात्रों की मानसिकता को उभारने के उद्देश्य से हुआ है। मानसिक उमस और तनाव के साथ प्रत्येक कहानी आरम्भ होती है, और वातावरण भी वैसा ही विचित्र किया जाता है-

"उन्होनें सबसे पहली कहानी एक दिन गर्मी की दोपहर में सुनायी थी जब हम लोग लू के डर से कमरा चारों ओर बन्द करके नीचे भीगी तौलिचया रक्खे चुपचाप लेटे थे।"[42]

"हम लोग सुबह सोकर उठे तो देखा कि रात ही रात सहसा हवा रूक गई है और इतनी उमस है कि सुबह 5 00 बजे भी हम लोग पसीने मे तर थे।"[43]

"बेहद उमस। मन की गहरी से गहरी पर्त मे एक अजीब सी बेचैनी। नींद आ भी रही और नहीं भी आ रही। नीम की डालिया खामोश हैं।"[44]

"आख लग जाने के थोडी देर के बाद सहसा उमस चीरते हुए हवा का एक झोंका आया और फिर तो इतने तेज झोके आने लगे कि नीम की शाखाए झूम उठी।"[45]

माणिक मुल्ला के प्रेम प्रसगो को उभारने के लिए अनेक रोमाटिक प्रकृति चित्र उपन्यास मे आए हैं–

"बाहर की गली की बिजली पता नहीं क्यो जल रही थी, लेकिन रह–रह बैगनी रग की बिजलिया चमक जाती थीं और लम्बी पतली गली दोनो ओर के पक्के मकान, उनके खाली चबूतरे, बन्द खिडकियाँ, सूने बारजे, उदास छते उन बैगनी बिजलियो मे जाने कैसे जादू जैसे रहस्यमय से लग रहे थे। बिजली चमकते ही अधेरा चीरकर वे खिडकी से दीख पडते और फिर सहसा अन्धकार मे विलीन हो जाते।"[46]

"बादल छाये हुए थे और बहुत ही सुहावना मौसम था। सडको पर जगह–जगह पानी जमा था। जिनमें चिडिया नहा रहीं थीं। (रेल की) लाइनों के बीच घास उग आई थी और बारिश के बाद घास में लाल हीरों की तरह जगमगाती हुई वीर–बहूटिया रेंग रही थी।"[47]

सक्षेप मे 'सूरज का सातवाँ घोडा' मे देशकाल चित्र–पात्रो की मानसिकता को उभार देने मे पर्याप्त मात्रा मे सहायक हुआ है।

कथोपकथन 'गुनाहो का देवता' का लेखक सवाद लिखने की कला अच्छी तरह जानता है। इस उपन्यास मे कथोपकथन के माध्यम से पात्रो के व्यक्तित्व के साथ–साथ नाट्कीयता का सृजन भी हुआ है। जैसे– "अरे चारो कविता की किताबे उठा लाई–समझ में आयेंगी तुम्हारे, क्यो सुधा?

"नहीं।" चिढाते हुए सुधा बोली– "तुम कहो तुम्हे समझा दे। इकनोमिक्स पढने वाले क्या जाने साहित्य।"

"अरे मुकर्जी रोड ले चलो ड्राइवर। "चन्दर बोला– इधर कहाँ चल रहे हो।"

"नहीं पहले घर चलो।" सुधा बोली "चाय पी लो तब जाना।"

नहीं मैं चाय नहीं पीयूगा। "चन्दर बोला "चाय नहीं पियूगा। वाह–वाह सुधा की हसी में दूधिया बचपन छलक उठा– "मुह तो सूखकर गोभी हो रहा है, चाय नहीं पियेगे।"[48]

मनोवैज्ञानिकता की दृष्टि से 'गुनाहों के देवता' के कथोपकथन सहायक बने पडे हैं।

बर्टी की भावुकता एव विक्षिप्त स्थिति के अकन के माध्यम से बर्टी का चरित्र उभरने लगता है। जैसे-उसने कहा- ये गुलाब सार्जेन्ट से ज्यादा प्यारे हैं, फिर इन्हीं गुलाबों पर नाचती रही और सुबह होते ही इन्हीं फूलों में छिप गई। तुम्हें सुबह किसी फूल में मिली तो नहीं।''

''उहुँक, तुम्हें तो किसी फूल मे नहीं मिली।'' बर्टी ने बच्चों के से भोले विश्वास के स्वरों मे पूछा।''[49]

प्रस्तुत उपन्यास के कथोपकथन प्राय· काव्यात्मक है, जिनको पढकर एक कविता पढने का सा अनुभव होने लगता है-

नहीं जी, एक बार पढकर फिर कौन सबक भूलता है और सबक याद होने के बाद जानती हो इश्क में क्या होता है-

''मकतवे इश्क मे इक ढग निराला देखा उसको छुट्टी न मिली जिसको सबक याद हुआ।'' खैर यह सब बात जाने दे सुधा, अब तू कब ब्याह करेगी,''

''जल्दी ही करुगी।'' सुधा बोली

''किससे।''

''तुझसे।'' और दोनो खिलखिलाकर हस पडे।''[50]

'गुनाहों का देवता' के कथोपकथन में नाटकीयता, संक्षिप्तता, कुतुहल, कथानक-विकास की सम्भावना में अन्तर्निहित है।

''सुधा तुमसे एक बात पूंछू।''

''हाँ,''

''अच्छा जाने दो।''

''पूछो न!''

''नहीं पूछना क्या खुद जाहिर है!''

''क्या,''

''कुछ नहीं!''

''पूछो न!''[57]

सूरज का सातवाँ घोड़ाः स्वाभाविकता 'सूरज का सातवॉ घोडा' उपन्यास के सवादों की मुख्य खासियत है उपन्यास मे जीवन का यथार्थ प्रधान है। अत कथेपकथन के माध्यम से यथार्थ स्थितियों का सृजन करने की कोशिश लेखक ने की है।

नाट्कीयता इस उपन्यास के सवादो की प्रधान विशेषता है। इस दृष्टि से दूसरी दोपहर का 'अनध्याय दो' लेखक के रगमचीय सकेतो के साथ प्रस्तुत किया है।

भारती ने निम्न वर्ग के समूचे यथार्थ को देखा, भोगा, जिया है। अत· वे इस वर्ग की मानसिकता की नस–नस से परिचित है। उपन्यास मे आने वाले कथोपकथन पात्रों के यथार्थ पर सौ प्रतिशत लागू होते हैं–

"अच्छा आओ बात करें, पर हमारी लिली जितनी अच्छी बात कर लेती है, उतनी मैं थोडी ही कर पाता हूं। लेकिन खैर। तो तुम्हारी कम्मो के समझ में तस्वीर नहीं आई।"

"उहुँक!"

"कम्मो बडी कुन्दजेइन है। लेकिन कोशिश हमेशा यही करती रहती है कि सब काम में टाग अडायें।"

"तुम्हारी जमुना से तो अच्छी है।"
–"लिली तुमने स्कन्दगुप्त खतम कर डाली।"
"हॉ!"
"कैसी लगी!"

लिली ने सर हिलाकर बताया कि बहुत अच्छी लगी। माणिक ने धीरे से लिली के हाथ अपने हाथों में ले लिया और उसके रेखाओ पर अपने कापते हुए ह्मथ रख कर बोले– "मैं चाहता हूँ मेरी लिली उतनी पवित्र, उतनी ही सूक्ष्म, उतनी दृढ़ बने जितनी देवसेना थी। तो लिली वैसी ही बनेगी न।"[52]

उक्त संवाद में माणिक का चालाकी के साथ लिली की प्रशंसा करना, लिली की रोमांटिकता आदि बातों का पता चलता है। साथ ही साथ ये कथोपकथन छोटे–छोटे एवं

प्रभावशाली भी बने हैं।

पूरा उपन्यास कथोपकथन के माध्यम से विकसित हुआ है। माणिक मुल्ला के कमरे पर जमे अड्डे के बीच घटित वार्तालाप–प्रश्न–उत्तर के सहारे कथानक आगे बढाता है। अनायास ही [illegible] 'सूरज का सातवॉ घोडा' मे कथोपकथन का स्थान अधिक महत्वपूर्ण है। विवरण, वर्णन एवं विश्लेषण के लिए लेखक माणिक मुल्ला के माध्यम से कथासूत्र का संचालन करता है।

भाषा एवं शैलीः 'गुनाहो का देवता' उपन्यास मे उपन्यास की लगभग सभी शैलियो का प्रयोग किया गया है, फिर भी यह शिल्प प्रधान उपन्यास नहीं है, और 'सूरज का सातवॉ घोडा' यथार्थवादी उपन्यास होते हुए भी शिल्प प्रधान उपन्यास है।

वर्णनात्मक शैली का प्रयोग लेखक ने इलाहाबाद के सामाजिक–भौगोलिक वातावरण के चित्रण में अन्य प्रसंगों के समय किया है। उपन्यास के आरम्भिक पृष्ठ इसके अच्छे उदाहरण हैं। स्वय उपन्यासकार द्वारा पात्रो के चित्रण, कथा विकास की स्थितियां, कार्य विशेष और उनका विश्लेषण किया जाने के उदाहरण 'गुनाहो का देवता' मे प्राप्त होते हैं। पत्र शैली के उदाहरण भी स्थान–स्थान पर मिलते हैं।"[53] कुछेक स्थानो पर चेतना प्रवाह जैसे शैली भी दिखाई पडती है, जैसे "सुधा ने फिर करवट बदली, और नर्स को देखकर बोली . "कौन गेसू आओ बैठो चन्दर नहा रहा है। अभी बुलाती हूँ अरे चन्दर झूठ मत बोल कम्बख्त अच्छा ले शर्बत तैयार है, जा चन्दर स्टडी रूम में पढ़ रहा है . बुला ला जा...."[54]

इस उपन्यास में कुछ प्रसंग ऐसे भी हैं जहां भारती परिस्थितियों का निर्माण नाटकीय ढंग से करते हैं। इस दृष्टि से विसरिया का विनती को अपना काव्यसंग्रह अर्पण करना, सुधा का ससुराल जाना, सुधा और गेसू का कालेज जीवन आदि में नाटकीयता की भरमार है। काव्यात्मक शैली का प्रभाव उपन्यास में आद्यान्त है जिसकी पृष्ठभूमि में लेखक का कवि व्यक्तित्व अधिक क्रियाशील है।

इस उपन्यास में लेखक का ध्यान भावना और वासना के अन्तःसंघर्ष को उभारने पर

अधिक रहा है। यहाँ स्वप्नो के माध्यम से पात्रो के मानस का उद्घाटन मिलता है। बर्टी का चरित्र कई मनोवैज्ञानिक तथ्यो की व्यजना करता है। नायक के अह का (देवत्व का) विश्लेषण लेखक कई बाद करता है।''[55] आत्मविवाद और या स्वगत सवाद के माध्यम से ''नायक चन्दर के मन का अन्तर्मथन स्थान-स्थान पर व्याप्त है, वासना और भावना का द्वन्द्व अत तक उसका साथ देता है।''[56]

प्रस्तुत उपन्यास की भाषा के विषय मे डॉ0 कैलाश जोशी का मत है कि इसमें लेखक की अंतरात्मा का स्वर प्रणय की ताल और लय के साथ प्रतिध्वनित हुआ है। लेखक को इष्ट भाव की चर्वणा अपेक्षित है जिसके लिए भारती ने वाह्य परिवेश का सहारा लिया है। भारती की भाषा मे भाव इस प्रकार झलकते हैं जिस प्रकार अगूर के दानो में रस साफ-साफ झलकता हुआ दिखाई देता है। सायास कठिन शब्दों का प्रयोग भारती ने नहीं किया है, वाणी उसकी जिह्वा पर नर्तित है, वाणी को वह जो भंगिमा देना चाहता है, बडी सहजता से दे देता है।''[57]

उपन्यास में कहीं-कहीं पर सूक्तियां भी मिलती है, जैसे-

1. ''जब भावना और सौन्दर्य के उपासक को बुद्धि और वास्तविकता की ठेस लगती है तब वह सहसा कटुता और व्यग से उबल उठता है।''[58]

2 ''अविश्वास आदमी की प्रवृत्तियों को जितना बिगाडता है, विश्वास आदमी को उतना ही बनाता है।''[59]

3 'चाँद कितनी ही कोशिश क्यों न करें, वह रात को दिन नहीं बना सकता।''[60]

4 'बहलावे के लिए मुस्काने ही जरूरी नहीं होती है, शायद आंसुओं से मन जल्दी बहल जाता है''[61] आदि।

संक्षेप मे 'गुनाहों का देवता' की भाषा काव्यात्मकता से ओत-प्रोत है, रोचक है एवं पात्रों की सभी मानसिक दशाओं का अकन करने में पूर्णत. समर्थ है।

'सूरज का सातवाँ घोडा' शिल्प की दृष्टि से भारती की उत्कृष्ट कृति है। उपन्यास को

पूरा पढ जाने के बाद हम निम्न तथ्यो से परिचित होते हैं

1 अनेक कहानियो के कलात्मक सयोजन से एक औपन्यासिक कृति की रचना 'सूरज का सातवॉ घोडा' है।

2 वक्ता–श्रोता शैली के कथानक का विकास हुआ है।

3 शीर्षक व्याख्यात्मक है।

4 हर कहानी के अत मे उपसहार जोडे हैं।

5 अनौपचारिकता भी है।

6 कथाक्रम 7 दिनो की कालावधि का है।

कहानी, नाटक, निबन्ध, आलोचना आदि के कलात्मक समन्वय से औपन्यासिक कृति का निर्माण इस उपन्यास की विशेषता है। स्वय भारती इस उपन्यास की शैली को तो "अनोखे ढग की कथा शैली" कहते हैं, विनय मोहन शर्मा इसे 'प्रयोगशील रचना' मानते हैं, डॉ0 सरोजनी त्रिपाठी "लोककथात्मक पद्धति मे लिखी गई रचना मानती है"[62] डॉ0 सत्यपाल चुध 'नवीनता प्रधान' मानते हैं"[63] डॉ0 महेन्द्र चतुर्वेदी 'टेकनिक' की दृष्टि से अपूर्व रचना घोषित करते हैं",[64] "तो डॉ0 रामदरश मिश्र "पुरानी कथा शैली का नवीन विन्यासीकरण कहते हैं।"[65]

लगभग सभी साहित्य विधाओं को भारती ने इस उपन्यास के लघु कलेवर में समेटा है। "कहानियॉ" तो अपने आप मे विविध शिल्प रूपात्मक है। एक में वर्णनात्मक पद्धति से प्रभाववादी आलोचना है, दूसरे मे पारस्परिक वाद–विवाद का (अनुभावों और आवश्यक रगमंचीय संकेतों के साथ) नाटकीय विवरण है, तीसरे में दारूण दुखांत को सुनकर बेचैनी की अवस्थानुकूल अर्द्धसुप्त मन में असम्बद्ध स्वप्न विचारों का सिलसिला है और चौथे में प्रतीकात्मक स्वप्न पद्धति के मायम से सही कहानियों के प्रभाव का पजीयन हुआ है।"[66] उपन्यास की भूमिका में नवीनता और प्रयोगप्रधानता के सम्राट श्री अज्ञेय ने लिखा है "भारती ने इस ऊपर से पुराने जान पडने वाले ढंग का भी बिल्कुल नयी और हिन्दी में अनूठा प्रयोग किया है।"[67]

उपन्यास के उपोद्घात में माणिक मुल्ला के चरित्र का टीकात्मक आलेख है, पहली

कथा लोककथात्मक ढग से अत होती है, अनध्याय मे ''पहली दोपहर'' की आलोचना है, दूसरी दोपहर लोककथात्मक कहानी है, बाद मे आने वाला अनध्याय पूर्णरूप से एकाकी नाटक, है, ''तीसरी दोपहर'' पर नयी कहानी की व्यगात्मकता की छाप, पाचवी दोपहर सामान्य शैली की कहानी है, छठवीं दोपहर के बाद वाले अनध्याय मे चेतना प्रवाह शैली का प्रयोग मिलता है। इन विभिन्नताओ के बावजूद उपन्यास के कथारस मे कोई बाधा नहीं आई है।

'सूरज का सातवॉ घोडा' उपन्यास में भाषा कहीं-कहीं पर व्यग्यात्मक बन गई है, और ऐसी भाषा इस उपन्यास की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस उपन्यास में प्रयुक्त व्यगात्मकता के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं-

''लडकी की उम्र 15 साल की थी, रग गेहुआं था (बढिया पजाबी गेहूं)''

''तन्ना से विवाह की बात टूटने पर जमुना ने आसू पोछे, फिर सिनेमा के नये गीत याद किये और इस तरह से होते-होते एक दिन 20 की उम्र को पार कर गई।''[68]

''उनका तन हड्डी का ढाचा भर रहा गया था। चलते हए आप नजदीक से पसलियो की खडखडाहट तक सुनते थे।''[69]

दिन भर खुली हवा में घूमने से और पेट भर खाने से सुबह लिली के चेहरे पर जो उदासी छाई हुई थी वह बिल्कुल गायब हो गई थी।''[70]

इस प्रकार भाषा और शिल्प दोनों दृष्टियो से भारती की दोनों औपन्यासिक कृतिया समृद्ध रही है। प्रथम कृति 'गुनाहों के देवता' में प्रणय रस के बहते जीवित झरनों के अनुकूल भाषा में काव्य ही काव्य है, तो दूसरी कृति 'सूरज का सातवॉ घोडा' में कवि का हृदय नहीं दिमाग क्रियाशील रहा है। दूसरी कृति प्रयोग को, उपहास को, व्यंग्य को, भाषा के यथार्थ को अधिक महत्व देने वाली है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य और भारतीः भारती ने मुख्यत दो उपन्यास लिखे हैं। उनके पहले उपन्यास 'गुनाहों का देवता' ने 'देवदास' और 'चित्रलेखा' जैसे उपन्यासों के

स्तर की ख्याति अर्जित की तो दूसरा उपन्यास 'सूरज का सातवॉ घोडा प्रयोगवादी परम्परा का एक महत्वपूर्ण स्तम्भ बना। हिन्दी के लोकप्रिय उपन्यासो मे 'गुनाहो का देवता' का स्थान महत्वपूर्ण है, जिसके कारण अब तक उसके सस्करण निकल चुके हैं।

भारती के तीसरे उपन्यास 'ग्यारह सपनो का देश' उनकी स्वतत्र कृति नहीं है, किन्तु उसमे सर्वाधिक योगदान भारती का ही है। उदयशकर भट्ट, रांगेय राघव, प्रभाकर माचवे, कृष्णा सोबती आदि लेखको का एक-एक अध्याय एव भारती के दो अध्याय इस तरह कुल 11 अध्याय सकलित कर एक उपन्यास बनाने का यह हिन्दी मे दूसरा प्रयोग है। प्रयोग की असफलता पर प्रकाश डालते हुए श्री कैलाश जोशी ने लिखा है- 'ग्यारह सपनो का देश' दस लोगो का सपना है जो सचमुच सपना बनकर रह गया है, उपन्यास नहीं बन पाया है और उपन्यास बनना कैसे सम्भव था, दस सपनो से भला एक उपन्यास की सृष्टि कैसे सम्भव है, कोई यदि चाहे कि पचास खण्ड काव्यो को मिलाकर एक महाकाव्य का निर्माण किया जाय तो यह कैसे सम्भव हो सकेगा, ठीक इसी तरह उपन्यास मे लेखक की अपनी विचारधारा, उनकी मान्यताओं का होना आवश्यक है। तभी वह कोई बात अथवा भाव हमें ठोस रूप मे दे पायेगा।''[71]

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि डॉ0 धर्मवीर भारती छायावादोत्तर परिदृश्य के प्रतिनिधि उपन्यासकार हैं। उनके उपन्यासों का हिन्दी उपन्यास साहित्य में गौरवपूर्ण स्थान है। हिन्दी के रोमाटिक उपन्यासों की परम्परा मे 'गुनाहो का देवता' का स्थान महत्वपूर्ण है तो बुद्धि प्रधान उपन्यासों में 'सूरज का सातवाँ घोडा' तथा समन्वित प्रयोग की दृष्टि से 'ग्यारह सपनों का देश' का महत्व अप्रतिम है।

सन्दर्भ-संकेत

1 सारिका-पत्रिका, डॉ0 कृष्णदत्त पालीवाल का लेख 'धर्मवीर भारती रचना संवेदना का विस्फोटक नयापन', अक-416, सितम्बर सन् 1986, पृ0 43,

2 डॉ0 धर्मवीर भारती 'गुनाहो का देवता', पृ0 375, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 15वां स0 1977

3 डॉ0 धर्मवीर भारती . 'गुनाहो का देवता', पृ0 226; भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 15वा स0 1977

4 सपादक लक्ष्मण दत्त गौतम, धर्मवीर भारती, प्रेम प्रकाश गौतम का लेख 'व्यक्तिवादी रोमानी उमस के उपन्यास- कुमार प्रकाशन, 20/5 मोती नगर, नई दिल्ली-15, प्र0सं0- जुलाई 1974

5 डॉ0 धर्मवीर भारती . 'सूरज का सातवॉ घोडा', निवेदन भाग, साहित्य भवन लि0, इलाहाबाद, द्वितीया वृत्ति-1955 ई0

6. डॉ0 धर्मवीर भारती 'सूरज का सातवॉ घोडा', पृ0 105, साहित्य भवन लि0, इलाहाबाद,

7 डॉ0 धर्मवीर भारती 'सूरज का सातवॉ घोडा', पृ0 113-113, साहित्य भवन लि0, इलाहाबाद,

8 (संपादक) लक्ष्मण दत्त गौतम, 'धर्मवीर भारती,' प्रेम प्रकाश गौतम का लेख 'व्यक्तिवादी रोमानी उमस के उपन्यास' पृ0 94, कुमार प्रकाशन, 20/5 मोती नगर, नई दिल्ली-15, सं0- जुलाई 1974

9. डॉ0 हुकुम चन्द्र राजपाल, धर्मवीर भारती : 'साहित्य के विविध आयाम', पृ0 147; वि0भू0 प्रकाशन, साहिबाबाद, प्र0सं0- 26 जनवरी 1980

10. डॉ0 धर्मवीर भारती : 'सूरज का सातवॉ घोडा', भूमिका भाग; साहित्य भवन लि0, इलाहाबाद; द्वितीया वृत्ति- 1955 ई0

11. माया-नवम्बर सन् 1976/डॉ0 धर्मवीर भारती का लेख/पृ0 31,

12. प्रकर/फरवरी सन् 1980/विवेकी रॉय का लेख - पृ0 7,

13. डॉ0 सत्यपाल चुध : प्रेमचन्द्रोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि/पृ0 856; उद्धृत : हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग : डॉ0 त्रिभुवन सिंह- वाराणसी, हिन्दी प्रचारक संस्थान; सं0-1973

14 डॉ0 भारती/गुनाहो का देवता/पृ0 135, द्वितीय सस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 15वा स0- 1977

15 डॉ0 भारती/गुनाहो का देवता/पृ0 176, द्वितीय संस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 15वा स0- 1977

16 डॉ0 भारती/गुनाहो का देवता/पृ0 221, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वि0स0, 15वा स0- 1977

17 डॉ0 गणेशन · हिन्दी उपन्यास साहित्य, एक अध्ययन/पृ0 211, उद्धृत हिन्दी उपन्यास साहित्य का उद्भव और विकास, डॉ0 लक्ष्मीकात सिन्हा, कानपुर ग्रथ भारती; सं0- 1966

18 डॉ0 धर्मवीर भारती 'गुनाहो के देवता', पृ0 274, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली; 15वा स0- 1977

19 डॉ0 धर्मवीर भारती 'गुनाहो के देवता', पृ0 276, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 15वा स0- 1977

20 डॉ0 धर्मवीर भारती : 'गुनाहो के देवता', पृ0 247; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली; 15वा स0- 1977

21 डॉ0 विनय मोहन सिंह : आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में प्रेम की परिकल्पना, पृ0 281, उद्धृत 'हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग- डॉ0 त्रिभुवन सिह, वाराणसी हिन्दी प्रचारक संस्थान, स0-1973

22 डॉ0 कुसुम वार्ष्णेय हिन्दी उपन्यासो में नायक, पृ0 178, उद्धृत- आधुनिकता के संदर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास, अतुल बीर अरोडा, पजाब युनिवर्सिटी, चंडीगढ़ स0- 1974

23. डॉ0 धर्मवीर भारती : 'गुनाहों के देवता', पृ0 107; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली; 15वां सं0- 1977

24 'प्रकर' वर्ष 12, अंक 2, फरवरी 1980, पृ0 6;

25 जयशंकर प्रसाद : 'कामायनी', प्रसाद मन्दिर, संस्करण 3, सन् 1977, पृ0 61,

26 डॉ0 धर्मवीर भारती; 'गुनाहों का देवता, पृ0 246, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली; 15वां सं0-1977

27. डॉ0 धर्मवीर भारती; 'गुनाहों का देवता', पृ0 267; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली; 15वां स0-1977

28 डॉ0 धर्मवीर भारती, 'गुनाहो के देवता', पृ0 179, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 15वा स0-1977

29 डॉ0 धर्मवीर भारती, 'गुनाहो के देवता', पृ0 253, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 15वा सं0-1977

30 डॉ0 इन्द्र नाथ मदान, 'आज का हिन्दी उपन्यास', पृ0 54, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0- 1966

31 सूरज का सातवॉ घोडा, पृ0 41, साहित्य भवन लि0, इलाहाबाद, प्र0सं0 1955

32 डॉ0 कैलाश जोशी, 'धर्मवीर भारती-उपन्यास साहित्य, पृ0 40, चिन्मय प्रकाशन, जयपुर; सं0- 1973

33. डॉ0 शैल रस्तोगी, हिन्दी उपन्यासों में नारी, पृ0 251, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, सं0- 1981

34 सूरज का सातवॉ घोडा, पृ0 52, साहित्य भवन लि0, इलाहाबाद, द्वितीया वृत्ति, 1953 ई0

35 आधुनिक हिन्दी उपन्यास, सम्पादक- भीष्म सहानी, पृ0 73, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं0- 1974

36 आधुनिक हिन्दी उपन्यास; सम्पादक- नरेन्द्र मोहन, पृ0 131, द मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, सं0- 1975

37. डॉ0 शैल रस्तोगी, हिन्दी उपन्यासों में 'नारी', पृ0 252, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, स0- 1981

38 डॉ0 सुमित्रा त्यागी, स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में जीवन दर्शन, पृ0 133, उद्धृत . प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यास साहित्य में पारिवारिक जीवन : डॉ0 आशा बागड़ी, शोध प्रबन्ध प्रकाशन, दिल्ली; स0- 1966

39 डॉ0 इन्द्रनाथ मदान, आज का हिन्दी उपन्यास, पृ0 54; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं0- 1966

40. डॉ0 धर्मवीर भारती; गुनाहों का देवता, पृ0 1, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 15वां सं0 1979

41. डॉ0 धर्मवीर भारती; गुनाहों का देवता, पृ0 24-25; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली; 15वां सं0-1979

42. सूरज का सातवाँ घोडा; पृ0 9 (पहली दोपहर), साहित्य भवन लि0, इलाहाबाद, द्वितीय

43 सूरज का सातवाँ घोडा, पृ0 57 (तीसरी दोपहर) साहित्य भवन लि0, इलाहाबाद द्वितीया वृत्ति- 1955 ई0

44 डॉ0 भारती, गुनाहो का देवता, पृ0 71, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 15वां सं0-1977

45 डॉ0 धर्मवीर भारती, गुनाहो का देवता, पृ0 74, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 15वां सं0-1977

46 डॉ0 धर्मवीर भारती, गुनाहो का देवता, पृ0 83, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 15वां सं0-1977

47 डॉ0 धर्मवीर भारती, गुनाहो का देवता, पृ0 87, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली; 15वा स0-1977

48 डॉ0 धर्मवीर भारती, गुनाहो का देवता, पृ0 15-16, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 15वा सं0-1977

49 डॉ0 धर्मवीर भारती, गुनाहो का देवता, पृ0 34-35, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 15वां सं0-1977

50. डॉ0 धर्मवीर भारती, गुनाहो का देवता, पृ0 43, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 15वा सं0-1977

51 डॉ0 धर्मवीर भारती, गुनाहों का देवता, पृ0 62, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 15वा सं0-1977

52 सूरज का सातवाँ घोडा, पृ0 82-83, साहित्य भवन लि0, इलाहाबाद, द्वितीया वृत्ति- 1955 ई0

53. डॉ0 धर्मवीर भारती, गुनाहों का देवता, पृ0 80-81, 211-212, 223-224, 264, 268 आदि, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली; 15वा सं0-1977

54. डॉ0 धर्मवीर भारती; गुनाहों का देवता, पृ0 321, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली; 15वां सं0-1977

55. डॉ0 धर्मवीर भारती; गुनाहों का देवता, पृ0 123-233; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 15वां सं0-1977

56. डॉ0 धर्मवीर भारती; गुनाहों का देवता, पृ0 271, 277, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 15वां सं0-1977

57. कैलाश जोशी; धर्मवीर भारती उपन्यास साहित्य, पृ0 47, चिन्मय प्रकाशन, जयपुर सं0- 1973

58. डॉ0 धर्मवीर भारती, गुनाहों का देवता, पृ0 217, साहित्य भवन लि0, इलाहाबाद; द्वितीया वृत्ति- 1955 ई0

59 डॉ0 धर्मवीर भारती, गुनाहों का देवता, पृ0 188, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 15वां सं0-1977

60 डॉ0 धर्मवीर भारती, गुनाहों का देवता, पृ0 184, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 15वां सं0-1977

61 डॉ0 धर्मवीर भारती; गुनाहों का देवता, पृ0 183; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली; 15वां सं0-1977

62 डॉ0 सरोजनी त्रिपाठी; आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तु विन्यास, पृ0 250; आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली; सं0 1973

63 डॉ0 सत्यपाल चुघ, प्रेमचन्द्रोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि, पृ0 856

64. डॉ0 महेन्द्र चतुर्वेदी; हिन्दी उपन्यास का एक सर्वेक्षण, पृ0 203, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, सं0 1981

65 डॉ0 रामदरश मिश्र; हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ0 136; राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली; सं0 1976

66. डॉ0 सत्यपाल चुघ, प्रेमचन्द्रोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि, पृ0 856; उद्धृत हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग · डॉ0 त्रिभुवन सिंह, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी,

67. डॉ0 धर्मवीर भारती, सूरज का सातवॉ घोड़ा, भूमिका, पृ0 12; साहित्य भवन लि0, इलाहाबाद, द्वितीया वृत्ति- 1955 ई0

68. डॉ0 धर्मवीर भारती; सूरज का सातवॉ घोडा, पृ0 27; साहित्य भवन लि0, इलाहाबाद; द्वितीया वृत्ति- 1955 ई0

69. डॉ0 धर्मवीर भारती; सूरज का सातवॉं घोड़ा, पृ0 70; साहित्य भवन लि0, इलाहाबाद; द्वितीया वृत्ति- 1955 ई0

70 डॉ0 धर्मवीर भारती; सूरज का सातवॉ घोडा, पृ0 38; साहित्य भवन लि0, इलाहाबाद; द्वितीया वृत्ति- 1955 ई0

71. कैलाश जोशी; धर्मवीर भारती, उपन्यास साहित्य, पृ0 26; चिन्मय प्रकाशन, जयपुर, सं0 1973

(ख) डॉ0 धर्मवीर भारती की कहानियों का अनुशीलन

छायावादोत्तर परिदृश्य पर डॉ0 धर्मवीर भारती मुख्यत कवि और उपन्यासकार हैं। प उनके दो कहानी सग्रह विशेष उल्लेखनीय हैं-

1 चॉद और टूटे हुए लोग (1955 ई0)

2 बंद गली का आखिरी मकान (1969 ई0)

इन दोनो संग्रहों से पहले उनका एक कहानी सग्रह 'मुर्दो का गॉव (1946 ई0 प्रकाशित हुआ था किन्तु उसकी सारी कहानिया 'चॉद और टूटे हुए लोग (1955 ई0)' व समाहित कर ली गई हैं। प्रथम सग्रह में कुल पच्चीस कहानियॉ सकलित हैं। डॉ0 धर्मवी भारती की सबसे पहली कहानी 'तारा और किरण' मानी जाती है जिसे उन्होने पढ़ने व दौरान कालेज जीवन में लिखी थी। यह कहानी सर्वप्रथम 'तरुण' पत्रिका मे प्रकाशित हु थी, जिसमे भारती ने दैहिक प्रेम को नश्वर एव आत्मिक प्रेम को शाश्वत माना है। डॉ(भारती की यह भावना आगे चलकर 'चॉद और टूटे हुए लोग,(1955 ई0) की कहानियों म परिलक्षित होती है।

(1) चाँद और टूटे हुए लोग (1955 ई0) : इस संग्रह में डॉ0 धर्मवीर भारत की कुल 25 कहानियॉ सकलित हैं। इन कहानियों का विभाजन तीन खण्डों में किया गया है-

1. प्रथम खण्ड : 'चाँद और टूटे हुए लोग' शीर्षक से प्रथम खण्ड अंकित है। इस खण्ड क अधिकांश कहानिया अप्रकाशित हैं। इस शीर्षक खण्ड में कुल सात- कहानियॉ हैं-

1 हरिनाकुस और उसका बेटा

2 कुलटा

3. मरीज न. सात

4. धुआं

5. युवराज

6. अगला अवतार

7 चॉद और टूटे हुए लोग

इन कहानियों में 'मरीज नं0 सात' प्रेम कहानी है, 'कुलटा' काम-भावना-प्रधान 'युवराज' अहंकार प्रधान, 'धुऑ' - वेश्याप्रधान 'हरिनाकुस और उसका बेटा' - देशभक्ति

प्रधान तथा 'अगला अवतार' व्यंग्यात्मक एव 'चॉद और टूटे हुए लोग' मे प्रेम की पवित्रता और व्यक्ति के अर्न्तजगत् का यथार्थपरक उद्घाटन है।

द्वितीय खण्ड : 'भूखा-ईश्वर' शीर्षक कहानी इसी खण्ड में प्रकाशित हुई है। इस खण्ड में नौ कहानियॉ सकलित है -

1 भूखा ईश्वर

2 मुर्दो का गाव

3 एक बच्ची की कीमत

4 आदमी का गोश्त

5 बीमारियां

6 कफ़नचोर

7 एक पत्र

8 हिंदू या मुसलमान

9 कमल और मुर्दे

'भूखा ईश्वर' चाद और टूटे हुए लोग कहानी संग्रह का महत्वपूर्ण पडाव है, जहां आकर भारती अपनी रोमानी काव्यात्मक, प्लेटोनिक प्रेम के प्रति आसक्ति, प्राकृतिक रंगीनियों के प्रति जादू और स्वप्नावस्था से जागकर अपने परिवेश के प्रति सचेत हो उठे हैं। 'मुर्दो का गाँव' (1946 ई0) की भूमिका मे भारती ने अपनी साहित्यिक भूमिका के परिवर्तन की सूचना दी है - "अस्तित्व, अस्तित्व के लिए आवश्यकता है प्रगति की, प्रगति के लिए आवश्यकता है पार्थिवता की, पार्थिवता के लिए आवश्यक है रूप की, भौतिक शरीर की।"[1] पर हमारे देश की तत्कालीन परिस्थितियां बिल्कुल ऐसी थी, जहॉ अस्तित्व का सवाल उठ ही नहीं सकता था "जो जाति इतनी निर्वीर्य है कि उसके बलिष्ठ हाथ अपने श्रम की उपज की रक्षा न कर सकें - जिसकी ऑखों के सामने भुखमरे पटरियों पर दम तोड देते हों और फिर उनकी भुजाएं नहीं फड़क उठतीं, उनके प्राणो में घोर मंथन मच नहीं जाता, उनके संकल्प में विद्रोह नहीं भभक उठता - ऐसी जाति -जाति नहीं - मुर्दो की टोली है - सड़ती हुई - घृणित।"[2]

स्पष्ट है कि भारती अपने पूर्ववर्ती कहानीकारो से अपने कहानीकार को अलग रखने मे सफल रहे हैं। परियो-राजकुमारो की प्रणय-वेदनाओ मे उन्हे अब रुचि नहीं रहीं, क्योकि "जब कल्पना पृथ्वी का आश्रय छोड देती है, अन्न की सीढियो से सबध तोड देती है तब वह आकाश की नीली झाडी मे चांदी के कॉटो मे विधकर ऊपर ही उलझी रह जाती है - भूखी, प्यासी, दुर्बल, निकम्मी, व्यर्थ। और हमारे हिंदी के कलाकारो की आज यही दशा है। कलकत्ते की सडकों पर भूखी लाशे सडती रहीं और हम भिनभिनाती हुई मक्खियो की तरह कवि-सम्मेलन मे उनकी छाती पर प्रेम के गीत पढते रहे।"[3] अत दूसरे खण्ड के ये शब्द इस तथ्य को उद्घाटित करते हैं कि भारती ने अपनी कहानी रचना-प्रक्रिया को प्रगतिवादी लेखको के सामीप्य मे अवस्थित कर दिया है। वे पीडितों, शोषितो के, भूख और अभाव के, संघर्ष और प्रगति के लेखक प्रतीत होते हैं। प्रेम की गली को अब उन्होंने अपने लिए वर्जित घोषित किया है, अपने आप मे एक कवि की जगह किसी क्रातिकारी के स्वर को, क्रांतिकारी की आत्मा को भर दिया है। क्राति का यही स्वर, यथार्थ के ग्रहण की सूक्ष्म सूझ-बूझ 'बद गली का आखिरी मकान' तक उत्तरोत्तर विकसित होकर भारती को एक सजग कलाकार के रूप मे प्रतिष्ठापित कर देती है।

'भूखा ईश्वर' दूसरे खण्ड की प्रथम कहानी है जिसमें भारती ने उस सामाजिक स्तर की आर्थिक विपन्नता को सकेतित किया है जो मनुष्य को अपनी बेडियों मे सदियों से जकडे हुए है। 'मुर्दो का गॉव' 'एक बच्ची की कीमत' 'आदमी का गोश्त' 'बीमारिया', कफनचोर, 'एक पत्र' 'हिदू या मुसलमान', 'कमल और मुर्दे', इत्यादि कहानियों में भूख, बीमारी, हैजा, अकाल से पीडित मनुष्य की विवशताओं और इन्हीं विवशताओं के बीच जगमगाते मनुष्य की मानवता को अंकित करती हैं। इन कहानियों में शासन, धर्म आदि की व्यवस्थाओं पर कठोर व्यग्य किया गया है।

तृतीय खण्ड : कलंकित उपासना

इस खण्ड में कुल नौ कहानियाँ संकलित हैं जिनमें रोमांटिकता, भावना की प्रबलता और कल्पना की उडान अन्य दो खण्डो की अपेक्षा अधिक मात्रा में दिखाई देती हैं। तीसरे खण्ड की अधिकांश कहानियों में भारती का जीवन-दर्शन जयशंकर प्रसाद से काफी हद तक

प्रभावित परिलक्षित होता हैं। तीसरे खण्ड मे सकलित कहानियाँ हैं–

1 पूजा

2 स्वप्नश्री और श्री रेखा

3 शिजिनी

4 कला एक मृत्युचिन्ह

5 नारी और निर्वाण

6 तारा और किरण

7 कुबेर

8 मजिल

9 कलकित उपासना

इस खण्ड की कहानियों के कथानक प्रायः जीवन के बुनियादी सवालों को उठाने की चेष्टा में सलग्न परिलक्षित होते हैं। 'पूजा' 'स्वप्न श्री और रेखा', 'शिंजिनी' रूपकात्मक कथानक पर अवलंबित हैं तो 'नारी और निर्वाण' ऐतिहासिक कथानक पर आधारित हैं, 'तारा और किरण' कहानी भावना प्रधान, चितनशील रूप का प्रतिनिधित्व करती हुई परिलक्षित हेती हैं। 'कुबेर' कहानी में पौराणिकता का कुछेक अंशों में समावेश है। 'मंजिल कहानी' 'स्त्री और पुरूष' ईश्वर और मनुष्यत्व के बीच की सीमा रेखाओं, संबधों को उजागर करती है। 'कला एक मृत्युचिन्ह' में कला एवं कलाकार तथा उसकी प्रकृति का विवेचन है तो 'कलकित उपासना' लगभग बीस पंक्तियों की लघुत्तम कहानी है।

वस्तु एवं शिल्प की दृष्टि से 'चांद और टूटे हुए लोग' कहानी– संग्रह का विश्लेषण इस प्रकार है–

शीर्षकः भारती के इन कहानियों के शीर्षक पर्याप्त उत्सुकता जगाने वाले संक्षिप्त एक व्यंजनापूर्ण हैं। कुछ शीर्षक ऐसे हैं जो लेखक की व्यंगदृष्टि के माध्यम बन गये हैं जैसे–युवराज, अगला अवतार कुलटा आदि। "एक बच्ची की कीमत, 'मुर्दो का गांव', 'आदमी का गोश्त', 'एक पत्र', 'हिन्दू या मुसलमान', 'कमल और मुर्दे' जैसे कहानी के मूल सूत्र

को अभिधात्मक होने के बावजूद कलात्मकता के शीर्षक स्तर पर सभाले रखते हैं "हरिनाकुस और उसका बेटा" जैसा शीर्षक भारती के कथाकार की मिथक के प्रयोग की क्षमता को उद्घाटित करता है।

कथावस्तु : इन दो खण्डो की कहानियो का निर्माण अधिकाशत यथार्थ जीवन पर ही आधारित है, अत इन कहानियो का मूल जीवन के यथार्थ मे खोजा जा सकता है।

रचना- विधान की दृष्टि से "हरिनाकुश और उसका बेटा" "कुलटा", "मरीज नम्वर सात" आदि प्रथम खण्ड की कहानियां तीसरे खण्ड - "कलंकित उपासना" की तुलना मे अधिक सफल कही जा सकती हैं। इसमे लेखक दार्शनिक खंडन मंडन को कलात्मकता का स्तर कायम रखने को टालता गया है। इन कहानियों का आकार भी प्राय सीमित है और अनावश्यक घटना का समावेश लेखक ने कहीं भी किया नहीं हैं। स्वाभाविक और प्रभावशाली ढग से लिखी गई ये कहानिया अपने कथ्य को पाठकों तक बखूबी सप्रेषित करती हैं। कहानियो में नाटकीयता का तत्व प्रधान है। प्राय सभी कहानियां एक ही स्थान पर आरम्भ होकर खत्म हो जाती हैं 'कुलटा' कहानी के सीमित पात्र एव घटना स्थल का ऐक्य 'धुआं, 'मरीज नम्बर सात', 'युवराज', 'अगला अवतार', कहानियों के घटना स्थल, काल एवं सीमित पात्र नाटकीयता के तत्व की रक्षा करते हैं। आरम्भ, मध्य व अन्त की कथात्मक सीढियां भी इन कहानियों में खोजी जा सकती हैं। तीसरे खण्ड में "चॉद और टूटे हुए लोग" एक मात्र ऐसी कहानी है, जिसमें रूपक तत्व कुछ अंशो में पाया जाता है, शेष कहानियां सरल ढंग से लिखी गई हैं।

"भूखा ईश्वर" के कथानक यथार्थ से लिए गए हैं। रूपक कथाओं की प्रतिनिधि कथावस्तु इस खण्ड में भी मिलती है "कमल और मुर्दे" एवं "भूखा ईश्वर" इसका प्रमाण है। इस खण्ड की कुछ कहानियां (मुर्दो का गांव, आदमी का गोश्त, एक पत्र) कथानक की अपेक्षा भाव के बल पर ज्यादा टिकी हुई हैं। इन कहानियों मे एक कथा से दूसरी कथा विकसित होती चली जाती है और कथ्य का सूत्र इन कथांशों को अपने मे बॉधे रखता है। 'मुर्दो का गांव' कहानी में दो मित्र मुर्दो वाले गॉव जाकर अनेक मुर्दो को देखते हैं। प्रत्येक मुर्दे की अलग-अलग कहानी है। ये अलग-अलग कहानियां एक बिन्दु पर आ मिली हैं

जिसका नाम है भूख और गरीबी। "हिन्दू या मुसलमान" कहानी मे भी आरम्भ मे जिस सूत्र को पकडकर हम कहानी पढते हैं, कुछ दूर जाकर हमे वह सूत्र छोड दूसरा सूत्र हाथ मे लेना पडता है। अर्थात् आरम्भ मे यह कहानी अस्पताल के एक मरीज को आधार बनाती हैं और मध्यावधि मे उस मरीज को मार एक बुढिया और गली मुहल्लो के अकालग्रस्त जीवन का विवरण देने लगती है। किन्तु जैसे कि पूर्व मे सकेत किया गया है कि निरीक्षण वातावरण के यथार्थ की मजबूत पकड के कारण ये कथानक बीच बीच मे खंडित होकर भी अपने प्रभाव को अखड बनाये रखते हैं।

इन कथानको का अत प्राय स्वाभाविक एव कलात्मक ढंग से हुआ है। एक दो ही ऐसी कहानियाँ हैं जिनमे अंतिम अंश कहानी के प्रभाव को खंडित करता है। "बीमारियां" में बेला की दर्दभरी कहानी जहा तक चलती है, सघर्ष के उस चढाव तक कहानी बहुत ही सामर्थ्यवती एवं सार्थक बनी है किन्तु अंतत पठान के चरित्र को लेखक द्वारा लादे जाने के कारण, अपने परिवेश की व्याख्या करने के लिए स्वय लेखक के कथानक मे इनवाल्व होने से कथानक कुछ कमजोर बनता है। "कफनचोर" कहानी की कथा के साथ भी लेखक ने यही अत्याचार किया है। करीम चाचा और मकीना के जीवन की विषमताओ पर किसी कन्ट्रोल आफीसर की टीका टिप्पणी की जरूरत महसूस नहीं होती। लेखक इस अतिम तथ्य को न रखता तो कहानी अंतत अधिक प्रभावशाली बनती। लेकिन ऐसी कमी बहुत कम कहानियों में मिलती है। अधिकतर कहानियो के कथानक अपने दायित्व के प्रति पूर्णतः सतर्क हैं।

चरित्र चित्रणः

भारती की कहानियों में दो तरह के पात्र मिलते है- यथार्थोन्मुख आदर्शवादी एवं यथार्थवादी। हरिनाकुश और उसका बेटा, चाद और टूटे हुए लोग, के यथार्थ जीवन को स्वीकारने के बावजूद आदर्श और रोमानी आकर्षण को व्यक्त करते हैं। दूसरी ओर 'कुलटा', 'मरीज नम्बर सात', 'धुँआं', 'युवराज', 'अगला अवतार', 'भूखा ईश्वर', 'मुर्दो का गांव', 'एक बच्ची की कीमत', 'मरीज नम्बर सात', 'आदमी का गोश्त', बीमारियों, कफन-चोर,

'एक पत्र' आदि कहानियो के पात्र जिस परिवेश को लेकर उभरते हैं, उसी परिवेश के साथ विकसित होते हैं। आदर्श का कोई दूसरा ससार इनकी आखो मे नहीं रहता।

"चॉद और टूटे हुए लोग" सग्रह की कहानियो के अधिकतर पात्र गरीब और भूखे हैं, अशिक्षित हैं, दलित और सामाजिक तथा नैतिक दृष्टि से पतित समझे जाने वाले हैं। "हरिनाकुस और उसका बेटा" कहानी का जल्लाद, "कुलटा" कहानी की लाली, "मरीज नम्बर सात", "धुवां" कहानी की समस्त वेश्याये, "मुर्दो की गांव" की जुलाहिन, "एक बच्ची की कीमत" की रामी, "बीमारिया" की बेला, "कफन चोर" का करीम, "हिन्दू या मुस्लिम" की बुढिया समाज की दृष्टि से कुछ महत्व नहीं रखतीं। पात्रो की इन विशेषताओं को लेखक ने समुचित ढग से विकसित किया है। "हरिनाकुस और उसका बेटा" कहानी के चौधरी का यह चरित्र देखिए – "वह जात से डोम था, पेशे से जल्लाद। खानदान उसका बहुत ऊँचा और नामी था। उसके दादा ने तातियभील को फासी दी थी। उसके नाना ने अपनी जवानी में चौदह खून किये थे और जब उसे फासी का हुकम हुआ था तो उसी के बाप ने उसके नाना को फासी लगायी थी और लौटकर नौ बोतल दारू पी थी, एक सूअर की गर्दन मरोड दी थी और अपनी बीमार औरत का हाथ गरम छूरी से दाग दिया था। इन्हीं सब वजहों से उसके खानदान का नाम बडा ब . . . और वह बिरादरी का चौधरी माना जाता था।"[6]

भारती ने चरित्र के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है, जिससे ये पात्र वैचारिक आकर्षण से युक्त एवं सजीव लगते हैं जैसे– "वे आये और कुर्सी पर बैठने के पहले भाषण देने .... . मुखातिब होकर बोले "आ गया है– समय आ गया है। जो हंसता है सो रोवेगा और जो चुप है सो बोलेगा, और जो बोलेगा सो उसके हाथ में केतु फहरायेगा। सामवेद में भगवान ने कहा है कि कलयुग में देवा वहन्ति केतवः . ..: सो जो सुनता है, जो नहीं सुनता है सो पछतायेगा।"[7]

भारती मनुष्य स्वभाव के पारखी हैं। चरित्र चित्रण में वे पात्रों के आन्तरिक, बाह्य चित्रण में इसीलिए सफल हो गये हैं। जल्लाद के बेटे के चूहों के शिकार वाली बात,[8] "कुलटा" की लाली के दमित मन में उफनता वात्सल्य का उल्लास, सौन्दर्यानुभूति के एक

क्षण के सामने मृत्यु को ललकारता 'मरीज नम्बर सात' जैसे अनेक उदाहरण इस तथ्य के प्रमाण हैं। यहीं लेखक मनुष्य स्वभाव की नीचतम कमजोरियों को प्रकाशित करने में हिचका नहीं है। "गाधीवादी युवराज" का विकृत मन और बीमारी के कारण सडता जाता शरीर दोनों को भारती बेहिचक अकित करते हैं।

मनुष्य के जीवन की सबसे बडी कमजोरी है अर्थ, जिसके अभाव में मनुष्य लाख अच्छाइयों के होते हुए भी पशु माना जाता है, खरीदा जाता है, अपने आप बिक जाता है, कैद हो जाता है, भूखा मरता है या इन सबका बस न चला तो द्वार-द्वार हाथ फैलाकर भीख मांगता है। "भूखा ईश्वर" खण्ड की कहानियों के चरित्र इसी बात को स्पष्ट करते हैं–

"मगर वह भूखा था और भूखो की इच्छायें भी भूखी, कमजोर और करूण हुआ करती हैं। फलतः इसे आकार मिला, मगर एक मरीज भूयामेर का फटी मैली धोती, भूखा पेट, धँसी आँखे, लाचार कदम।"[9]

इसी प्रकार भूख और लाचारी के कारण "एक बच्ची की कीमत"कहानी की रामी अपने बच्ची को अठन्नी के दाम पर बेचती है और यही अर्थाभाव "कफन चोर" कहानी के कीरम अब्बा को कफन चोरी करने पर मजबूर कर देती है।

लेकिन यथार्थ के केवल इसी पक्ष को भारती पाठ्को पर प्रभाव से थोपते नहीं हैं। इनके पात्र भूख के कारण टूट कर भी भूख को तोड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं, अपनी मनुष्यता पर गर्व किया जा सके ऐसा व्यवहार करते है, जैसे – "हिंदू या मुसलमान" कहानी की बुढिया "एक पत्र" कहानी की अनामा औरत, "बीमारियां" की बेला, "मुर्दो का गांव" की जुलाहिन, "भूखा ईश्वर" का ईश्वर, "हरिनाकुस और उसका बेटा" का जल्लाद। इन पात्रों की गरीबी के कारण पशु की तरह जीना पडता है, किन्तु समयं आते ही मानवता के बीज इनके अन्दर से अपने आप अंकुरित हो उठ्ते हैं, जो मनुष्य स्वभाव की एक अनायास स्थिति है। चौधरी जल्लाद का पशु सा व्यवहार (हरिनाकुस और उसका बेटा,) ईश्वर की भूख और दरिद्रता (भूखा ईश्वर), बुढ़ापा, बीमारी और भूख की आग (हिंदू और मुसलमान) आदि को झेलते हुए भी इन पात्रों में वात्सल्य का झरना सूखा नहीं, सहृदयता

मरी नहीं और बन्धुभाव की भावना नष्ट नहीं हुई। पात्रों की यह सृष्टि भारती की मानवीय आस्था की प्रतीक है।

"चॉद और टूटे हुए लोग" कहानी मे विश्लेषण की प्रधानता है। "धुवा" मे भी आत्म विश्लेषण मिलता है, किन्तु कलात्मकता में उससे बाधा नहीं आती है। "एक बच्ची की कीमत", "मुर्दो का गाव" आदि कहानियों में वर्णनात्मकता के साथ ही पात्रों के चरित्र को उभारा गया है।

भारती के ये पात्र जिस वातावरण मे निर्मित हैं, उस वातावरण का यथार्थ एव अचूक प्रस्तुतीकरण इनके विशिष्ट व्यक्तित्व को सजीवता प्रदान करता है। भारती ने तन्मयता एवं सरसता के साथ राजकुमारों के जीवन को भी अकित किया है, तथा भिखारियों के जीने की हर कोशिश को सहृदयता के साथ, मानवता के साथ उभारा है। इसमें न भिखारी झूठ है, न राजकुमार अविश्वसनीय। इस प्रकार भारती के पात्रों का यह ससार उनके लेखकीय व्यक्तित्व, यथार्थ को देखने-भोगने परखने की सामर्थ्य को अंकित करता है।

कथोपकथनः

नाट्कीयता, विश्लेषणातम्कता, गत्यात्मकता एवं मनोवैज्ञानिकता भारती की कहानियों के कथोपकथनों की विशिष्टतायें हैं। पात्रों के व्यक्तित्व को भारती ने कथोपकथन के माध्यम से उभारा है। 'कुलटा' कहानी का एक प्रसंग है, जहा भाई-भाई अपने कस्बे की एक आवारा समझी जाने वाली औरत के सम्बन्ध में चर्चा कर रहे हैं-

"बेचारी रूआंसी हो गयी!" बेचारी पर खास जोर देते हुए भइया ने कहा "तुम अभी इन लोगो के ढंग नहीं जानते! पूरी कुलटा है यह।"

"क्यों किसी पर तोहमत लगाते हो?"

"तोहमत! जानते हो विधवा है यह। दूसरा ब्याह किया है। मैने पहले ही दिन कह दिया था.. ....।

"लेकिन इतने से ही यह दुश्चरित्र कैसे हो गयी?"

उपरोक्त कथोपकथन मे हम तीनो चरित्रो के व्यक्तित्व को विकसित होते हुए पाते है पात्रों के सामाजिक परिवेश, शिक्षा एव मानसिक विकास के अनुकूल सवादों की योजना इन कहानियों में मिलती है – "कहो आज बहुत गगाजल पिया है क्या, ताडीघर से सीधें आ रहे हो,"

"ताडी, अरे आज खून पिया है भइया, खून!"

"खून, क्यों सावन भादो लग गया चौधरी,"

"हां और क्या भइया, झूला डाल के आया हूँ आज।।"[11]

कहीं–कहीं संवादों पर व्यंग की हल्की सी छाया भी है–

"मुनि मारकेश,"

"हां, हाँ, मुनि मारकेया। भविष्य पुराण में कहा है – उत्तराखण्डे तु काल मारकेश विराजते – उत्तराखण्ड में काल मारकेश मुनि राज करेंगे। रूस में कार्ल–मार्क्स छद्म नामधारण करके राज करते हैं। पर हैं मारकेश। देखा क्या अमेरिका को मार भगाया। तो फिर भारत में प्रेम–विवाह होगा, फिर मारकेश मुनि काक्र्क भगवान की स्तुति करेंगे और सारे संसार में फिर सतयुग आयेगा, लेकिन उसके पहले फिर इक्कीस बार पृथ्वी क्षत्रीविहीन होगी।"

"तो काल्र्क भगवान माघमेले में आयेगे न; मैने पूछा।"[12]

विश्लेषणात्मकता और वातावरण के निर्माण की क्षमता से युक्त सम्बाद भी इन कहानियों में स्थान–स्थान पर प्राप्त होते हैं–

". .... लडका चीख पडा–वह सांस ले रही है–सुना नहीं आपने,"

"कौन;"

"वह, अब जुलाहिन सांस ले रही है।"[13]

.. . .

"यह कौन सा देश है कलिका"

"यह आसाम है" भारत का एक प्रान्त कली ने एक जबाव दिया। उसके स्वर में एक अजनबी कांपती उदासी थी।

"यहाॅ कमल नहीं होते,"

'नहीं, यहाॅ केवल चाय होती है, देखते हो नये पौधे। यहा उनकी खेती होती है।'

इन कहानियों का लेखक व्यक्तिगत प्रेम और भावना में अटका हुआ नहीं है, अत· काव्यात्मकता से युक्त सवाद इन कहानियो में कम ही मिलते हैं। "चाॅद और टूटे हुए लोग" या "कमल और मुर्दे" जैसी एक दो कहानिया मिलेगी जिनमें इस ढंग की भावुकता मिलती है जैसे–

"अच्छा, यहा गन्धर्व कन्याये नहीं होती हैं। शायद उनसे कमल का पता चले।"

"नहीं, यहां सिर्फ चाय की मजदूरिनें होती है।"

"देखो–देखो ; बात काटकर देवदूत बोला– "वह देखों, एक गन्धर्व कन्या जा रही है।"[15] तथा–

"क्या सोच रहे हो? चुप क्यों हो राजे," उसने शीतल का माथा छुआ। राजेश ने चांद की ओर से निगाहें हटाई। क्षण भर अपने साथी की ओर देखा और अजब सी कांपती हुई नशीली आवाज में बोला– "एक और बात बताओ कुंवर। कभी तुमने यह महसूस किया है कि जब कभी ऐसे अकेलेपन में आदमी आ जाय और उसके सामने सुन्दर फूल हो, या चांद हो, या बादल हो या पेडों की हरी–भरी छांहे तो उस समय कोई चेहरा उसके सामने आ जाता है। आंसू से धुला या मुस्काता हुआ . . . . क्यों?"

इन कहानियों के कथोपकथन स्वाभाविक, संक्षिप्त एवं पात्रानुकूल हैं जिसके कारण इनकी विश्लेषणात्मकता, कलात्मकता के स्तर पर अखरती नहीं है।

". . .. .कौन है यह लडकी बताओगे;"

"है एक! जानकर क्या करोगे,"

"उसे मालूम है, कुवर ने पूछा,"

"क्या, राजे हँस कर बोला– "क्या,"

"यही"

"नहीं जी," राजे खिलखिला कर हँस पडा– "तुम कुछ और न समझना। वह लडकी फूल सी पवित्र है, मैं केवल इतना कह रहा हूँ, लेकिन मेरे लिए यह है, यह तो मैंने नहीं कहा। आदमी दूर से भी फूल को देख सकता है।"[16]

"हुजूर। आप पैगम्बर हैं, खुदा के फरिस्ते है। मैं

चुप रहो, बेइज्जती मत करो, मैं फरिस्ता नहीं इन्सान हूँ," फरिस्ते ने चीखकर कहा।

"नहीं हुजूर। फरिश्ता

"फरिश्ता। फरिश्ता। मैं चोर हूँ बुड्ढे। कफन चुराने आया हूँ मेरी बेटी बिना कपडे के मर रही है। तू भी नंगा है, अच्छा आधा कफन तू भी लेना।"[17]

इस प्रकार कहानी कला के एक महत्त्वपूर्ण तत्व–संवाद को भारती ने अपनी कहानियों में सफलता के साथ प्रयुक्त किया है। यथार्थ और स्वाभाविक होने के कारण इन संवादों के माध्यम से कहानियाँ यथार्थ जीवन का सृजन कर सकी है। इसमें सदेह नहीं है। भारती की प्रथम व दूसरे खण्ड की कहानिया इस तथ्य की उदाहरण है।

देश–काल–वातावरणः

"चांद और टूटे हुए लोग" एवं "भूखा ईश्वर" की कहानियों में पर्याप्त विविधता है, एवं इन कहानियों में निर्मित वातावरण में भी इस दृष्टि से विविधता है। विवेचन की सुविधा के लिए भारती की इन कहानियों में पाये जाने वाले देश–काल वातावरण को निम्न वर्गो में रखा जा सकता है–

1. रोमांटिक · "चॉद और टूटे हूए लोग" एवं "कमल और मुर्दे" कहानियां।

2. यथार्थ प्रधान : "यथार्थ वातावरण को भी इन उपशीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा

सकता है–"

(क) कस्बाई वातावरण कुलटा, धुवा, बीमारियां, हिन्दू या मुसलमान जैसी कहानियां।

(ख) सामान्य वातावरण अस्पताल (मरीज नम्बर सात, युवराज आदि) उजडे हुए अकाल पीडित गाव, (मुर्दो का गाव, एक पत्र, आदमी का गोश्त, एक बच्ची की कीमत) आदि का जिसमें चित्रण हुआ है।

रोमांटिक वातावरण :

"चांद और टूटे हुए लोग" जैसी कहानी का कथ्य प्रेम की सार्थकता या अर्थहीनता की चर्चा है जिसकी समुचित पृष्ठभूमि बनाने में इस कहानी के वातावरण का काफी सहयोग मिला है। आरम्भ में ही एक रोमांटिक "विजन" की पृष्ठभूमि बनाकर लेखक उसके आधार पर कहानी को विकसित करता चला है। दृष्टव्य है, रोमांटिकता के अनुकूल यह वातावरण–

"आसमान की अथाह नीलिमा में बड़े से बेले के फूल की तरह तैरता हुआ चांद ऊपर, नीचे दूर–दूर तक फैली हुई गंगा की ठंडी महीन सूखी बालू पर दो–तीन टूटे हुए लोग, चौदहवीं चांद की छाया में, शहर के कोलाहल से दूर, इस किनारे पर निकल आये थे, पीपों के पुल से होकर।"[18]

यथार्थ के भीषण वीभत्स रूप को अधिक प्रभावशाली करने के लिए प्रथमतः भारती रोमांटिक वातावरण की रचना करते हैं, जिसके कारण उसके उपरान्त कहानी में आने वाला नग्न यथार्थ अधिक शक्तिमान बनता है। "भूखा ईश्वर" जैसी अकाल पीड़ितों पर लिखी गई कहानी में यही हुआ है–

"एक था गांव। सदाबहार की हरियाली से जवान पुरवैया की गोद में अलसाई अधखुली पलकों से जिन्दगी का रंगीन सपना देखता हुआ। दोपहरी की सुदूर झुरमुटों से उठते हुए, चरवाहों की वंशी के नग्मों में उसकी छाती से टकरा जाते थे– आधी रात जब बेला फूलता था तो लाजवन्ती विरहनियों के कांपते दर्दीले स्वर न जाने कैसी मिठास घोल कर उड़ जाते थे।"[19]

अब इस वातावरण के साथ निम्न चित्र रखिए-दोनों के बीच की विरोध के कारण कहानी की थीम अधिक ही बलवती होती हुई लगती है-

"वह औरत उठी और वहा गई जहा अब भी कुत्ते पत्तल चाट रहे थे। उसने पास पडे एक टुकडे को उठाना चाहा। कुत्ता गुर्राया। वह रूकी जैसे आदमियों से निराश होकर अब जानवरों से दया याचना कर रही है। कुत्ते ने भी मुह फेर लिया उसने मौका पाकर वह टुकडा उठा लिया-कि एकाएक कुत्ता गुर्राकर उठा और बॉहे झकझोर डाली। मगर फिर भी उसने टुकडा न छोडा। कुत्ता हारकर पीछे हट गया।"[20]

विरोध संगीत का यह तत्व "कमल और मुर्दे" कहानी में आद्यन्त विद्यमान है। एक ओर सुवर्ण है, स्वर्ग है, गन्धर्वकन्याये हैं, देवबालाएं है, वैभव है तो दूसरी और भूख, गरीबी, अभाव, नंगापन, मौत की मरघट सी फैलती हुई बंजर जिन्दगी-

". ... . .. .आगे चलने पर उन्हें विस्तृत समतल मैदान दीख पड़े जहां धान के हरे खेत लहलहाए थे और उसमें नदियां ऐसी मालूम दे रही थी जैसे नीले आकाश पर टूटते हुए तारों की ज्योति रेखायें। यह तो बंग देश मालूम होता है। हा, यह कविता प्रधान देश हैं। यहां कवियों के गीत लहरों में घुलकर कमल में पराग की तरह महक उठते हैं। यहा नदियों के पास-पास नम भूमि में कमल खूब खिलते है।"

तथा-

"नदी किनारे कमल नहीं वरन् सफेद कफन में ढके हुए सैकडो मुर्दे जलाने के लिए रक्खे थे। नदी का पानी गन्दी राख, अधजली लकडियॉ और टूटी हड्डियों से ढंका हुआ था। एक-एक चिता पर 3-3 और 4-4 लाशें एक साथ जलाई जा रही थी।"[21]

यथार्थ वातावरण :

भारती का परवर्ती कथाकार कस्बाई कहानियों में अधिक रहा है, उन कहानियों में उसे पर्याप्त सफलता भी मिली है। इस सफलता में भारती द्वारा चित्रित गली मुहल्ले के वातावरण का महत्वपूर्ण योगदान है। 'कुलटा' एवं 'धुवां' कहानियां इन्हीं गली-मुहल्लों के

वातावरण को चित्रित करती है। 'कुलटा' कहानी का वातावरण व्यजना के माध्यम से चित्रित है, तो 'धुवां' में प्रत्यक्ष रूप से यह चित्रण विद्यमान है।

सामान्य वातावरणः

इस सग्रह की अधिकतर कहानियों मे निम्न वर्ग या निम्न मध्य वर्ग की कहानिया है इसलिए निम्न वर्ग के जीवन का यथार्थ चित्रण लेखक का मुख्य काम्य रहा है। ये कहानियाँ इस वर्ग के घरेलू वातावरण, अस्पताल, रास्ते, श्मशान, ढाबे, खेती, होटल आदि का चित्रण करती हैं। ये चित्रण पात्रों के व्यक्तित्व एवं मानसिकता को उद्घाटित करते हैं, जैसे-

"कार्तिक बीत गया था, अगहन की शुरूआत थी। बेला ने सुबह थोडी सी सूखी लकडी इकट्ठी की थी। उसे लाकर सुलगा दिया और बैठ तापने लगी। खेतों से सर्द हवा के झोंके आ रहे थे। सारे गांव का सन्नाटा था। कहीं-कहीं आग के चारो ओर बैठे हुए किसान ताप रहे थे और दूर पर किसी कुए के चरखे की चरमराहट की आवाज आ रही थी।

अकस्मात सन्नाटा तोडकर गांव के कुत्ते भौक उठे। उसने सोचा टीका लगाने वाला डाक्टर होगा- बीमारी। बीमारी उसका दिल दहल गया जाने चन्दन कब आयेगा।[22]"

अस्पताल का वातावरण, वहां की दुर्व्यवस्था का चित्रण कितना सही लगता है- "मर्ज की ठीक-ठीक जांच न हो पाने से उसे बरामदे में एक खाट दी गयी थी जहा पखा नहीं था, मच्छड भी बहुत थे, कोने पर नाबदान था, वहां नर्से आकर पुरानी दवाइयां फेंका करती थी, भंगी कमरे में ही झाडू मारकर लौट जाता था, और शाम के वक्त धूप भी ऐसी पड़ती थी कि टाट का पर्दा गिरा दो तो घुटन से पसीना छूटने लगे और पर्दा उठे तो धूप से।"[23]

भारती की इन कहानियों का वातावरण भावानुयामी है। "मुर्दो का गांव" जैसी कहानी वातावरण निर्माण की भारती की क्षमता का उत्तम उदाहरण है। इस कहानी का मूल भाव है- मनुष्य भूख के कारण किस हद तक भूखा और नंगा, विवश और असहाय बनता है। इस भाव को पुष्ट करने वाला यह वातावरण देखिए-

"उस गाव के बारे में अजीब अफवाहें फैली थी। लोग कहते थे वहां दिन में भी मौत का एक काला साया रोशनी पर पडता रहता हैं। शाम होते ही कब्रे जमुहाइयां लेने लगती है और भूखे कंगाल अधेरे का लबादा ओढकर, पगडडियों और खेतों की मेडो पर खाने की तलाश में घूमा करते हैं। उनके ढीले पजरो की खडखडाहट सुनकर लाशों के चारों ओर चिल्लाने वाले घिनौने सियार सहम कर चुप हो जाते हैं और गोश्तखोर गिद्धों बच्चे डैनों में सिर ढांप कर सूखे ठूठो की कोटरों मे छिप जाते है।[24]"

बंगाल का यही भूखा अकाल "हिन्दू या मुसलमान" कहानी मे भी व्याप्त है– "हिन्दोस्तान जैसे खराब आबोहवा के देश में जहां आये दिन एक बीमारी चल पडती है, यह भी एक नई बीमारी चल निकली थी। झुंड के झुंड गावों से चल पडते और चलते-चलते बिना दांयी ओर बांयी पटरी का ख्याल किए गिर पडते और फिर उठने का नाम न लेते।"[25]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि वातावरण चित्रण भारती की इन कहानियों में यथार्थ और काव्यात्मक बन पडा है। बंगाल के अकाल एव निम्न वर्ग के जीवन की कहानियां यथार्थ की वीभत्सता और रोमांटिकता का वातावरण काव्यात्मकता से युक्त है।

भाषा एवं शैलीः

'चांद और टूटे हुए लोग' सग्रह की कहानियों में भाषा एवं शैली की दृष्टि से विविधता है। निवेदन के ढंग के अनुसार इन कहानियों का विभाजन इस प्रकार है–

1. विवरणात्मक प्रणाली · हरिनाकुस और उसका बेटा, मरीज नम्बर सात, युवराज, अगला अवतार, चांद और टूटे हुए लोग, एक बच्ची की कीमत, आदमी का गोश्त आदि।
2. पत्रात्मक शैली : एक पत्र।
3. आत्मनिवेदन शैली : धुवां, कुलटा आदि।
4 रूपात्मक शैली भूखा ईश्वर, कमल और मुर्दे, आदमी का गोश्त।

लेकिन कोरे कलावादियों में मिलने वाला शिल्प की नूतनता का आग्रह भारती के कहानीकार में नहीं हैं। भाषा-शैली की दृष्टि से भारती के कथाकार की प्रकृति अत्यन्त

सहज, सरल एव काव्यात्मक है। इसीलिए उनकी भाषा में बोलचाल की भापा की सजीवता एवं स्वाभाविकता, छोटे सरल वाक्य अंग्रेजी, उर्दू के शब्द मिलते हैं। मुहावरे भी कम नहीं मिलते हैं। बिम्बों के माध्यम से अपनी बात को भारती इन कहानियों में स्पष्ट से स्पष्टतर करते हैं। भाषा का पूरा अधिकार होने के कारण लेखक अपने कथा प्रवाह को भावानुकूल गति से बढाता है। गवार पात्रों की भाषा गवारू है, सुशिक्षित एव मध्यवर्गीय पात्रों की साहित्यिक मजी हुई, अर्थात्, स्वाभाविकता, सहजता, प्रसाद एव काव्यात्मकता भारती की कथा भाषा में विशेष रूप से पाये जाते हैं। पात्रों की मानसिकता के अनुरूप बदलती भाषा इन कहानियों में पायी जाती है–

निम्न वर्ग में रहने वाले एक जल्लाद की भाषा– "देख औरत जात होकर जबान मत लडाया कर। अकिल न सऊर चली है सास्तारथ करने। अरे राजा लोग सूअर होते हैं तो सूअर क्यों नहीं राजा हो सकते। मेरा तो राजा बेटा है।"[26]

एक ढोंगी साधु की नकली भाषा "हम लोग शोधक है। संदेश देते हैं। जो सोया उसे जगाते हैं। संसार माया के वशीभूत होकर भोग विलाश करता है, पापसंचय करता है, सन्धि विग्रह करता है युद्ध करता है। पर संसार को यह नहीं मालूम कि भगवान का अवतार हो गया।"[27]

मध्यवर्गीय वुद्धिजीवी की मानसिक संकीर्णता की अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में मिलती है– "और जानते हो। हँसी–खुशी भरे दिन के बाद जब मैं सोता हूँ तो अक्सर आजकल क्या सपना देखता हूँ; देखता हूँ एक अथाह समुद्र है जिसके किनारे एक ऊँची मीनार है। जिसके एक झरोखे में से सहसा मेरा पैर फिसल गया है और मैं गिर रहा हूँ। नीचे अथाह खूंखार समुद्र है और मैं गिरता जाता हूँ...... . . . . ..।"[28]

भारती कवि हैं, और उनके कवित्त्व की छाप उनकी कहानियों पर स्पष्ट रूप से ही पायी जाती है। छोटे–छोटे बिम्बों के माध्यम से कहानी के आधारभूत तथ्य को स्पष्ट करना भारती की प्रधान विशेषता है। "हरिनाकुस और उसका बेटा" कहानी के बच्चे का सूअर से प्यार करना एवं चूहों को मारना, मरे हुए चूहों के साथ खेलना एक गहरा प्रभाव मन पर

छोड जाता है।

आदर्शवादी, भावुक व्यक्ति अपने आस-पास आदर्शो एव भावना का जाल अपने आप बुनता जाता है, जिससे छुट्कारा पाना असम्भव सा हो जाता है। इस बात को स्पष्ट करने में यह बिम्ब कितना उपयोगी है- "कभी आपने मक्खी को फंसाते हुए मकडी को देखा है। जहॉ मक्खी के पंख उलझे और वह तडफडाई कि मकडी दौड़ पडती है। और दॉएँ-बॉएँ, ऊपर नीचे, इस कोने से उस कोने तक बिजली की तेजी से दौडकर इतने तार विन देती है कि फिर मक्खी के लिए कोई विस्तार नहीं रह जाता। ठीक उसी तरह नीचे जमीन पर ये लोग चलते रहे, जिन्दगी में बढते रहे, ब्याह, शादी, रोजगार, प्यार, सभी मे वे डूबते उतराते रहे और ऊपर चांद एक बहुत बडे चांदी के जहरीले मकडे की तरह आसमान के इस छोर से उस छोर तक दौड-दौड कर इनकी जिन्दगी को एक अजब से चमकीले जाले में कसता रहा।[29]"

बिम्बात्मकता की यह प्रवृत्ति इस संग्रह के दूसरे खण्ड की कहानियों में विशेष रूप से पाई जाती है। 'भूखा ईश्वर', 'मुर्दो का गांव', 'एक बच्ची की कीमत', 'आदमी का गोश्त', 'कफन चोर', आदि कहानियों में बिम्बों की भरमार है। कुछ बिम्ब देखिए- "आदमीनुमा हड्डी कें ढॉचे क्यों कीचड में पडे रहते है।"[30]

' .. .. भूख ने इस गांव के चारो' ओर मौत के बीज बोये थे और आज सडी लाशों की फसल लहलहा रही है। कुत्ते, गिद्ध, सियार और कौवे उस फसल का पूरा फायदा उठा रहे थे।[31]

"वह जानवर भी नहीं था, भूत भी नहीं-एक औरतनुमा शक्ल जिसकी खाल जगह-जगह पर लट्काई थी। सर के बाल झड गये थे, निचला होठ झूल गया था और दॉत कुत्तों की तरह नुकीले थे। मालूम होता था जैसे आदमी के ढांचे छिपकली का चमड़ा मढ़ दिया गया हो।"[32]

"नदी के किनारे कमल नहीं थे वरन सफेद में ढ्के हुए सैकडो मुर्दे जलाये जाने के लिए रक्खे थे। नदी का पानी गन्दी राख, अधजली लकड़ियॉ और टूटी हड्डियों से ढंका

हुआ था। एक-एक चिता पर 3-3 और 4-4 लाशे एक साथ जलाई जा रही थी।"[33]

अपने उपन्यासो मे "पूजा" खण्ड की कहानियो मे, कविताओं तथा अन्य साहित्य में भारती की भाषा, मांसल रही, वासना का रूप अधिकाधिक उद्घाटित करने में लगी रही, किन्तु "चाँद और टूटे हुए लोग" और "भूखा ईश्वर" की कहानिया अकाल पीड़ितो, भूखों एवं अर्थाभाव के कारण जर्जर बने मनुष्यों की कहानियाँ है। लेखक मात्र इनकी विशेषताओं को ही प्रकाशित करना चाहता है, उनकी मजबूरी का मजाक उडाता है। "बीमारिया" कहानी का उदाहरण हम ले सकते हैं, जहा नायिका बेला अपने पति के शव का अंतिम सस्कार करने के लिए जमींदार के सामने हाथ फैलाती है- सहायता के लिए रूपये के लिए। जमींदार ने मौका गंवाया नहीं है, बेला की मजबूरी का फायदा उठाया है। सामाजिक बलात्कार का यह दृश्यलेखक चाहने पर बहुत विस्तार के साथ सालंकार भाषा में नमक-मिर्च लगाकर लिख सकता था, किन्तु भारती ने ऐसा नहीं किया है। बड़ी तेजी से वे इस प्रसग का केवल एक वाक्य में संकेत दिया है-

"उसके बाल पथरा गये थे, उसके बाद वह पत्थर की तरह खडी रही, पत्थर की तरह चारपाई पर गिर गई, पत्थर की तरह चूर-चूर हो गई।"[34]

प्रभावात्मकता की दृष्टि से नया विन्यास "पूजा" खण्ड की तरह इन खण्डो में भी मिलता है - "गाँव के बाहर था एक छतनार कदम का पेड। उसके नीचे था एक अनगढ़ पत्थर का ढ़ोका। वह था उस गांव का ईश्वर।"[35]

इन खण्डों की भाषा बोलचाल की है, अत अंग्रेजी वाक्यांश -नोट, इट इज ड्रप्सी, डिअर राबर्ट, रजिस्टर, स्ट्रेजर, इंजिन, वार्ड, नर्स डाक्टर, पेट, आदि तथा उर्दू के तोहमत, मुबारक, ख्वाहिश, शक्ल, इश्क, कम्बख्त, इन्तजाम, दर्दनाक पोशाक, बदजात, आदि प्रचलित शब्द भारती ने इन कहानियों में रखे हैं। कुल मिलाकर भारती की इस कथा संग्रह में प्रयुक्त भाषा यथार्थ के वहन में पूर्णत· सक्षम है।

उद्देश्यः

"चाद और टूटे हुए लोग" के पहले खण्ड में विषय की अनेकता के बावजूद भारती का प्रगतिशील स्वर दिखायी पडता हैं। वे पहली ही कहानी में गाधीवाद को अनुपयोगी करार देते है।[36]

"युवराज" कहानी गाधीवादियो पर करारा व्यंग करती है। "भूखा ईश्वर" क्रान्तिकारियो के नेता का प्रतीक है जिसे शासकों एक उच्च वर्ग की नीति के सामने टूट जाना पडता है। गरीबों का नेता बनकर ईश्वर उन्हें ललकारता है- "नंगो, भूखों! तुम नहीं जानते, तुम्हारी पसलियों मे एक ताकत छिपी हुई है जो मौत से ज्यादा जहरीली और चांदनी से ज्यादा सुधामयी है। . .. जागो! मैं विद्रोही, भूखा ईश्वर तुम्हें मानव बन जगाता हूँ।"[37]

"चांद और टूटे हुए लोग" एव "भूखा ईश्वर खण्ड की कहानियों का लेखक प्रथमतः गरीबी एवं अभाव के चक्रव्यूह से जूझते जूझकर टूटते मनुष्य की सही-सही तसवीर प्रस्तुत करना चाहता है। इस मनुष्य का अपना घर नहीं, जमीन नहीं, इसलिए ये अपने बच्चों को बेचने को विवश होते हैं, कफन चुराते हैं, भूत बन जाते हैं, फिर भी इनके अन्दर का मनुष्य मरता नहीं, बार-बार मरकर भी मरता नहीं, क्योंकि उस मनुष्य की प्रेम में आस्था है, मूल्यों के प्रति अटूट विश्वास है।" लेखक की इन सभी कहानियों की पृष्ठभूमि का मुख्य आधार यही रहा है।

"भूखा ईश्वर" आद्यन्त अन्नवादी कहानी वाला खण्ड है, क्योंकि भूख के शिकार पात्र ही इनमें प्रायः मिलते है और स्वयं भारती ने भी "मुर्दो का गाव" की भूमिका में इस बात पर बार-बार जोर दिया है- "अन्न जीवन की प्रथम आवश्यकता है, अन्न संस्कृति की प्रथम आवश्यकता है, अन्न काव्य की प्रथम आवश्यकता है। और इस अन्नहींनता के भीषण रूप को बंगाल के अकाल ने उधाडकर दिखाया था, जिनका यथार्थ अंकन करना इन नौ कहानियों का उद्देश्य रहा है।"[38]

"चांद और टूटे लोग" खण्ड की कहानियां भी प्रायः (हरिनाकुस और उसका बेटा, मरीज नम्बर सात, धुवां) निम्न-दलित वर्ग या मध्य वर्ग की मानसिकता को उजागर करने

की दृष्टि से लिखी गयी हैं। मनुष्य कितने-कितने नकाब ओढ़कर अपने सामाजिक परिवेश में विचरता है (अगला अवतार, युवराज) दलित पीडित वेश्याओ के साथ हम सभ्य कहलाने वाले मध्यवर्गीय लोग कैसा पाशवी व्यवहार करते हैं, और पशु की तरह जीने के लिए मजबूर होने पर भी "हरिनाकुस" अपने बेटे को पढाना ही चाहता है, "कुलटा" कुचली पीसी जाने के बावजूद हृदय में बहते वात्सल्य के झरने को रोक पाती नहीं। मनुष्य जाने अनजाने किसी गलत व्यक्ति से प्रेम कर बैठता है, शादी उस व्यक्ति की किसी और के साथ होती है, दोनों अपनी अपनी जिन्दगी, अपनी अपनी व्यस्तताओं में डूब जाते हैं किन्तु गलत व्यक्ति का प्रथम प्यार भूले नहीं भूलता। "चाद और टूटे हुए लोग" कहानी के माध्यम से लेखक ने यही बात कही है।

बन्द गली का आखिरी मकान : (1969)

भारती के 1969 में प्रकाशित इस कहानी सग्रह में कुल चार कहानियां संकलित हैं। इस संग्रह की प्रत्येक कहानी लम्बे अन्तराल को पार कर प्रकाशित हुई हैं। प्रथम कहानी "गुल की बन्नो" 1955 में लिखी गयी और अन्तिम "बन्द गली का आखिरी मकान" 1969 में अर्थात् भारती को इन चार कहानियों के सृजन के लिए 14 वर्षो की अवधि लगी। स्वाभाविक ही था, "चांद और टूटे हुए लोग" की अपेक्षा इस संग्रह की कहानियां अधिक विख्यात रही।

इलाहाबादी गली-मुहल्लों के यथार्थ माहौल का इन सभी कहानियों में अंकन हुआ है। इन मध्यवर्गीय गलियों के जीवन का मानसिक, आर्थिक, सामाजिक आदि स्तरों का रेशा-रेशा उजागर एवं जीवित हो उठा है।

1. गुल की बन्नोः

इस संग्रह की पहली कहानी है "गुल की बन्नो" जिसमें गुल नामक पच्चीस छब्बीस साल की औरत की दर्दनाक कहानी कही गयी है। इस गुल की बन्नो ने घेघा बुआ के चौतरे पर तरकारियों की दूकान खोली थी। विकलांग, रोगी और पागल मिरवा और मटकी को एक मात्र गुलकी अपने पास बैठने देती थी। गली के और बच्चे गुलकी को और परेशान

करते थे। गुलकी अपने पापों द्वारा उपेक्षित थी इसलिए वह इस गली में आ बसी थी। गली में उसके बारे में तरह-तरह की बाते चलती थीं। घेघा बुआ ने तरस खाकर दुकान खोलने के लिए उसे जगह दी, लेकिन गली के लडके उसके साथ पशु जैसा व्यवहार करते ही रहे। गुलकी का वात्सल्य मटकी और मिरवा के प्रति बार-बार उभर आता था। वह उन दोनों को कभी पैसे देती, कभी गाने के लिए कहती तो कभी खाने के लिए भी कुछ देती। घेघा बुआ इस कारण गुलकी को फटकारती थी। इसी कारण गुलकी बुआ से झगड बैठी। बुआ ने उसकी दुकान तहस नहस कर डाली। गुलकी रोती रही। गुलकी सत्ती के आश्रम में रहकर मांग-माग कर गुजारा करने लगी। इसी समय गुलकी के जीवन में एक परिवर्तन हुआ। उसके पति ने उसे अपने पास बुलाया था। बुआ को भी खुशी हुई लेकिन गुलकी की सहेली सत्ती जानती थी की गुलकी का वहां जाना कोई सुख की बात नहीं, इसलिए उसने गुलकी के पति के यहां जाने की बात का तगडा विरोध किया। किन्तु सामने पति को देखकर गुलकी का सतीत्व जाग उठा। हर शर्त पर वह अपने पति के साथ जाने के लिए तैयार हो गयी। गुलकी को अपनी पति के घर जाने पर सौत की सेवा में पूर्णत लगना था।

और गली वालों ने गुलकी को अपने बेटी और बहन मानकर उसे दुलार के साथ उसके ससुराल विदा किया। गुलकी पति के घर चली गई।

"गुलकी बन्नो" कहानी एक ओर मुनष्य के देवत्त्व का प्रकाश है, तो दूसरी ओर उसके पशुत्व का निर्मम उद्घाटन। गुलकी के माध्यम से भारती इस बात को कलात्मकता के साथ प्रस्तुत कर पाये हैं।

2. सावित्री नम्बर दोः

शरीर और मन से बीमार सावित्री की यह कहानी मिथक परंम्परा के महत्वपूर्ण चरित्र सत्यवान और सावित्री पर अंशत· आधारित है। कहानी की शुरुआत भी बटसावित्री पूजा के प्रसंग से की गई है। बीमारी और एकाकीपन के अविरल अहसास के कारण सावित्री अधिकाधिक कुंठित, भावुक एवं विक्षिप्त बनती जाती है। एक खाट पर लेटे हुए खिड़की में से जीवन की गतिशीलता, उत्साह सुंदरता और आनन्द के मूर्त रूप देखती है

और अपने बारे में सोचते ही उसे अपनी जिन्दगी निरर्थक बोझ लगती है।

इस सावित्री का यह दावा नहीं है कि वह कभी सुन्दर या निष्ठामयी थी, फिर भी पति ने अपने प्रेम की गगरी उस पर पूर्णत उडेल दी थी सावित्री अपने सौभाग्य पर रीझ गई थी, गर्व करती थी। एक दिन उसने पति का अपमान किया। अपना सयम खोकर मन में जो आये, कहने लगी। मा ने उस समय सावित्री का ही समर्थन किया। उस दिन की शाम वह सज-धज कर बैठी। पति का इन्तजार करती रही, लेकिन दफ्तर से लौटकर आने पर पति ने उसकी ओर ध्यान तक नहीं दिया।

सावित्री के पीडित अहं ने फिर पागलपन का रूप अपनाया। पति और पति की बहन के सम्बन्ध में भद्दी बाते कही। पति तडपकर चीख उठे। सावित्री का जख्म भर आया।

आगे चलकर सावित्री अपनी मां और बहन से भी झगडा करने लगी। मां ने सावित्री को फटकारा। इसी बीच सावित्री को सम्हालने सहलाने वाला एक मात्र सम्बल था सावित्री के पिताजी का चपरासी लड़का। खाट पर सावित्री आंखे मूंदे पडी रहती थी और राजाराम उसके कभी बांहे, कभी कन्धे, कभी हथेलियां, कभी-कभी सर दबा देता। इस बीमारी के बीच सावित्री ने राजाराम को छोडकर किसी और को चाहा नहीं। मुहल्ले वाले यह बात जान गये और उस खिडकी से गुजरते हुए ताने मारने लगे। राजाराम का आना फिर बन्द हुआ। गली में राजाराम और सावित्री को लेकर बात होने लगती तो सावित्री का पति दोनों ओर से सफाई देता। पति के मत में राजाराम सत्शील लड़का था और सावित्री असली सावित्री थी, सती थी। लेकिन सावित्री अपने पति पर खुला-खुला आरोप कर गई कि उसकी बहन सित्तो के लिए वह सावित्री के पास रहने का बहाना करता है। सावित्री बीमारी का हालचाल पूछने के बहाने सित्तो पर डोरे डालता है। पति ने यह घाव भी सहा। फिर एक दिन पति के खाने की थाली सावित्री ने खिसका दी और खाना खाने से रोका। सित्तों ने फिर विद्रोह का रूख लिया और सावित्री के सामने सावित्री के पति को खाने का हुक्म दिया। सावित्री के पति ने बात मानी। इस घटना के बाद सावित्री की चख-चख बन्द हो गई। सित्तों सावित्री का आवश्यक ध्यान रखने लगी।

(3) यह मेरे लिये नहीं:

इस कहानी का रिसर्च स्कालर दीनू इसी गली का एक होनहार, परिश्रमी, एवं संघर्षशील युवक है। दीनू गरीब है इसलिए चाचा के आश्रम में ट्यूशन कर पढाई जारी रखता है। दूसरी ओर दीनू की मा दीनू के, मन को समझती नहीं, समझना चाहती थी नहीं और पढाई के लिए दीनू द्वारा इकट्ठा की गई पाई-पाई पुराने घर को दुरुस्त करवाने में बरबाद कर देती है। दीनू दुबला-पतला लगे तो उसे पालने वाले डाक्टर चाचा को कोसती जाती है। दीनू की माँ दीनू के चाचा-चाची से जलती है कि उन्होंने उसके बेटो को अपने वश में कर लिया है। दीनू काम और पढाई कर लौट आता तो माँ अपनी चख-चख आरम्भ कर देती और कर्ज के बोझ को उतारने, शादी करने की सलाह देती। दीनू ने एक दिन मां को विद्रोह के स्वर में सुनाया कि लेन-देन और रिश्तों में उसे कुछ लेना-देना नहीं है।

संघर्ष और कडुवाहट के इस वातावरण में दीनू आस्था की पगडंडियों पर भी चला। ये पगडंडियां थी परना दीदी और सांजी। चाचा और चाची दीनू के मन को समझते थे, सम्बल देते थे। सांजी ब्याह के उपरान्त वर्ष भर रहकर वापस लौट आयी और दीनू को समझा रही कि दीनू से बोल सकेगी, पति ने मना किया है, तो दीनू की आस्था की चट्टान ध्वस्त हो गयी। सांजी के चले जाने पर दीनू के जीवन में स्नेह और अपनेपन की आस्था की ज्योति फैलाने वाला एक और दिया जला-अपर्णा का। चाची और चाचा का प्रेम दीनू के लिए विश्वास की चीज थी संवारने का आधार था। सुन्दरता, शील, मधुरता और प्रेम की मूर्ति अपर्णा दीदी के प्रति भी दीनू पूर्णत· समर्पित है। शादी की बात चलने पर दीनू की माँ ने दीनू को समझाया कि उसे विवाह कर लेना चाहिए, लोग उसका नाम सांजी और परना के साथ जोडते है। दीनू की आत्मा पर आस्था पर, मन की देवी पर जैसे कोई भूलता गया। इस घटना के बाद दीनू की मां ने दीनू के साथ अबोला किया। दीनू घर छोड होस्टल में रहने के लिए गया। दीनू और परना के सम्बन्ध में गली में अफवाहें फैली थी। परना को यह जानकर बड़ा दुःख हुआ।

कुछ दिनों बाद चाचा ने मनवा-मनवा कर दीनू को घर वापस बुलाया। दीनू के आने

पर माँ का स्वभाव बदला। वह गुमसुम सी रहने लगी। मकान की मरम्मत करने के प्रश्न की जगह वह उस मकान को बेचने की सोचने लगी। शासक की अपेक्षा शासित के रूप में रहने लगी। बेटा जो कहे, दीनू की मा स्वीकारती रही।

गुटी के जन्मदिन के समय पर पूजा प्रसग के बाद घर बेचने का सवाल उठा तो दीनू ने घर न बेचने का अपना निर्णय घोषित किया। अर्पणा वह मुहल्ला छोडकर चन्दनगर गई।

दीनू के मन को यह अहसास सालता रहा कि वह किसी के लिए कुछ नहीं कर पाया। इस कहानी के कथ्य को इस प्रकार रख सकते है- भारती ने यहाँ समाज को और व्यक्ति, रोमांस और उत्तरदायित्व, माँ और बेटा, पुरूष और स्त्री, इन भिन्न इकाइयों के अंतर विरोधों को सही-सही दर्शाते हुए इनको एकत्र बांधने वाली एक सीमा रेखा खीची है। वे यहां न व्यक्तिवादिता के समर्थक, हैं, न समाजवादियों की नारेबाजी उन पर हावी हुई है।

4. बन्द गली का आखिरी मकानः

यह भारती की और इस कहानी-संग्रह की आखिरी कहानी है जिसमे इलाहाबाद के एक मुहल्ले के घर का यथार्थ सजीव रूप में अंकित किया है। लगभग-55 पृष्ठों में लिखी भारती की यह लम्बी सबसे कहानी है।

कहानी का प्रधान चरित्र मुंशी है, जिन्होने "एक इंच धरती-धन इधर से उधर नहीं किया, पान तमाखू के लिए गरीब से घूस नहीं ली जब से होश सम्भाला मुहल्ले में आँख नीची किये हुए आये, आंख नीची किये हुए गए।[39]"

मुन्शी जी के दो लडके राधोराम और हरिराम थे। राधोराम .समझदार, परिश्रमी होनहार है तो हरीराम कम अक्ल, अवारा, मुंहफट। मुन्शी के घर में बिरजा नाम की आश्रित औरत है जो मुन्शी की के लिए पत्नी से कम नहीं। जीवन के हर संघर्ष, हर संकट में वह मुन्शी का साथ देती है। हरिया के झक्की स्वभाव पर मुन्शी और बिरजा दोनों असंतुष्ट हैं। मुन्शी राधो से हिन्दी गीत पढ़वाते और बिरजा तथा मुन्शी दोनों मिलकर ध्यान

से सुनते हैं। इज्जत और अमीरी का दम्भ करने वाली अपनी बेटी समान बहन को इन दोनो ने अपनी गरीबी से, गरीब जिन्दगी से दूर रखा है। बिरजा की उम्र बुढापे की थी, फिर भी उसके चरित्र को लेकर मुहल्ले में गन्दी अफवायें फैलती रहती थी। मुन्शी इस बात को सुनकर टाल जाते। मुन्शी की सेवा भी बिरजा मन लगाकर करती रहती। एक दिन बिटौनी (मुन्शी जी की छोटी बहन) अपनी कार में बैठकर मिलने आई और अपने वैभव के दर्प को दिखाकर बिरजा को अपमानित भी किया। मुन्शी जी यह चोट चुपके से सह गये।

राधोराम की नौकरी लगी और उसके शादी-ब्याह की बात चली लेकिन वरिच्छा में मुन्शी शामिल कैसे होंगे, इस सवाल की चर्चा गली वालों में होने लगी। राधोराम बिरजा का सगा लडका था। मुन्शी का नहीं। बिरजा यह सुनकर मुन्शी जी के पैरो पर पडकर रोने लगी। मुन्शी को इस घटना से गहरा सदमा पहुँचा। राधोराम को नौकरी लगने की खुशी पर पानी फिर गया। मुन्शी जी चुप रहने लगे। बिरजा का मन कचोटने ल गा। मुंशी राधोराम और बिरजा से अपने आप को अलगाने की कोशिश कर रहे थे। गली में यह भी खबर प्रसारित हुई कि बिरजा मुन्शी जी को छोडकर राधोराम के साथ अलग रहने जा रही है। इससे राधोराम की शादी में बाधा न आती थी। यह बात सुनकर बिरजा का काटो तो खून नहीं-सा हाल बन गया। मुन्शी जी इस बात को जान गये। उनके मन में इस बात के कारण एक तनाव आ गया। वे बद्री केदार की यात्रा पर निकलने की बात सोचने लगे, जिससे राधोराम के विवाह में कोई बाधा न आये। बिरजा भी गली वालों की बाते सुनकर अपना मानसिक संतुलन खो बैठी थी। बिरजा ने गली-मुहल्ले वालों में घोषित किया कि सगाई-बरिच्छा मुन्शी जी के ही हाथों होगी और यदि किसी ने तगड़ झगड किया तो वह आत्महत्या कर लेगी। धमकी सुनकर और लोग दब गये किन्तु मुन्शी जी ने यह बात स्वीकार नहीं की। दौडकर बिरजा मुन्शी जी पर बरस पडी।

फिर मुंशी बद्री केदार वगैरह गये नहीं, वहीं रहे, मगर बीमार बनकर रहे। उन्हें लगने लगा मृत्यु उनके इर्द-गिर्द चक्कर काट रही है। बिरजा राधोराम के व्याह की तैयारी में व्यस्त रहने लगी। मुंशी जी का इलाज करने के लिए वैद्य बुलाये जाने लगे। व्यस्तता के इस माहौल में बिरजा अकेली ही सब कुछ देख संभाल रही थी, बिटौनी (मुन्शी जी की

छोटी बहन) हाथ बंटाने ही नहीं, देखने तक को वहा नहीं आयी कि शादी व्याह की तैयारी कहां तक हुई है या मुन्शी की हालत कैसी है। मुन्शी अपनी असमर्थता, विवशता और बीमारी के अहसास के नीचे दबे अकेलेपन के साथ खाट पर पडे रहे। इस कारण वे बिरजा पर और भी चिढ़ने लगे छोटी–छोटी बात को लेकर चीखने लगे। मुन्शी पर बिसन मामा ने अहसान लादकर जाल बिछाने की कोशिश की तो इसाक मियां ने विसन मामा को खून की धमकी दी। इसका परिणाम यह निकला कि इन बातो के लिए जिम्मेदार मुन्शी ही ठहराये गये। शादी की तैयारिया चलती रही। हरीराम की हरकते भी जोरों पर थी। हरीराम के लिए मेले में घूमना, गाना और सारंगी बजाने के सिवाय दूसरा काम था ही नहीं। मुन्शी अधिक ही अकेले रहने लगे। मानसिक असंतुलन में वह कभी–कभी हरीराम का भी समर्थन देने लगे। बिटौनी भी शादी में हाजिर हुई।

मुन्शी की आंखों में मृत्यु अब नंगी नाचने लगी। उनका स्वास्थ्य अब और गिरा। वैद्यजी ने बताया कि शक्ति की मारक दृष्टि किसी न किसी को उठाकर ही छोड़ेगी। सब सोचने लगे कि अब मुन्शी आखिरी क्षण जी रहे हैं। लेकिन राधोराम के बाप की जिन्दगी ही शनि को अधिक पसन्द आयी। बिरजा ने विवाह जारी रखने का निर्णय किया। पूरा घर विवाह की वरिच्छा के लिए चल पडा। पीछे बचे मुन्शी जी और उनका बेटा हरीराम। उसी रात मुन्शी जी की मृत्यु हो गयी।

कहानी कला के मानदंडो के आधार पर भारती के इस सग्रह की चारो कहानियों का विश्लेषण इस प्रकार हैं–

शीर्षकः

इन चारों कहानियों के शीर्षकों की अपनी–अपनी अलग विशेषता है। प्रथम कहानी “गुलकी बन्नो” गुलकी नाम की पति द्वारा छोड़ी गयी एक कुरूप, गरीब, स्त्री है, जिसके नामपर यह कहानी का शीर्षक रखा गया है।

दूसरी कहानी “सावित्री नम्बर दो” में एक मरीज विवाहिता युवती की कहानी कही गयी है, किन्तु लेखक ने कहानी के प्रस्तुतीकरण में ‘सावित्री सत्यवान’, के मिथक को

सामने रखा है, जिसके कारण कहानी का स्वर अधिक स्पष्ट और प्रखर बनता है। इस दृष्टि से, "सावित्री नम्बर दो" शीर्षक बहुत ही अर्थवान है।

"यह मेरे लिए नहीं" कहानी का शीर्षक भी मिथक के मुखौटे का ही है। इसमें एक होनहार गरीब प्रतिभाशाली रिसर्च स्कालर के मानसिक अन्तर्द्वन्द का चित्रण है। नायक दीनू के मन में बार-बार उभरने वाला उत्पात "यह मेरे लिए नहीं" शीर्षक भली भाँति ध्वनित होता है।

गली-मुहल्ले के जीवन का यथार्थ और उसमें भरा वातावरण निर्माण करने में, कहानी के मूल संवेद्य की सूचना देनेमें "बन्द गली का आखिरी मकान" पूर्णतः समर्थ है।

कहानी कला में शीर्षक का महत्व सर्वाधिक होता है और भारती ने अपनी इन चारों कहानियों में कहानी की इस मूलभूत आवश्यकता को सफलता से पूरा किया है।

कथावस्तुः

भारती का काम्य इन कहानियों में किसी पात्र विशेष के जीवन की मानसिक गुत्थियों स्थितियों को स्पष्ट करना रहा है, कहानी मात्र कहकर पाठकों को चौका देना नहीं, फिर भी इन कहानियों का कथानक कौतुहल एव काव्यमयता को अपने साथ लेकर चलते हैं। इन कहानियों का आरम्भ प्राय किसी प्रसग के साथ, नाट्कीयता को लेकर हुआ है, "ऐ मेरे कलमुहे।" अकस्मात् घेघा बुआ ने कूड़ा फेंकने के लिए दरवाजा खोला और चौतरे पर बैठ मिरवा को गाते हुए देख कर कहा, "तोरे पेट में फोनोगिराफ उलियान बा... का, जौन भिनसार भवा कि तान तौडे लगा; राम जानै, रात के कैसन एकरा दीदा लागत है। मारे डर के कही घेघा बुआ सारा कूड़ा उसी के सर पर न फेंक दे, मिरवा थोडा खिसक गया और ज्यों ही घेघा बुआ अन्दर गयी कि फिर चौतरे की सीढी पर बैठ, पैर झुलाते हुए उसे उलटा-सुलटा गाना शुरू किया, "तुमे बछ याद कलते, अम छनम तेली कसम ."[40]

'सावित्री नम्बर दो' कहानी का आरम्भिक वाक्य ही कहानी की नाट्यमयता को सूचित कराता है- "हर बार पूछना चाहा है, मगर बार-बार चुप रही है।"[41]

"यह मेरे लिए नहीं" और "बन्द गली का आखिरी मकान" इन कहानियों के आरम्भ में इतिवृतात्मकता दिखाई देती है, फिर भी आरम्भ और मध्य के वीच वाले कथाश पर्याप्त नाट्यपूर्ण हैं।

"गुलकी बन्नों" कहानी का अन्त बडा कलात्मक एव व्यगपूर्ण है। गुलकी के गली छोड जाने के प्रसंग पर मुहल्ला का मुहल्ला उसे विदा देने आता है, किन्तु इन सवसे महत्वपूर्ण बिदा देने वाली है झबरी कुतिया। मात्र एक वाक्य में लेखक कितना कुछ कह जाता है– "सिर्फ झबरी सडक तक इक्के के साथ गई और फिर लौट आयी।"[42]

कथावस्तु के विकास के परम्परागत–प्रारम्भ, आरोह, चरम, और अन्त बिन्दुओं को रेखांकित करने वाली कहानी है– "सावित्री नम्बर दो" सावित्री के मनः विक्षेप की गति के साथ ही ये कथावस्थाएँ भी बदलती हैं।

"सावित्री नम्बर दो" कहानी के कथातत्व का प्रथम बिन्दु आरोह है, सावित्री के मन में उठा प्रश्न है, रोग और जर्जरता के कारण मन पर छाई हुई थकान, उदासी है। अब जैसे ही कहानी चरम सीमा की ओर अग्रसर होती है, लेखक पीछे मुडकर प्रारम्भिक घटनाओं का संकेत देता है, जिससे कहानी के कथानक प्रारम्भ पाठकों के सामने आ जाता है। कथालेख की यह सीमा चरम तक (सित्तो और सावित्री के बीच घटित झगडे तक) बढती है। और इस बिन्दु के उपरान्त कहानी का अवरोह आरम्भ होता है। अर्थात् आरम्भ, आरोह, चरम अवरोह एवं अन्त इन कथा स्थितियो का पालन "सावित्री नम्बर दो" में मिलता है।

"यह मेरे लिए नहीं" तथा "बन्द गली का आखिरी मकान" में भी ये स्थितियां खोजी जा सकती है। दीनू (यह मेरे लिए नहीं) के मन में उठे अपने नातेदारों के प्रति अलगाव को लेकर कहानी आरम्भ होती है, दीनू के होस्टल जाने की घटना पर चरम स्थिति पायी जाती है। और फिर दीनू के लौट कर घर बसाने के साथ-साथ कहानी खत्महोती है। "बन्द गली का आखिरी मकान" कहानी बहुत मन्थरता के साथ आगे बढ़ती है, क्योंकि लेखक ने जिन स्थितियों, कथासूत्रों को पकड़ा है, वे सख्या में अधिक है, लेखक मुन्शी के साथ बिरजा, हरीराम, राधोराम आदि के जीवन को भी स्पष्ट रूप से कथानक में लाना

चाहता है। "सावित्री नम्बर दो" की तरह "बन्द गली का आखिरी मकान" भी बीमार व्यक्ति के मनोजगत को कथासूत्र मानकर चलती है। इस कहानी का चरम हम मुशी के अट-सट सोचने-व्यवहार करने की घटना पर मान सकते हैं, जहा से कहानी क्षिप्रता के साथ अवरोहित हो मुन्शी की मृत्यु के साथ खत्म होती है।

स्पष्ट है कि, इन चारों कहानियों का कथालेख स्पष्ट एव सरल है, पाठकों को उसमें संकीर्णता एव पेचीदगिया महसूस नहीं होती। भारती इन कहानियों द्वारा अपनी एक ठोस दृष्टि का सप्रेषण चाहते है, अत केवल कथा कहना भारती का उद्देश्य यहाँ नहीं है।

चरित्र-चित्रणः

"बन्द गली का का आखिरी मकान" की प्रथम दो कहानियां नायिका प्रधान हैं अंतिम दो नायक प्रधान। इन सभी कहानियों में कस्बाई जीवन का चित्रण हुआ है और उन्हे अधिकाधिक निखार देने के लिए यहां पात्रों की संख्या भी ज्यादा है। "गुलकी बन्नो", की गुलकी, घेघा बुआ, झबरी कुतिया, मिरवा, मटकी, सत्ती, लडको का जुलूस, जुलूस का कप्तान, मुन्ना, गुलकी का पति, "यह मेरे लिए नहीं" का दीनू, दीनू के चाचा-चाची, अर्पणा, दीनू की मां, साची, बागीश, डाक्टर, चपरासी भगवानीदीन, गुण्टी, "बन्द गली का आखिरी मकान"के मुन्शीजी राधोराम, हरिया, हरदेई, पाण्डेजी, बिरजा, भवनाथ, बिटौनी, टुन्नी, वकील, वैद्य महाराज, बिसन मामा, अनवर की बीबी, गीता का अर्जुन आदि के माध्यम से लेखक ने कस्बाई जीवन के रेशे-रेशे को उजागर किया है। स्पष्ट है कि इनके पात्र मुख्यत. इस जीवन से सम्बद्ध है।

इन कहानियों के मुख्य पात्र है-गुलकी (गुलकी बन्नो), सावित्री (सावित्री नम्बर दो), दीनू (यह मेरे लिए नहीं), एवं मुंशी (बन्द गली का आखिरी मकान)।

"गुलकी बन्नों की नायिका पति द्वारा छोडी गयी है और एक मुहल्ले में लावारिश एकाकी जीवन जीने के लिए मजबूर है। गली के लडके उसे परेशान करते हैं, जानवर की तहर पीटते हैं, चिढ़ाते है फिर भी गुलकी के मन में अपनेपन का सोता सूखता नहीं। वह मिरवा और मटकी की कुरूपता के बावजूद उनको चाहती है, कभी उनको खाने के लिए

देती है, तो कभी पैसे देती है। घेघा बुआ की चालवाजी के सामने उसकी कुछ चलती नहीं तो वह अपने सहेली सत्ती के यहा पनाह लेती है। पति द्वारा प्रताडित परित्यक्त होकर भी गुलकी के मन मे पति के प्रति गहरी आत्मीयता है-" "राम! राम! कितने दुबारा गये हैं। हमारे बिना खाने-पीने का कौन ध्यान रखता। अरे, सौत तो अपने मतलव की होगी। ले भैया मेवा, जा दो बीडा पान दे आ जीजा को!" फिर उसके मुह पर वही लाज की बीभत्व मुद्रा आयी- "तुझे कसम है, बताना मत किसने दिया है।"[43]

युवती होते हुए भी गुलकी का रग रूप अच्छा नहीं था "गुलकी की उम्र ज्यादा नहीं। यही हद से पच्चीस-छब्बीस। पर चेहरे पर झुर्रिया आने लगी थी और कमर के पास से इस तरह दोहरी हो गयी थी जैसे अस्सी वर्ष की बुढिया हो।[44]" गुलकी के चरित्र का विशेष तत्व है।

"सावित्री नम्बर दो" की सावित्री के चरित्र की सराहना करते हुए डा0 रामदरश मिश्र ने लिखा है- "भारती की"सावित्री नम्बर दो" में एक आधुनिक लडकी की बीमार मनः स्थितियों का, उसकी ग्रन्थियों का एक बडा सूक्ष्म अंकन है। वह अपनी असामान्य स्थितियों में भी सामान्य है, व्यक्तित्व की उलझन उसकी सहजता बन गई।"[45]

"सावित्री नम्बर दो" कहानी एक बीमार मृत्यु के अहसास में जीती शादी शुदा औरत की कहानी हैं ससुराल छोडकर वह मायके आ गई है, शारीरिक कमजोरी उससे रोजमर्रा जीवन से अलगाती है, औरो के आश्रय में जीने के लिये मजबूर करती है, फिर भी जीने की अदम्य एषणा और बार-बार उभरता मृत्यु का चित्र उसके मानसिक संतुलन पर आघात करते हैं, अत वह अपनी विवेक शीलता खो देती है, सावित्री के अजीब व्यवहार के पीछे उसकी जिजीविषा ही है, अपने प्रति, जीवन के प्रति, पति के प्रति एवं शारीरिक सुखों के प्रति। सावित्री का अकेलापन उसकी मानसिक अस्वस्थता को अधिक गहराता जाता है। खाट पर पड़े-पड़े खिडकी से झांकते ही उसके मन में बंवडर सा चल उठता है "इस के उस पार जिन्दगी है, इस पर हूँ मैं। बाहर एक बडा सा पार्क है। उसके चारों ओर मकानों के पिछवाडे हैं, खिड़कियां है, छज्जे हैं, ऊपर बडा-सा आसमान है।.........पार्क में खेलते हुए

बच्चें हैं बेंचों पर उघती हुई आयाए है, लाल गुलमोहर, पीले अमलतास और छोटे-छोटे फलो और कांटो की झाडियाँ है। कितने वरसों से खिडकी में जडी इन छडों की पारदर्शी लोहे की दीवार से टकरा टकरा कर यह जीवन का समुद्र असफल अकारथ वापस आया है। खिडकी के इधर पडी हूँ मैं। न मरी न जिन्दा।"[47]

सावित्री के मन में घडी-घडी उठने वाला यह सवाल वह जिदगी, जो उसे जीनी पड रही है, आखिर है क्या, बडा ही महत्वपूर्ण कचोटने वाला है- "मेरे लिए तो न जिन्दगी, है न मौत है। एक तीसरे प्रकार की स्थिति एक निरर्थक क्रम में बीतते जाते क्षण जो कही 'भी तो नहीं ले जाते।"[47]

इस प्रकार सावित्री के मन में जीवन को जीने की घटाएं बार-बार उमड आयी है 'किन्तु बिना बरसे ही लौट गयी हैं, क्योंकि न बरसने कि लिए वे अभिशप्त है' उसकी बीमारी मे गतिशीलता पर रोक लगा दी है और पथ में खडा किया है बीमारी का पहाड जिसको लांघना सावित्री के लिए सम्भव नहीं है।

निराशा और एषणा की इस कशमकश के कारण सावित्री का मानसिक संतुलन बिगड गया है। वह अपने पति को, बहन को, मां को, सभी को अपमानित करने लगती है। लम्बी बीमारी को भोगने वाला व्यक्ति औरों की सहानुभूति का प्रतिदान घृणा के रूप में करता है, क्योंकि मन में बैठा निराशा का कीडा औरों को अपमानित, पीडित करने पर संतुष्ट हो जाता है। बीमारी के पहले यही सावित्री अपने आप को एक ईमानदार, सच्ची स्त्री के रूप में प्रमाणित करना चाहती थी। बीमारी और अकेलेपन ने, निरर्थकता के अहसास ने उसके मन में अस्तित्व के प्रश्न को कोसा। वह समझ गयी है कि, उसके हाथ में जिन्दगी का आखिरी टुकडा बचा है और बिना किसी लोक लाज के उस जिन्दगी के अल्पाश को, अल्पाश को, अल्पांश जिन्दगी का मरमाहट को अपनाना चाहिए। इसलिए वह राजाराम के हाथों उसकी गोद में लेटे-लेटें अपना शरीर सहलाती है। उसे लोकापवाद की परवाह नहीं है।

बहन सित्तो और पति की निकटता देखते ही सावित्री की यह जिजीविषा, अहं चक्र एकाएक रुक जाता है, मन के गुब्बारे में भरे बवण्डर अदृश्य हो जाते है। प्रतिक्षण गहराता

मौत का अहसास, परायापन, निरर्थकता को भोग-भोग कर वह बार-बार थकती है, और यह थकान उसे और ही गहन निरर्थकता का अनुभव देती है, जब वह देखती है कि "पार्क में खिलते गुलमोहर अमलतास के रग है, सामने की खिडकी में अठ्खेलियों करती लडकी के आकार है, खेलते बच्चो की हसी की आवाजें है।"[48]

सावित्री के लिए कुछ भी नहीं, सावित्री का अपना कुछ नहीं, सावित्री किसी की नहीं, केवल वह है और उसके आसपास घूमती हुई मौत की काली छाया है।

लगाव और अलगाव की भिन्न सिथितयों के बीच भटकता "यह मेरे लिए नहीं" का दीनू आज की मध्यवर्गीय युवा पीढी की मानसिकता के साथ-साथ कस्बाई जीवन को भी अभिव्यक्ति देता है। एक ओर दीनू की मां है, जो उसके ऊपर अपने मातृत्व का अधिकार जमाकर उसे अपने वश में रखना चाहती है और दीनू मां के इस स्वार्थी रूख के प्रति विद्रोह किये जाता है। मां की इस अधिकार लिप्सा के कारण दीनू के मन में माॅ के प्रति एक घृणा का भाव पैदा हुआ है। दूसरी ओर दीनू की पढाई चाचा-चाची, अपर्णा जैसे बिन्दु भी दिखाई देते हैं, जिनसे वह अपने आप को वांधना चाहता है। आस्था और अनास्था के संघर्ष और अनास्था के संघर्ष के साथ-साथ दीनू का चरित्र विकसित होता चलता है।

दीनू की अनास्था मां के प्रति विद्रोह करने पर प्रकट होती है, तो सांजी और अपर्णा बनर्जी के प्रति एक मौन पूजा की भावना, चाचा चाची के प्रति श्रद्धा और प्रेम दीनू को अपनेपन से भर देते हैं। लेकिन जब वह अपनी मा के ही मुंह से साजी और अपर्णा दीदी को लेकर लगाये गये आरोप को सुनता है तो, उसकी चट्टान जैसी आस्थाए डोल उठ्ती हैं, अविश्वास का, अनास्था का भाव जाग जाता है। अनास्था और अविश्वास यह अनुभूति उसे बहुत ही दीन बना देती है- "दीनू क्या करे जिसका कोई भगवान नहीं रहा। कितना अकेला! कितना निरस्त्र।"[49]

मां दीनू के प्रति कठोर होकर ताने मारती रहती है और दूसरी ओर दीनू की आस्था के आलम्बन उसे जीवन के प्रति मोहित करते हैं। इस संघर्ष से दीनू के मन में एक तनाव पैदा होता है, जो आगे चलकर व्यक्तिवादिता की ओर अग्रसर होता है अपनी मां, ईश्वर एवं

बागीश जी की आलोचना करता है, घर छोडकर होस्टल चला जाता है। फिर चाचा के मनाने पर वह लौट आता है किन्तु लौटकर देखता है कि अव पहले जैसा कुछ नहीं रहा है, मा उसकी शरण में आ गई है और वह अपर्णा दीदी के साथ खुलकर बोल नहीं पाता है, चाची से दुलारभरी मनुहार नहीं कर पाता। मा के बदले हुए रूप को देखकर उसके मन में विचार आता है "ओ मां! ओ मा! यह दृष्टि नहीं सही जाती। दीनू ने विजय चाही थी अपनी निष्ठा, अपनी ईमानदारी, अपने स्वाभिमान को प्रतिष्ष्ठित करने के लिए। तुम्हारी आखों में इस दृष्टि के लिए नहीं।"[50]

दीनू को हम नयी पीढी का प्रतीक भी कह सकते हैं, जो पुरानी पीढी की स्वार्थपरता के प्रति सशंकित है।

दीनू के चरित्र विकास का अन्तिम बिन्दु है-'इदन्नमम् की अनुभूति और सम्बन्धों के प्रति निर्वेद की भावना- "प्रभो! मां को शान्ति दो उनके शेष दिनों को उजाला दो। उसे प्रेरणा दो कि बडी बड़ी झुकी आंखे और सूखे केशो की अनसंवारी उदासी देखी। अपर्णा ने अपने आप को इस घर से तोड लिया है। दीनू किसी के लिए कुछ कर नहीं पया। . इदन्नम्म! ईश्वर भी मेरे लिए नहीं! इदन्नम्म-यह जो दीनू है, यह जो "मै" है यह भी मेरे लिए नहीं।"[51]

"बन्द गली का आखिरी मकान" का प्रधान चरित्र मुशी हृदय से उदार है, प्रकृति से विद्रोह एव जीवन मे संघर्षशील। प्रकृति से विद्रोह होने के कारण अपने अकेलेपन से छुट्कारा पाने के लिए मुन्शी ने बिरजा नाम की औरत को अपने घर में रखा और वे उसे अपनी पत्नी सा प्रेम देते रहे। पहले पति की सतान लेकर आई हुई बिरजा से एवं उस बेटे से भी वे परायेपन का सम्बन्ध न रखते थे। इस विद्रोह के कारण मुशी जी के रिश्तेदार मुन्शीजी से अलगाते हैं। मुन्शी जी की बहन ने इस बात को आलोचना की तो मुन्शी जी ने कहा- "भवनाथ, बिटौनी चार बरस की थी जब अम्मा मरी थी। हमने बहन करके नहीं लड़की कर के पाला। शादी नहीं की कि गैर खून की लड़की आकर उसे सताये नहीं।... उससे कह देना कि यह देहरी तो अब बिरजा की है, राधो की है। अब तो इस देहरी के बाहर जीते जी न मुन्शी जी जायेंगे न बिरजा। जमराज बुलावेगे तभी जायेंगे। चाहे सारी

दुनिया की ताकत लग जाये। समझे।"[52]

बिटौनी के व्यवहार से स्पष्ट होता था कि वह मुन्शी जी को अपने धन के दर्प के आगे नीचा दिखाना चाहती है। मुन्शी की खस्ता हालत, गरीवी, अकिंचनता, विवशता, वीमारी भी मुन्शी को किसी के आगे झुका न सकी– "मुन्शी जी का मन विद्रोह चाहे न कर पाये लेकिन स्वाभिमानी था। उन्हे अन्दर ही अन्दर कहीं यह बात कचोट गयी थी कि आखिरकार बिटौनी ने भी वही माना कि भैया गरीब है, अत उन्हे जैसे चाहो इस्तेमाल कर लो।"[53]

सामाजिक उपेक्षा के शिकार भारती के अन्य प्रधान कथा पात्र भी है। "सावित्री नम्बर दो" की तरह इस कहानी के मुख्य पात्र भी एकाकीपन के अहसास में दब–दब कर अन्तत· मानसिक विवेकशीलता को असतुलित कर बैठ्ते हैं। जहां तक वस चला. मुन्शी जी ने बिरजा के लिए, बिरजा के बेटे के लिए, हरिराम के लिए अपनी जिन्दगी अर्पित की। मुहल्ले भर का विरोध झेला।

जिन्दगी के आखिरी दिन मुन्शी जी गिर रहे थे जब राधोराम की शादी होने जा रही थी। मुन्शी बरिच्छा में जा नहीं सकेंगे क्योंकि वे राधोराम के असली पिता नहीं थे। गलीवालों की यह अटकल सुनकर मुन्शीजी के मन को गहरा सदमा पहुंचा। वे बद्री केदार जाने की सोचने लगे किन्तु अन्तत बिरजा की बात मानकर वे गये नहीं।

अन्तिम दिनों में मुन्शी के मन पर मौत छाई हुई थी और बीमारी बढ्ती जा रही थी। पूरा घर शादी की तैयारी में व्यस्त था। मुन्शी के मन में बार–बार कुरुक्षेत्र पर घटित महाभारत का गीता प्रसंग उभरता, कभी बद्री केदार के रास्ते पर अकेले में घूमता बनपाखी तैरता, तो कभी ये विचार कि "पाताल में क्या होता होगा,. .... नाग वासुकी होगा, तक्षक भी होगे, शेषनाग होगा और उनके सब सिपाही अर्दली नाग होंगे। अगर कोई वहां पहुॅच जाये तो नाग ही नाम–नाग ही नाग।"[54]

कहानी के अन्तिम दृश्य में मुन्शी जी का चरित्र पूर्णतः खुलता है, जहां उनकी मृत्यु हुई है, अकेले में, रात्रि के समय, जिस समय घर में पागल और आवारा हरिाम के सिवाय और कोई नहीं था। इसमें मुन्शी जी का चरित्र पूर्णत· खुलता है, जहां उनकी मृत्यु हुई है,

अकेले में, रात्रि के समय, जिस समय घर में पागल और आवारा हरिराम के सिवाय और कोई नहीं था।

गुलकी, सावित्री, दीनू और मुन्शी जी को ही प्रतिनिधि चरित्र मानकर इस अध्ययन में इन कहानियों के चरित्र चित्रण पर प्रकाश डाला गया है, स्थानाभाव एव समयाभाव के कारण इन कहानियो की पात्र सख्या बहुत अधिक है और प्रत्येक पात्र के बारे मे विवरण देना कठिन लगता है। इन चार पात्रों के व्यक्तित्व के मूल्याकन के उपरान्त हम इस बात पर सन्देह नहीं कर सकते कि इन कहानियो का पात्र जगत आम आदमियो का है, गरीबी की चक्की मे पिसते युवाओं, औरतो, बूढो का है, यथार्थ एव विश्वसनीय है। इनमें पूरी तरह लावारिस, निराधार जिन्दगी ढोने वाली गुलकी भी शामिल है, कुण्ठा का अम्बार सावित्री भी है, होनहार रिसर्च स्कॉलर दीनू भी और विद्रोह, संघर्षशील, बीमार मुन्शी भी है। इन पात्रों के माध्यम से "बन्द गली" के हर मकान की वास्तविकता सही सही मूर्त हो उठी है।

कथोपकथनः

काव्यात्मकता, नाट्कीयता, भावुकता अर्थपूर्णता, संक्षिप्तता, विश्लेषणात्मकता आदि गुणो के कारण भारती की इन चारो कहानियो के सवाद सफल एव मार्मिक बन पड़े हैं।

भावप्रवणता एवं काव्यात्मकता के कारण ये संवाद लेखक द्वारा निर्मित पात्रों प्रसंगों को अधिक सजीव एवं प्रभावशाली करते हैं– "अंजलि में हरसिगार के फूल लेकर, हाथ जोडकर माथे से लगाकर श्रद्धापूर्वक बोला, "अहा! पतली छवि है!" अपर्णा ने बुरा नहीं माना। खिलखिलाते हुए एक मुट्ठी फूल और देते हुए बोली "प्रेतिनी नहीं पेतनी! बोलो, बोड़दा पेतनी! नहीं समझे। बंगला में उसे पेतनी कहते है। हिन्दी में प्रेतनी।"[55]

अभिनयात्मकता भारती के संवादों की विशेषता है। कहीं पर ये संवाद अभिनय के साथ उभरते है, तो कहीं–कहीं संवाद और अभिनय एकाकार हो जाते है– "राधो, बेटा!" मुन्शीजी ने भरे गले से कहा और आंख में आंसू भर आये, "बिरजा"[56]

सबेरे राधोराम कचहरी जाने लगा तो ऊपर बुलाया। माथे पर हाथ फिरा कर बोले,

बेटा, तन्दुरुस्ती हजार नियामत। इधर-उधर की किताव पढने खून पानी वन जाता है और बडी की जेब से पाच रूपये का तुडा मुडा नोट निकाल कर वोले, "मलाई बधवा लो एक छटांक। शाम को आते समय ले आना बेटा।" राधोराम ने चुपचाप सिर झुकाकर रूपया लिया और चला गया।[57]"

"बन्द गली का आखिरी मकान" के सवाद छोटे-छोटे, स्वाभाविक, प्रसगानुकूल है। ऐसे संवादो को पढकर लेखक की कथोपकथन योजना की विलक्षणता का पता चलता है- "बस भी कर" बीमारी मे मुन्शी जी भी चिडचिडे हो गये थे, "मुह लगाई डोमनी गावे ताल बेताल।"

"अच्छा, पुराण बखानने की जरूरत नहीं, ले जा यह सब। जो मन में आये कर।"

"करूंगी, जरूर करुगी, तुम्हें अच्छा लगे चाहे न लगे। वाह रे आदमी। बेटा का ब्याह नहीं सहा जाता, राम! राम! "बिरजा पाव पटकते नीचे चली गयी।"[58]

तथा "नहीं, छोड नहीं देगी तो जाय के लात खायेगी,"

सत्ती बोली।

"अरे बेटा!" बुआ बोली "भगवान रहे न तीन मथुरापुरी में कुब्जा दासी के लात मारिन तो ओकर कूबर सीधा हुई गवा। पती तो भगवान है बिटिया। ओका जान देव।"

"हां-हां बडी तो हीत न बनिये। उसके आदमी से आप लोग मुफ्त में गुलकी का मकान झटकना चाहती हैं। मैं सब समझाती हूँ।"[59]

इन संवादों के माध्यम से पात्रों की स्वभावजगत विशेषताओं के साथ कहानी की कथागति भी बढती है। संक्षेप में संवाद योजना की दृष्टि से भारती की ये चारों कहानियां मार्मिक कही जा सकती हैं।

देश, काल वातावरणः

इन कहानियों का वातावरण लेखक का अपना भोगा हुआ यथार्थ है। यही कारण है

कि अपनी तमाम रोमाट्किता के होते हुए भी "बन्द गली का आखिरी मकान" का वातावरण पात्रों की मानसिकता को उद्घाटित एव परितोषित करता है, मूल कथा सवेदना को गहराता जाता है। इन चारों कहानियो के कथासूत्र लेखक ने नगर-जीवन के गली मुहल्ले से खोजे है। इन कहानियों मे ऐसे उदाहरण वहुत मिलेगे जिनसे लेखक की यथार्थ के निरीक्षण की क्षमता का पता चलता है- "दायीं ओर कच्ची दीवार. जिनमें वीच-बीच के गोबर का लेप उघड गया था। बीच मे पिरोड से पुता हुआ आला, जिसके ऊपर दूर तक ढिबरी के धुएँ की काली लकीर और नीचे बहे हुए तेल की धार का दाग। दायी ओर दीवार नीची थी, खपरैल झुक आई थी और ओलती के मोटे-मोटे बास। पॉयताने टीन के पुराने सन्दूकों पर पोटरियाँ, गठरी-मुटरी और अदालत के कागज। ऊपर खूंटी से लटकता हुआ एक तार का खोंसना, जिसमें पुरानी चिट्ठिया पुरजे, गैरतामील हुए सम्मन, रसीदें, बैनामें और पुरनोट खुंसे हुए थे। सिरहाने था मोरवा, जिसके पार खेत और हनुमान चौरा दीखाता था, क्योंकि वह कच्चा मकान गली का आखिरी मकान था, यहा आकर गली बन्द हो जाती थी।"[60]

वातावरण की यह उमस पात्रों के मानसिक ठहराव को, बीमार मुन्शी की उदासी को गहराती है, एव जिस एकाकीपन तथा ऊब को कहानी से स्पष्ट करना चाहता हे, उसकी आवश्यक पृष्ठभूमि भी बनाती है। "यह मेरे लिए नहीं" कहानी के नायक दीनू के मन का वैराग्य भी आरम्भ में बनायी वातावरण की पृष्ठभूमि में अधिक उभार पाता है- "ऐसी सुबहें सिर्फ उस गली में होती थी। सीले घर, टूटे मन, अन्दर बाहर, अन्धेरा, हर चीज पर कुट्न और खीज। तभी जाने कहा से कोई एक छोटी सी चीज उभर आती थी दूसरों के लिए बिल्कुल बेमतलब मगर जो देखे और समझे उसके लिए कितना दिलासा देने वाली। मसलन, इस लम्बे, सीले, बेडौल दीवारों वाले कमरे में अलस्सुबह यह धूप की चकत्ता सुनहला, चौकोर, सुबह के झकोरे मे झील के पानी की तरह कांपता हुआ।..... धीरे-धीरे खिसक रही है, आगे बढ रही है, और तब सहसा यह ध्यान आता है कि बाहर सूरज धीरे-धीरे उठ रहा है, उसी के अनुसार यह धूप जौ-जौ तिल-तिल खिसक रही है।"[61]

इन कहानियों का वातावरण कहीं-कहीं रोमांट्कि होने के बावजूद स्वाभाविक ही लगता है, आरोपित नहीं। सावित्री एकाकीपन के बोझ से दब-दब कर अतीत के कल्पना

लोक के क्षणों को जीवित कर सहलाती है– “सोकर उठी तो धूप चढ गयी थी। पार्क में बच्चे झूल रहे थे और स्वच्छ नीले आसमान में एक लाल पतग थिरक रही थी। मैने बचपन में पतंग उडाई तो नहीं पर पतगे लूटने के हुडदगे मे जरूर शामिल रही हूॅ। कभी कभी कटी पतगे मेरे आगन मे गिरकर अदर के पेड मे अटक जाती थी।”[62]

बीमार, अशक्त सावित्री खाट पर पडी देखती है खुला आकाश, मुक्त विचरने वाले पंक्षी तो उसका क्षण–क्षण उसे काटने दौडता है। दो वातावरणों की आपसी भिन्नता के कारण सावित्रीके मौन दु ख का उद्घाटन होता है– “शाम ढलने लगती है और ऊपर उडते हुए कबूतर छज्जों पर उतर आते है। नाचती लटाइयों पर डोर लपेट कर लडके पतंग उतार लेते है। आयाएं ऊँघते बच्चों को ले जाने लगती है और खट से सडक की बत्तियॉ जल जाती हैं।”

यह सब भरी–पुरी जिन्दगी है कितने बरसों से खिडकी में जडे इन छडों की पारदर्शी लोहे की दीवार से टकरा–टकरा कर यह जीवन का समुद्र असफल अकारथ वापस लौट गया है।[63]

उपरोक्त दो परिच्छेदों के आन्तरिक विरोध में से सावित्री का व्यक्तित्व अधिक स्पष्ट होता है। अर्थात् वातावरण के माध्यम से सावित्री का चरित्र अर्थवान एवं शक्तिमान बनता है।

“गुलकी बन्नों” की कहानी में आद्यन्त एक उदासी का बीभत्स एवं घिनौना वातावरणबना हुआ है जिसे कुबडी गुलकी संघर्ष करते हुए भी चाहती है। झबरी, कुतिया, मिरवा, मटकी आदि वे आलम्बन हैं जिनसे वातावरण उत्तरोत्तर कुरूप बनता जाता है। इस कहानी का प्रत्येक पात्र वातावरण की मूल कथा संवेदना को अनुकूल बनाता है। कुतिया उदात्त स्वर में भोंकती है, बच्चों का जुलूस परेड पर निकलता है, गुलकी को पीटता है, बिगुल बजता है, नारे लगते है, सती चाकू दिखाती है, गुलकी पति की दुतकार से प्रेम करने जाती है– इन सभी घटनाओं के प्रति एक घृणा का अहसास पाठकों के मन में पैदा होता है।

गुलकी विदाई का प्रसग वातावरण की उदासी का चरम है ही, किन्तु साथ-साथ अपने आप में यह प्रसग मानवता की कुटिलता पर व्यग भी करता जाता है। करुणा, व्यंग्य और उमस के अहसास की पूर्ण अनुभूति के कारण वातावरण का तत्व इन कहानियों में कलात्मकता के साथ निभाया गया है। "चॉद और टूटे हुए लोग" के पहले खण्ड की अधिकांश कहानिया भी इसी वातावरण के निर्माण मे सक्रिय दिखाई देती हैं, जिनका पूर्ण परिपाक हमें इन चार कहानियों में मिलता है।

भाषा शैलीः

कस्बाई वातावरण की इन कहानियों की भाषा के विविध रूप यहा मिलते है। लेखक की अपनी विवरण देने की भाषा बोलचाल की हिन्दी है तो पात्रों की भाषा उनके शैक्षिक स्तर, मनस्थिति आदि के अनुरूप है। इस कारण इन कहानियों में आचलिकताका तत्व अनिवार्य सा बन गया है। इन चारों कहानियों में इलाहाबादी मुहल्लों की बोलचाल की भाषा का प्रयोग अधिकाशतया लेखक ने किया है-

"कुबडी -कुबडी का हेराना,"

"सुई हिरानी।"

सुई लैके का करवे;

"कन्या सीवै।"

"कन्या सी के क्या करवे;"

. . . .

लकडी लावै

"लकड़ी लावै के क्या करवे,"

"भात पकइवे।"

"भात पकाय के क्या करवे;"

"भात खावै!"

"भात के बदले लात खावै।"[64]

"बीमारी का शरीर है कालिका भवानी का, नाही तो जलती लकडी से मुह झौंस दिया जाते तो सब पागलपन छूमतर हुई जाता। हम ऐसी फरफन्दि बहुत देखा है। मारत-मारत ,,[65]

"जायें न तो क्या करें, सारा काम कर रही है बियाह का। सिलाई व मशीन भी है उनके यहां। तुम तो खाट पकडकर पहुँड रहे, अब बिटवा का ब्याह क्या रोज रोज होता है। ये नकरो, वो न करो, घर में पडे मरते रहो।"[66]

"बन्द गली का आखिरी मकान" की किसी भी कहानी कोरा शिल्पवाद मिलता नहीं, लेखक इन कहानियों में शिल्प और कथ्य दोनो इकाइयों के माध्यम से सही-सही संयोजन से अपनी ईमानदारी और अनुभूति की प्रामाणिकता के आधार पर इन कथा-सूत्रों को प्रभावशाली बनाता है। भारती की कविता उनका पीछा कभी नहीं छोडती, फिर वे नाटक लिखें, समीक्षा की सूखी जमीन पर उतरें या अनुसंधान के सिरदर्द से गुजरें। "बन्द गली का आखिरी मकान" में भी भारती की शैली काव्यात्मक रही है- "पर अभी तो रह-रह कर बहुत कुछ कचोट जाता है। बचपन की खुशनुमा मीठी यादों से भरी पर अब दिनों-दिन टूट-टूट कर बिखरती मां बाप की गिरस्ती। पति का दूसरे तीसरे कभी फूलमाला, कभी कोई किताब लेकर थके पांव सूखे मुह जाना

"पुरानी चोट कभी-कभी पुरवैया में पिराने लगती है तो वह पीर भी अच्छी लगती है।"[68]

"अन्दर जो है सो है, बाहर द्वारे पर तो केश बिखरे साक्षात परना दी खडी है। यह ठीक है कि सुबह-सुबह नहा-धोकर फूल चुनने निकलती लेकिन विद्यापति ने सद्यस्नाता के केशों का जो वर्णन किया है उसमें परना दी ने युगानुकूल सुधार किया है। संगम पर धूनी रमाने वाले साधुओं की जटाओं की छटा अपनायी है।"[69]

"अब तो चल-अलाव ही समझो बिरजा! बडा खौफनाक रास्ता है। न आदमी है न आदम जात। कहते है बस बरफ ही बरफ हैं बस एक पहाडी चिडिया होती है बस वही बोलती रहती है- पछी पग ध्यान यहा आपुनो न कोई"[70]

इन कहानियों की प्रस्तुतीकरण, शैलिया विभिन्न है। "गुलकी बन्नो" तथा "बन्द गली का आखिरी मकान" कहानी विवरणात्मक ढ्ग से लिखी गई है और "यह मेरे लिए नहीं" अभिनयात्मक। "सावित्री नम्बर दो" कहानी मनोविश्लेषणात्मक शैली में लिखी गई है।

इन कहानियों की भाषा में मनीजर लेफ्ट-राईट, इलेक्शन, स्पीच, ड्राइव, ड्राइंग, डीयर, सनीमा, रिसर्च, स्कॉलर, डॉक्टर, एजेंसी, अणु बम, जैसे अंगरेजी शब्द, उर्दू के जर्द, कमीज, बजान, मुबाहसा जैसे शब्द बोलचाल की हिन्दी की गरिमा बढाते हैं, कही पर भी अखरते नहीं। भारती का कवि, कविता के अतिरिक्त निबन्ध, कहानी, नाटक आदि विधाओं में भी शब्दों को खोजने निकलता नहीं, शब्द का ऐश्वर्य तो भारती की अपनी अलग विशेषता है। संक्षेप में, भारती की इन कहानियों की भाषा सरस है, शिल्प सरल है और कहानियां इसी कारण प्रभावशाली बन पडी हैं।

उद्देश्यः

"बन्द गली का आखिरी मकान" की कहानियों पर टिप्पणी करते हुए उपेन्द्र नाथ अश्क ने लिखा है- "जिन्दगी और जिन्दगी में पिसते मानवों में भारती की जो आस्था थी जाने वह किन अंधेरे गर्तो में तिरोहित होती है।"[71]

भारती ने "गुलकी बन्नों" की गुलकी, "सावित्री नम्बर दो" की सावित्री, "यह मेरे लिए नहीं" का दीनू एवं बन्द गली का आखिरी मकान के मुन्शी इन चारों पात्रों की सृष्टि के माध्यम से एकाकीपन, गरीबी, बीमारी सामाजिक अलगाव की असहनीयता के कारण दब-दब कर टूटने वाले पात्रों का आंतरिक जगत उद्घाटित करना चाहा है जिसमें उन्हे, पर्याप्त सफलता मिली है। गुलकी के चरित्र पर स्वयं अश्क जी भी रीझ गये है,- "गुलकी बन्नो" की तमाम निराशा और कटुता के बावजूद मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि यह भारती की सर्वोच्कृष्ट कहानी है।[72] मानवी जीवन की ट्रेजडी के लगभग सभी रूप-दरिद्रता,

भूख, अकेलापन, पशुता कुण्ठा, अलगाव प्रेम, घृणा, वात्सल्य, स्वार्थ इन कहानियों मे मिलते है और लेखक का मूल काम्य भी हमारे जीवन के जीवन मे होने वाले, आकर चले जाने वाले चरित्रों की वाणी दे, रूप दे, आकार एव जीवन देना है। इलाहाबादी मुहल्लों के ये पात्र हमारे भारतीय नागर जीवन के प्रतिनिधि हैं। गुलकी, सावित्री दीनू एव मुन्शी के चरित्र में निहित करुणा और ट्रेजडी भारती के उद्देश्य को रूपायित करती हैं।

इस प्रकार "चांद और टूटे हुए लोग" तथा "बन्द गली का आखिरी मकान" इन दो संग्रहों में भारती की कुल 29 (उनतीस) कहानिया सकलित हैं जिनमें भारती के कहानीकार का उत्तरोत्तर विकसित होता हुआ व्यक्तित्व परिलक्षित होता है। "चांद और टूटे हुए लोग" के तृतीय खण्ड "कलकित उपासना" की कहानियों पर प्रसाद के व्यक्तित्व की गहरी छाया द्रष्टव्य है। इसी सग्रह के दूसरे खण्ड में भारती प्रसाद से अलग होने की कोशिश करते दिखाई देते है, और यथार्थ को समसामयिक दृष्टि से आकते दिखते हैं। पहले खण्ड में भी लेखक इसी मानसिकता के साथ कहानियों का सृजन किया है। रोमानी और काव्यात्मकता के होते हुए भी यथार्थ और मानववादी भूमिका के साथ भारती ने इन दोनों सग्रहों की कहानियों के माध्यम से तत्कालीन जीवन का प्रस्तुतीकरण किया हैं "बन्द गली का आखिरी मकान" और "चाँद और टूटे हुए लोग" की कहानियों में उनकी कहानी–सवेदना, मानववाद, यथार्थ विलोकन, रोमानी दृष्टि, मूल्य संकट की अपेक्षा मूल्यपर्याय का बोध आदि तत्व अधिकतम मात्रा में बिखरे हुए मिलते हैं और लगता है भारती के कहानीकार का यह अप्रतिम निदर्शन है।

"साँस की कलम से" 2000 ई0 में भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित डॉ0 धर्मवीर भारती की 36 कहानियों का संकलन है। इसमें 'चाँद और टूटे हुए लोग' संग्रह की 25 कहानियाँ तथा 'बन्द गली का आखिरी मकान' संग्रह की चार कहानियाँ, इसके अतिरिक्त 7 अन्य छोटी कहानियों का संकलन है। इस संकलन में उनकी पत्नी पुष्पा भारती जी का निवेदन, निर्मल वर्मा की प्रस्तावना, 'भारती जी की कथा यात्रा' शीर्षक महत्वपूर्ण निबंध, फिर कहानियाँ, अन्त में भारती के जीवन एवं कृतियों का सूचनात्मक विवरण है। भारती जी का यह संकलन इलाहाबाद के अतरसुइया माहेल्ले को समर्पित है, जहाॅ से टूटी साइकिल

और फटी चप्पल पहनने वाला लडका एक महान कथाकार बनकर निकला।

इस संकलन की सभी कहानियों को पढते हुए महसूस हुआ कि धर्मवीर भारती दो तरह की कहानियों के लेखक है। एक वे जिसमें जिन्दगी पूरे आब व ताब के साथ नजर आती है, जैसे 'मुर्दो का गॉव', 'धुआँ', 'मरीज नम्बर-7', 'कुलटा', हिन्दू या मुसलमान, हरिनाकुस और उसका बेटा, भूखा ईश्वर, कफ़न चोर, इत्यादि। यथार्थ की जिन्दा तस्वीर अपनी पूर्ण कलात्मकता के साथ इन कहानियो मे मानवीय सरोकारों से टकराती है। इन कहानियों में व्यंग्य है, वेदना है, छटपटाहट है, आक्रोश है, तल्खी है और इस सबके बाद इन्सानी प्यार है।

दूसरी तरह की कहानियॉ भारती के अनुराग-मन का पाठ है, जिसमें प्रेम का स्थान प्रथम है, परिवेश के रूप में दर्शन-वेदान्त, पुराण, इतिहास, मिथ मौजूद है। ऐसी कहानियों की भाषा खालिस साहित्यिक है, कहीं-कहीं बनावटी भी-जैसे 'स्वर्ग' और 'पृथ्वी' 'कमल और मुर्दे', शिंजिनी, 'कल एक मृत्यु-चिह्न', नारी और निर्वाण, 'स्वप्न श्री' और श्रीरेखा, पूजा, चॉद और टूटे हुए लोग; 'अमृत की मृत्यु' कवि और जिन्दगी पिरामिड की हॅसी' आदि। इन कहानियों में भारती ने कहीं भावनात्मक यात्रा को है तो कहीं ज्ञान से भरी दिमागी यात्रा, जो बताती है कि लेखक के अध्ययन का दायरा प्रत्येक क्षेत्र में गहरा और विस्तृत रहा है जिसके कारण ये कहानियॉ कहीं-कहीं लेख, रिपोर्ताज के बीच का सन्तुलन बनाये अपनी बात कहती है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि डॉ0 धर्मवीर भारती की कहानियों में निम्न एव मध्य वर्ग के व्यक्तियों का चित्रण हुआ है। उनकी कहानियों में यथार्थ का आधार होते हुए भी रोमांटिकता का समावेश भी परिलक्षित होता है। कहीं-कहीं छोटे-छोटे मधुर काव्यात्मक चित्र कहानियों में अनिवार्यत· उपस्थित है। नाट्कीयता का समावेश भी यथाप्रसंग किया गया है।

सन्दर्भ-संकेत

1 डॉ0 धर्मवीर भारती : चॉद और टूटे हुए लोग पृ0 212, किताब महल, इलाहाबाद, स0-1955

2 डॉ0 धर्मवीर भारती : चॉद और टूटे हुए लोग पृ0 261, किताब महल, इलाहाबाद, सं0-1955

3. डॉ0 धर्मवीर भारती · चॉद और टूटे हुए लोग पृ0 262, किताब महल, इलाहाबाद, सं0-1955

4.

5.

6. डॉ0 धर्मवीर भारती . चॉद और टूटे हुए लोग पृ0 111, किताब महल, इलाहाबाद, स0-1955

7. डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 54 , किताब महल, इलाहाबाद,

8 डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 121, किताब महल, इलाहाबाद,

9. डॉ0 धर्मवीर भारती . चांद और टूटे हुए लोग/पृष्ठ 79, किताब महल, इलाहाबाद;

10 डॉ0 धर्मवीर भारती . चांद और टूटे हुए लोग/पृष्ठ 24, किताब महल, इलाहाबाद,

11. वही- तदैव/पृष्ठ 141; किताब महल, इलाहाबाद,

12. वही- तदैव/पृष्ठ 56,. किताब महल, इलाहाबाद,

13. डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 88 किताब महल, इलाहाबाद,

14. डॉ0 धर्मवीर भारती चांद और टूटे हुए लोग/पृष्ठ 133 किताब महल, इलाहाबाद;

15. डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 133 ; किताब महल, इलाहाबाद;

16. डॉ0 धर्मवीर भारती . चांद और टूटे हुए लोग/पृष्ठ 59 किताब महल, इलाहाबाद;

17. डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 116 किताब महल, इलाहाबाद,

18 डॉ0 धर्मवीर भारती : चांद और टूटे हुए लोग/पृष्ठ 57 . किताब महल, इलाहाबाद;

19. डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 77 किताब महल, इलाहाबाद,

20. डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 84, किताब महल, इलाहाबाद,

21 डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 135 किताब महल, इलाहावाद,

22 डॉ0 धर्मवीर भारती चाद और टूटे हुए लोग/पृष्ठ 103।, किताव महल, इलाहाबाद,

23 डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 105। किताब महल, इलाहावाद,

24 डॉ0 धर्मवीर भारती चाद और टूटे हुए लोग/पृष्ठ 87।, किताब महल, इलाहावाद,

25 डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 125 किताब महल, इलाहाबाद,

26 डॉ0 धर्मवीर भारती चाद और टूटे हुए लोग/पृष्ठ 14।, किताव महल, इलाहाबाद,

27 डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 55।, किताब महल, इलाहाबाद,

28 डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 72।, किताब महल, इलाहाबाद;

29. डॉ0 धर्मवीर भारती चाद और टूटे हुए लोग/पृष्ठ 62।, किताब महल, इलाहाबाद,

30 डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 83 किताब महल, इलाहाबाद;

31 डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 87। किताब महल, इलाहाबाद;

32 डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 87।, किताब महल, इलाहाबाद;

33. वही– तदैव/पृष्ठ 90, किताब महल, इलाहाबाद,

34. वही– चांद और टूटे हुए लोग/पृष्ठ 135, किताब महल, इलाहाबाद,

35. वही– तदैव/पृष्ठ 79, किताब महल, इलाहाबाद,

36. वही– तदैव/पृष्ठ 18, किताब महल, इलाहाबाद,

37. वही– तदैव/पृष्ठ 85, किताब महल, इलाहाबाद,

38. डॉ0 धर्मवीर भारती : चाद और टूटे हुए लोग/पृष्ठ 261, किताब महल, इलाहाबाद,

39. डॉ0 धर्मवीर भारती · बन्द गली का आखिरी मकान/पृष्ठ 84; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली;

40. डॉ0 धर्मवीर भारती : बन्द गली का आखिरी मकान/पृष्ठ 3;- भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली;

41. डॉ0 धर्मवीर भारती : तदैव पृष्ठ/25; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली;

42 डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव पृष्ठ/21, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली;

43 डॉ0 धर्मवीर भारती : बन्द गली का आखिरी मकान/पृष्ठ 18; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली;

44 डॉ0 धर्मवीर भारती बन्द गली का आखिरी मकान/पृष्ठ 5, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली,

45 डॉ0 रामदरस मिश्र हिन्दी वाड्मय वीसवीं शती/डॉ0 नगेन्द्र/विनोद पुस्तक मन्दिर/आगरा प्रथम संस्करण 1972/पृष्ठ 127

46 डॉ0 धर्मवीर भारती : बन्द गली का आखिरी मकान/पृष्ठ 27, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली,

47 डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव पृष्ठ/28, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली,

48 डॉ0 धर्मवीर भारती : बन्द गली का आखिरी मकान/पृष्ठ 49, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली,

49 डॉ0 धर्मवीर भारती बन्द गली का आखिरी मकान/पृष्ठ 62, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0-1969

50 डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव पृष्ठ/75, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, स0-1969

51 डॉ0 धर्मवीर भारती . तदैव पृष्ठ 78/79, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0-1969

52 डॉ0 धर्मवीर भारती : बन्द गली का आखिरी मकान/पृष्ठ 90, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, स0-1969

53. डॉ0 धर्मवीर भारती : तदैव/पृष्ठ 96; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली; सं0-1969

54. डॉ0 धर्मवीर भारती . तदैव/पृष्ठ 134, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली; सं0-1969

55 डॉ0 धर्मवीर भारती : बन्द गली का आखिरी मकान/पृष्ठ 66; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0-1969

56. डॉ0 धर्मवीर भारती बन्द गली का आखिरी मकान/पृष्ठ 117, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0-1969

57 डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 119-120, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली; सं0-1969

58. डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 115-116; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली; सं0-1969

डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 15, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, स0-1969

डॉ0 धर्मवीर भारती बन्द गली का आखिरी मकान/पृष्ठ 83, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, स0-1969

डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 53, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, स0-1969

डॉ0 धर्मवीर भारती बन्द गली का आखिरी मकान/पृष्ठ 36, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली; स0-1969

डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 27; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, स0-1969

डॉ0 धर्मवीर भारती · बन्द गली का आखिरी मकान/पृष्ठ 18, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, स0-1969

डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 45; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, स0-1969

डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 115; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली; स0-1969

डॉ0 धर्मवीर भारती बन्द गली का आखिरी मकान/पृष्ठ 28, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, स0-1969

डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 66; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली; सं0-1969

डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 66; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली; सं0-1969

डॉ0 धर्मवीर भारती : तदैव/पृष्ठ 108; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0-1969

डॉ0 धर्मवीर भारती उपेन्द्रनाथ अश्क/कहानी के इर्द गिर्द/प्रस्तोता-डॉ0 सुरेश सिन्हा/पृष्ठ 52।

डॉ0 धर्मवीर भारती तदैव/पृष्ठ 52; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0-1969

पंचम अध्याय

डॉ0 धर्मवीर भारती के काव्यनाटक एवं एकांकी: स्वरूप एवं विश्लेषण

डॉ0 धर्मवीर भारती प्रमुखत कवि और कथाकार थे, पर उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा ने आधुनिक हिंदी नाट्य-साहित्य को एक नया और अप्रत्याशित मोड दिया। नाटकीय सूत्रों के आधार पर डॉ0 भारती ने न तो किसी नाटक की रचना की है और न ही भारतेंदु एवं प्रसाद की तरह साहित्य-जगत् मे नाटकों की धारा ही बहादी है। डॉ0 भारती ने सिर्फ दो नाटकों की रचना की है-

1 अंधायुगः (1954) ई0

2 नदी प्यासी थी, (1954) ई0 (एकांकी-सग्रह)

इनमें से पहला एक सफल गीति-नाट्य और दूसरा एकांकियों का संग्रह है।

'अंधायुग' के माध्यम से कवि एवं उपन्यासकार भारती को एक सजग, सफल नाटककार के रूप में प्रतिष्ठा मिली है। सन् 1954 ई0 में लिखित यह नाट्यकृति कई बार प्रकाशित, प्रसारित एव मंचित हो चुकी है। मूलत. 'अंधायुग' रेडियों नाट्य के रुप में लिखा गया था, जिसे आगे चलकर भारती ने वर्तमान रुप दे दिया। डॉ0 नामवर सिंह ने लिखा है "अंधायुग ने पहली बार हिदी नाटक में यह स्थापित किया कि काव्य और नाटक का बड़ा गहरा सम्बंध है।"[1]

आलोचको ने प्रथमत. तो "अंधायुग" को एक काव्यकृति के रुप में देखा था और उसे छायावादोत्तर कालीन कविता का 'एक मील का पत्थर' स्वीकार किया था।[2] कालांतर में "अंधायुग" को आलोचकों ने नाट्यसाहित्य के अन्तर्गत रखतें हुए यह स्वीकृति दी कि "अंधायुग" हिन्दी गीत नाट्यों की परम्परा को एक नया और स्वस्थ मोड़ देता है। कथानक की उत्कृष्टता, गीत-संवादो का नाटकीय निर्वाह, प्रभावन्विति, प्रतीक-योजना आदि पर विचार करते हुए यह एक श्रेष्ठ गीति नाट्य में परिगणित होगा, इसमें संदेह नहीं।"[3]

"अंधायुग" का कथासूत्र महाभारत के युद्धोपरांत उपजी हुई स्थितियों से सम्बद्ध है। साथ ही साथ अपनी प्रतिबद्धता, सामयिकता के प्रति सजगता, सामाजिकता, व्यक्तिसापेक्षता, आस्थावान दृष्टि और अनास्था, विवशता, हिंसा आदि संदर्भो के कारण

बीसवीं शती की आधुनिक कृति बन गयी है। अनायास ही "अधायुग" मिथक परम्परा में एक सशक्त प्रयोग बन जाता हैं। 'अधायुग' का अविर्भाव हिन्दी रगमच के लिए एक नया आयाम प्रस्तुत करता है जिसके विकास के "एक कठ विषपायी" (दुष्यन्तकुमार), "सशय की एक रात" (नरेश मेहता), "सूर्यमुख" (डॉ0 लक्ष्मीनारायण लाल), "प्रजा ही रहने दो" (गिरिराज किशोर) आदि महत्वपूर्ण परिणतियाँ हैं।

"अंधायुग" के "निर्देश" मे स्वय भारती ने निम्न बातों का उल्लेख किया है-

1 'अंधायुग' की अधिकतर कथा वस्तु प्रख्यात है।

2 कुछ उत्पाद्य तत्वों का समावेश इस कृति में है।

3 ग्रीक ट्रेजडी के कोरस का प्रयोग 'अंधायुग' में है।

4 कथा-वस्तु का विभाजन पॉच अंकों में है।

5 अधायुग का मचीकरण जटिल नहीं है।

6. लोकनाट्य शैली की कथा गायन पद्धति अंधायुग में है।

7 भावानुसार छंदपरिवर्तन अंधायुग की विशेषता है।

8. संवाद मुक्त छन्द में है और अंतराल में वृत्तगंधी छद का प्रयोग किया है।

9. भावानुकूल लय योजना है।

10. 'अंधायुग' रेडियों पर प्रसारित हुआ है, एव उसका मंचीकरण भी हो चुका है।

11. 'अंधायुग' समस्या प्रधान दृश्य-काव्य है।[4]

'निर्देश' में भारती ने जिसे दृश्य काव्य कहा है, वह मात्र दृश्य काव्य नहीं काव्य नाटक या गीति नाटक है। 'अंधायुग' में गद्य संवाद वर्णित है, अत वह पद्य नाटकों की परंपरा में आता है। काव्य नाटक में काव्यात्मकता का अत्यधिक महत्व रहता है, और इस कृति में काव्य तत्व का सफल निर्वाह हो सका है। "काव्य नाटक में बाहरी क्रियाशीलता और संघर्ष के स्थान पर मानसिक चित्रों का दृश्य ज्यादा अभिव्यक्त होता है।"[5] 'अंधायुग' में सभी पात्रों का मानसिक उद्‌घाटन इस कदर हुआ कि बाहरी क्रियाशीलता यहॉ गौण बन गई है, पात्रों का आन्तरिक विकास मनोविश्लेषण सूक्ष्म एवं सफल बन सका हैं। कथा

कहना "अधायुग" का उद्देश्य नहीं है, इसीलिए कथासूत्र यहाँ अत्यंत क्षीण सा मिलता है। तात्पर्य यह है कि "अधायुग" गीतिनाट्य ही है। भावना और आंतरिक सघर्ष की अनुभूति का उद्घाटन करने वाले नाटको का लेखन जयशकर प्रसाद के "करूणालय" से प्रारम्भ होता है। प्रसाद के उपरान्त मैथिलीशरण गुप्त (अनघ), सियारामशरण गुप्त (उन्मुक्त), भगवतीचरण वर्मा (तारा), उदयशकर भट्ट (विश्वामित्र, मत्स्यगधा, राधा) आदि नाटककारों के नाटकों में प्रणय, प्रेम वासना का ही उद्घाटन पाया जाता है। सुमित्रानन्दन पन्त के 'रजतशिखर', 'शिल्पी', आदि गीति नाट्य भी इसी परम्परा में रखे जा सकते हैं। भावना, प्रेम, वासना आदि के स्थान पर समसामयिकता को प्रधान स्थान देकर, गीति नाटक लिखने वाले डॉ0 धर्मवीर भारती, गिरजाकुमार माथुर, सिद्धनाथ कुमार, दुष्यंत कुमार, नरेश मेहता आदि हैं।

भारती का "अंधायुग" हिन्दी गीति नाट्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। पूर्ण गीतिनाटक अंधायुग के पहले नहीं लिखा गया था। प्राय· सभी गीति नाटक एकाकी हुआ करतें थें, जिनमें एक अंक होता था, छद एक होता था, कोरस का प्रयोग जिनमें न के बराबर था। 'अंधायुग' में इन समस्त अभावों का परिष्कार कर एक युगानुकूल रचना बन जाने की क्षमता प्रतीत होती है।

अंधायुग (1954 ई0)–

वस्तुपक्ष : "अंधायुग'' की कथा वस्तु पौराणिक है जिसमें लेखक ने अपनी ओर से कुछ उत्पाद्य अंश भी जोड़े हैं। इस दृश्य काव्य में जिन समस्याओं को उठाया गया है, उनके सफल निर्वाह के लिए महाभारत के उत्तरार्द्ध की घटनाओं का आश्रय ग्रहण कियागया हैं। अधिकतर कथावस्तु "प्रख्यात है केवल कुछ ही तत्व" उत्पाद्य हैं–कुछ पात्र कुछ स्वकल्पित घटनाऐं।"[6]

काव्य नाटक की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसमें कथासूत्र अत्यंत गौण रहता है, भावना एवं कल्पना की प्रधानता रहती है। 'अंधायुग' में भारतीय साहित्य के विख्यात महाभारत के रणसंग्राम के अट्ठारहवें दिन की संध्या से लेकर प्रभास–तीर्थ में कृष्ण की

मृत्यु तक के क्षण की कथा वर्णित है। यह कथावस्तु पॉच अको में विभाजित हैं।

अंधायुग का आरम्भ भी एक प्रयोग है। पहले अक की पृष्ठभूमि "स्थापना" है जिसमें नृत्य के साथ नर्तक मगलाचरण की विधि सम्पन्न करता है। अतीत और भविष्य का सम्बन्ध उसके स्वगत-कथन से जुड जाता है। नेपथ्य में लौटते लौटते वह संकेत देता है-

"युद्धोपरांत,
यह 'अंधायुग' अवतरित हुआ
जिसमें स्थितियॉ, मनोवृत्तियॉ, आत्माएॅ सब विकृत हैं
है एक बहुत पतली डोरी मर्यादा की
पर वह भी उलझी है दोनो ही पक्षों में
सिर्फ कृष्ण में साहस है सुलझाने का
वह है भविष्य का रक्षक, वह है अनासक्त
पर शेष अधिकतर हैं अन्धे
पथभ्रष्ट, आत्महारा, विगलित
अपने अतर की अन्धगुफाओं के वासी
यह कथा उन्हीं अन्धों की हैः
या कथा ज्योति की है अन्धों के माध्यम से।"[7]

पहला अंक बनाम "कौरव नगरी" का आरम्भ एवं अन्त कथा गायन के साथ हुआ है। इस अंक में 2 प्रहरी, विदुर, धृतराष्ट्र, गांधारी एव याचक महाभारत के रण के प्रति अपने-अपने दृष्टिकोण व्यक्त करते हैं। पर्दा उठते ही वातावरण की शून्यता, ध्वंसजन्यता, हताशा एवं विषादमयता को अभिव्यक्त करते हुए प्रहरी कहते है-

"सूने गलियारे में
जिसके इन रत्न जड़ित फर्शो पर,
कौरव-बधुएॅ
मन्थर गति से

सुरभित पवन-तरगों सी चलती थी
आज वे विधवा हैं।"[8]
कथा में औत्सुकय बढाने वाला यह आशकाजनित प्रश्न-
"'अपशकुन है
भयानक यह।
पता नहीं क्या होगा
कल तक
इस नगरी मे"[9]

धृतराष्ट्र और गांधारी को युद्ध के ये परिणाम खलते हैं। दोनो पक्षों की ओर से घटित हत्याकांण्ड का कारण गांधारी के मतानुसार-

"धर्म किसी ओर नहीं था
लेकिन
सब ही वे अन्धी प्रवृत्तियों से परिचालित
जिसको तुम कहते हो प्रभु
उसने जब चाहा,
मर्यादा को अपने ही हित में बदल लिया
वंचक है।"[10]

गांधारी और धृतराष्ट्र के बीच चलते संवादो के समय भविष्य रूपी याचक उपस्थित होता है जिसका विश्वास है कि-

"जब कोई भी मनुष्य
अनासक्त होकर, चुनौती देता है इतिहास को,
उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती हैं
नियति नहीं है पूर्व निर्धारित-
उसको हर क्षण मानव निर्णय बनाता-मिटाता है।"[11]

पहले अक के अत में कथा गायन की योजना है जहॉ आगत कथा वस्तु के संकेत मिलते है। अंधी गलियों में भविष्य रुपी झूठा याचक भटक रहा है (हाथ फैलाये), राजा धृतराष्ट्र के अन्धे दर्शन की एव माता गाधारी की अधी आशा की ओर सजय की तटस्थ, दिव्यसत्यदृष्टि की बुझती सी दो लपटें जीवित हैं– आदि बातें कथा गायन के द्वारा स्पष्ट होती हैं।–

दूसरा अक (पशु का उदय) में अश्वसत्थामा के चरित्र का उद्‌घाटन होता है। इसमें मुख्य रुप से अश्वसत्थामा की कथा कही गयी है। यहॉ भी कथा गायन की योजना है। अश्वत्थामा के मन में प्रतिशोध की अग्नि भभकती है।

"प्रतिशोध
पिता की निर्मम हत्या का
वन में
भयानक इस वन में भी
भूल नहीं पाता हूँ मै.... . ..।"[12]

अश्वत्थामा के सामने अब एक मात्र लक्ष्य है विपक्षी का बध, किसी भी रास्ते से–वह रास्ता फिर नीति का हो या अनीति का।

अश्वत्थामा के इस रुप से सभी आतंकित है–कृतवर्मा भी, कृपाचार्य भी एवं संजय भी।

अंत में पटाक्षेप के पहले कथा गायन है जिसमें वातावरण के विषादयुक्त तनाव को उभारा गया है। तीसरे अंक का शीर्षक है "अश्वत्थामा का अर्धसत्य।" इस अंक के आरम्भ में कथा गाय है, अंत में नहीं।

अंक के आरम्भ का समय सुबह, पाकर गहन व्यथा किन्तु वह सुबह नहीं जिसमें आशा की लालिमा और पक्षियों का चहकना नहीं होता है। वह सुबह तो पत्थर सी, श्रीहत, निर्जीव है। दोपहर को सेना लौट रहीं है, जिनके साथ ब्राहमण, स्त्रियॉ, चिकित्सक, विधवाएँ, बौने बूढ़े घायल जर्जर भी है। धृतराष्ट्र इस माजरे को देख नहीं सकता और न

ही यह युद्ध का ध्वंस उसको समझ में आ रहा है। उस पर एक गूँगा सैनिक धृतराष्ट्र की जय जयकार बोलता हैं माता गाधारी संज्ञाशून्य एव जडवत है। धृतराष्ट्र भीम दुर्योधन के बीच घटित द्वदयुद्ध के समाचार की प्रतीक्षा कर रहें है। इसी समय प्रहरी यह समाचार देता है कि पांडवों की सेना के साथ–साथ एक सज्जित योद्धा कौरव नगरी में घुसा है और जनता उससे आतंकित है। इस सज्जित योद्धा की कथा उसी के मुख से प्रकट होती है

"ये हैं महल,
मेरे पिता, मेरी माता के
लेकिन कौन जाने
यहाँ स्वागत हो
मेरा
एक जहर बुझे भाले से।"[13]

यह युयुत्सु, धृतराष्ट्र का पुत्र है। युयुत्सु ने कौरवों का साथ नहीं दिया था। युद्ध में सत्य का पक्ष लेकर विजय पाना भी उसे खल रहा है क्योंकि विजयी होने की, विजय पाने सार्थकता तब होती जब कौरव नगरी में लौटने के बाद उसका स्वागत कोई करता। इस विजय की अपेक्षा पराजय कौन बुरी चीज है, जहाँ माता अपने पुत्र का स्वागत करती है, दुत्कारती नहीं–

"आज मुझे इतनी घृणा तो
न मिलती
अपने ही परिवार में
माता खडी होती
बाँह फैलाये
चाहे पराजित ही मेरा माथा होता।"[14]

युयुत्सु की यह आशंका दूर होती है, जब धृतराष्ट्र उसे अपनाते है, किन्तु गांधारी फिर व्यंग भरी चोट करती है–

"बेटा,

भुजाऐं ये तुम्हारी

पराक्रम भरी

थकी तो नहीं

अपने बन्धुजनों का वध करते-करते."[15]

इसी समय सवाद मिलता है कि "द्वदयुद्ध में राजा दुर्योधन पराजित हुए। इसके बाद दृश्य परिवर्तन है- धनुष चढाए भागते हुए कृतवर्मा और आचार्य आते है। फिर अश्वत्थामा प्रवेश करता है जिसके प्रतिशोध की मात्रा और बढ गयी है। राजा दुर्योधन को भीम ने अधर्म से मारा है। इस बात की स्वीकृति नेपथ्य से बलराम भी देते है। फलस्वरुप अश्वत्थामा का पांडवों के प्रति क्रोध बढ़ ही जाता है, जो यह संकल्प करता है"-

"उनको मै मारुँगा।

मै अश्वत्थामा

उन नीचों को मारुँगा।"

'कल तक मै लूंगा प्रतिशोध

सेना यदि छोड़ जाय

तब भी अकेला मै।'[16]

और गहरी रात में अश्वत्थामा निर्णय कर लेता है कि विजयी सोये निहत्थों पांडवों की हत्या वह कर डाले। अश्वत्थामा कृपाचार्य के लाख मनाने पर भी मानता नहीं, प्रतिशोध की अग्नि को बुझाने चला जाता है।

तीसरे और चौथे अंक के बीच अंतराल है जिसका शीर्षक है- "पंख, पहिये और पट्टिया।" इस अंतराल में वृद्ध याचक का स्वागत कथन है-जिसके माध्यम से दो अंकों के बीच की संगति जोडने के साथ-साथ युगीन स्थितियों-असंगतियों की व्याख्या लेखक करता है।

चौथा अक "गाधारी का शाप" है। अब भी अश्वत्थामा के मन में प्रतिशोध का ज्वालामुखी उबल ही रहा है अश्वत्थामा अब इस बात पर अटल है कि वह पाडवों के उत्तराधिकारी बनने वाले उत्तरा के गर्भ को नष्ट कर देगा।

एक बाण से आहत होने पर विवश अश्वत्थामा ब्रह्मस्त्र छोड देता है। आकाशवाणी होती है–

"यह क्या किया।
अश्वत्थामा। नराधम!
यह क्या किया।
. .यदि लक्ष्य सिद्ध हुआ ओ नरपशु
तो आगे आने वाली सदियों तक
पृथ्वी पर रसमय वनस्पति नहीं होगी।
शिशु होगे पैदा विकलांग और कुंठाग्रस्त
सारी मनुष्य जाति बौनी हो जायेगी।"[17]

अश्वत्थामा को व्यास की आकाशवाणी बार-बार समझाती है और अंततः अश्वत्यामा यह स्वीकृत करता है कि ब्रह्मस्त्र पूरी धरा पर नहीं बल्कि–

"निश्चित गिरे जाकर
उत्तंरा के गर्भ पर
वापस नहीं होगा।"[18]

गांधारी कृष्ण को ही युद्ध का उत्तरदायी ठहरा कर शाप देती है कि उसका विनाश भी किसी साधारण पागल कुत्ते का सा होगा। कृष्ण इस शाप को स्वीकारते हैं। कथागायन के माध्यम से कृष्ण की इसी स्वीकृति को दोहराया जाता है।

अंतिम अंक का शीर्षक है "विजय" एक क्रमिक आत्महत्या। यहॉ पर भी विश्वास ध्वस्तता को कथागायन के माध्यम से स्पष्ट किया जाता है। इस अंक में भारती ने धृतराष्ट्र, गांधारी के निर्वासित एवं पांडवों के शासक होने की स्थितियों को दर्शाया हैं।

युधिष्ठर को अनुभव होता है-

"मेरे ये कुटुम्बी अज्ञानी है दुर्विनीत है
या जर्जर है "[19]
विदुर शिकायत करने लगते हैं
"महाराज
अब हो चला है असहनीय
कैसे रोकूँगा
विद्रप यह भीम का"[20]

और जनता का रोना यह है-

"प्रहरी 1 कोई विक्षिप्त हुआ
प्रहरी 2 कोई शाप ग्रस्त हुआ,
प्रहरी 1. हम जैसे पहले थे
प्रहरी 2. वैसे अब भी है
प्रहरी 1 हम जैसे पहले थे
प्रहरी 2 वैसे अब भी है
प्रहरी 1. शासक बदले
प्रहरी 2.स्थितियाॅ बिल्कुल वैसी है.. "[21]
कृपाचार्य दमन की नीति अपनाते हैं..
"पांव केवल तोड़े तुम्हारे
युयुत्सु ने,
किन्तु आज तुमको मैं जीवित नहीं छोड़ूगा।"[22]

इस प्रकार विजयी पांडवों के राज्य पर अंधकार की कुछ और पर्त जम जाती है। दूसरी ओर धृतराष्ट्र, संजय और गांधारी वन में जा रहे है। फिर युधिष्ठिर यह भी कहते है कि गांधारी और धृतराष्ट्र जलककर भस्म हुए है, अतः मन में जन्में विराग के कारण वे भी हिमालय के शिखरों पर गल जाना चाहते हैं।

पॉचवे अक के उपरांत "समापन" अध्याय है जिसका शीर्षक है "प्रभु की मृत्यु।"

इस अंक में कृष्ण की मृत्यु का-एक व्याध के द्वारा मृत्यु के क्षण का चित्रण है। साथ ही साथ प्रभु की मृत्यु के द्वारा लेखक की अपनी आस्था को भी अभिव्यक्ति मिली है।

इस प्रकार "अंधयुग" की कथा महाभारत के रणसग्राम के अठ्ठारहवे दिन की संध्या से लेकर कृष्ण की मृत्यु तक घटनाओं का वर्णन है।

चरित्र-सृष्टि "अंधायुग" के रचयिता की चरित्रसृष्टि महत्वपूर्ण उपलब्धि है। भारती ने महाभारत के धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण, गाधारी, भीम आदि को बिल्कुल नये व्यक्तित्व, नये वेश के साथ पेश किया है। कथावस्तु की दृष्टि से स्वयं भारती ने इस उपलब्धि का समावेश उत्पाद तत्व के अर्न्तगत रखा है।[23]

अंधा युग काव्य नाटक में कुल 16 पात्र है-

(1) अश्वत्थामा (2) गांधारी (3) धृतराष्ट्र (4) सजय (5) वृद्ध याचक (6) प्रहरी 1, (7) प्रहरी 2, (8) व्यास, (9) विदुर, (10) युधिष्ठिर, (11) कृपाचार्य, (12) युयुत्सु, (13) गूगां भिखारी, (14) बलराम, (15) कृत वर्मा (16) कृष्ण।

डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी के मतानुसार 'अन्धायुग' के चरित्र के प्रतिचरित्र है पर वे परस्पर एक दूसरे को काटते नहीं, वरन एक दूसरे के आमन-सामने होकर रचना संसार को पूर्णतर बनाते है।[24]

कथानक को विकसित करने के साथ-साथ विचार और भावना का उद्घाटन करना 'अन्धायुग' के चरित्र की विशेषता है और "इन दोनों के हल्के तनाव में-रचना की अपनी दृष्टि बनती है।"[25]

कथोपकथनः नाटक के तत्वों के अन्तर्गत कथोपकथन का स्थान महत्वपूर्ण है, जिसके माध्यम से रचनाकार कथानक को विकसित करते हुए पात्रों के आंतरिक एवं वाह्य वातावरण सूच्य घटनाओं आदि को दर्शकों के सामने उपस्थापित करता है। नाटक के

कथोपकथन इस दृष्टि से स्वाभाविक सक्षिप्त, मार्मिक एव पात्रानुकूल होने चाहिये। काव्य–नाटक में इन नाटकीय काव्य का होना बुनियादी तौर पर आवश्यक है।

"अधायुग" के कथोपकथन के विषय में भारती ने अपनी ओर से लिखा है– "संवाद मुक्त छन्दों में है और अन्तराल में कितनी प्रकार की ही छन्द–योजना से मुक्त वृत्तगन्धा गद्य का भी प्रयोग किया है। वृत्त गन्धी गद्य की ऐसी पंक्तियाँ अन्यत्र भी मिल जायेंगी। लम्बे नाटक में छंद बदलते रहना आवश्यक प्रतीत हुआ। अन्यथा एकरसता आ जाती। कुछ स्थलों को अपवाद स्वरुप छोड दें तो दो प्रहरियों का सारा वार्तालाप एक निश्चित लय में चलता है जो नाटक के आरम्भ से अन्त तक लगभग एक सी रहती है। अन्य पात्रों के कथोपकथन में सभी पंक्तियाँ एक ही लय की हो यह आवश्यक नहीं।"[26]

उपरोक्त उद्धरण में भारती ने आलोच्य नाट्य कृति के सवाद–विधान को लेकर कुछ महत्वपूर्ण सकेत दिये हैं। इस नाटक के सवाद वृत्तगन्धी गद्य में लिखे गये हैं और महत्वकी बात यह है कि दो प्रहरियों के संवाद की लय प्रायः एक सी रहती है, जहाँ अन्य पात्रों के संवादो में लय परिवर्तन है।

निम्नलिखित उद्धरणों में हम देख सकतें है कि अवरोह की मात्रा संवाद के उच्चरणों का बलाघत (टोन) लगभग एक ही ढंग का है–

"प्रहरी 2. कुछ भी अर्थ नहीं था
जीवन के अर्थहीन
सूने गलियारे में पहरा दे दे कर
अब थके हुए है हम अब चुके हुए है हम।"[27]
"प्रहरी 1. हमने नहीं झेला शोक
प्रहरी 2. जाना नहीं कोई दर्द
प्रहरी 1. जैसे हम पहले थें
प्रहरी 2. वैसे ही अब भी है।"[28]

अंधायुग के अधिकतर संवाद संक्षिप्त और स्वाभाविक है। इन संवादो के माध्यम के

कथानक के विकास में गति की स्थापना होती है, जैसे-

“प्रहरी 1 बादल नहीं है
यें गिद्ध हैं
लाखों करोडो
पांखे खोले”
“प्रहरी 2 लो
सारी कौरव नगरी
का आसमान
गिद्धों ने घेर लिया।”[29]
“प्रहरी 1 अपशकुन है
भयानक यह . ।”[30]

यहाॅ पर आने वाली घटनाओं एवं आगत का संकेत मिलता रहता है, जिसके कारण कथावस्तु विकसित होती रहती है। साथ ही इन संवादों के प्रसंगानुकूल लघुमय एवं दीर्घाकार रुप मिलते हैं। कहीं-कहीं पर संवाद अधिक लम्बे हो गये हैं, और ऐसे स्थानों पर यह संवाद नहीं, एक लम्बा वक्तव्य बन जाते हैं जो एक नाट्य-रचना की दृष्टि से अनुचित तो है किन्तु काव्य-नाटक में कुछ हद तक संवादो के प्रसरण की छूट तो रहेगी ही।

‘अंधायुग के पात्र एक दूसरे को काटतें नहीं, अतः कथन के प्रतिकथन-क्रिया प्रतिक्रिया के रुप में नहीं बल्कि कथन के पूरक कथन में रखे गये है। व्यास के यह कहने पर कि-

तुम पशु हो,
तुम पशु हो,
तुम पशु हो-”[31]

अश्वत्थामा इस संवेदना के सूत्र का विरोध न कर पशुत्व के बिंब की व्याख्या और विश्लेषण ही करता है-

"या मै नहीं

मुझको युधिष्ठिर ने बना दिया।"[32]

नाट्ककार को विरोधहीन सवाद योजना जानबूझ कर करनी पडी है, अत 'अधायुग' पर यह आरोप कि "पात्र स्वगत और अर्द्ध स्वगत कथनों में युद्ध के धर्म-अधर्म पक्षों पर व्याख्यायें करते हुए आते-जाते हैं, नाट्ककार बार-बार प्रबध काव्य की कथन शैली और कलात्मक संगठ्न के नियमो को अपनाने लगता है।"[33] प्रस्तुत आरोप, आरोप नहीं रह जाता।

देशकाल-वातावरणः

अंधायुग का कथानक महाभारत के अट्ठारहवें दिन संध्या से लेकर प्रभास-तीर्थ में कृष्ण की मृत्यु के क्षण तक के कैनवास पर अंकित है। महाभारत-कालीन वातावरण के निर्माण में स्थापना खण्ड में गाये जाने वाले 'मंगलाचरण, उद्घघोषण' आदि सहायक हैं। पहले अंक के आरम्भ में पात्र प्रवेश के पहले तीन बार सूर्यनाद होता है जो काल इकाई की पुष्टि करता है। कही-कहीं पर पात्रों के मुख से ही वातावरण का संकेत मिलता है-

"सत्रह दिनों के लोमहर्षक संग्राम में

भाले हमारी ये

ढाले हमारी यें

निरर्थक पड़ी रही

अंगों पर बोझ बनी

रक्षक थे हम केवल.. .. ।"[34]

नाट्ककार के द्वारा वातावरण निर्माण के लिए रंग, रुप, ध्वनि आदि के निर्देश भी है-

1. "पंखों की ध्वनि के साथ स्टेज पर और भी अंधेरा।"[35]
2. "आंधी की ध्वनि कम होने लगती है"[36]

3 "पीछे का पर्दा उठने लगता है। पॉडवों की समवेत हर्षध्वनि और जय-जयकार सुन पडती है। वन पथ का दृश्य है ।"[37]

4. "धीरे-धीरे स्टेज पर अंधेरा होने लगता. । अश्वत्थामा कटा पंख हाथ में लेकर उल्लास से चीखता है।"[38]

कथा गायन का प्रयोग भी इस नाटक में वातावरण को गहराने में सहायक सिद्ध होता है। स्थल एवं काल की इकाई बने रहे इसलिए दो दृश्यों के बीच कथा गायन की योजना की गई है। स्थापना के बाद कथानक की पृष्ठभूमि का कार्य कथागायन है, जो संजय एवं गांधारी तथा युधिष्ठिर के विषय मे सूचना देता है।

दूसरे अंक के आरम्भ का कथा गायन संजय को लेकर है, जो दो दृश्यों को एक सूत्र में बांधे रखता है। सक्षेप में देशकाल, वातावरण की दृष्टि से स्थल एव काल इकाइयों का पालन 'अन्धायुग' में मिलता है। **समूचा कथानक कौरव नगरी में घटित है।** 'अन्धायुग' की भाषा की महत्वपूर्ण विशेषता है, जहाँ भारती ने काव्य-नाट्क की हर संभावना का लाभ उठाने की कोशिश की है। महाभारतीय रण-काण्ड ने जीवन के हर स्तर पर निराशा, सूनापन अंधेरा, हताश और सूखापन बिछा दिया। भारती ने इस हताशा के जीवन की नस पकडी है, जिसका विवरण देते हुए कवि लिखता है-

"सूने गलियारे में
जिसके इन रत्न-जडित फर्शो पर
कौरव वधुएँ मन्थर मन्थर गति से
सुरभित पवन तरंगो-सी चलती थी
आज वे विधवा हैं।"[39]

इस भाषा में बिम्ब विधान की जबर्दस्त क्षमता है। स्थान-स्थान पर सुन्दर और स्पष्ट बिम्ब मिलते है-

"मर्यादा मत तोड़ों
तोड़ी हुई मर्यादा

कुचले हुए अजगर सी
गुजलिका मे कौरव–वश को लपेट कर
सूखी लकडी सा तोड डालेगी।"[40]
"जैसे तेज बाण किसी
कोमल मृणाल को
ऊपर से नीचे तक चीर जाय
चरम त्रास के उस बेहद गहरे क्षण में
कोई मेरी सारी अनुभूतियो को चीर गया ।"[41]

इस प्रकार के बिम्ब–विधान के साथ अश्वत्थामा के मन का सही प्रस्तुतीकरण हुआ–

मै यह तुम्हारा अश्वत्थामा
कायर अश्वत्थामा
शेष हूँ अभी तक
जैसे रोगी मुर्दे के
मुख में शेष रहता है
गन्दा कफ
बासी थूक
शेष हूँ अभी तक मै.. [42]

किसी भाव या अर्थ चेतना को गहराने के लिए एक वाक्य या वाक्यखंड को दोहराकर काम लिया गया हैं वाक्य की पुनरावृत्ति निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है–

"शान्त रहो,
गांधारी शांत रहो।"
"इसलिए सूने गलियारे में
निरुद्देश्य,

निरुद्देश्य,

चलते हम रहें सदा

दाए से बाए

और बाए से दाए।"[43]

"फिर भी रहूँगा शेष

फिर भी रहूँगा शेष

फिर भी रहूँगा शेष

सत्य कितना कटू हो

कटू से यदि कटुतर हो

कटूतर से कटुतम हो

फिर भी कहूँगा मै....।"[44]

वाक्य खंड या वाक्य ही नहीं, भारती ने अर्थ को अधिक निखारने के लिए शब्दों की भी आवृित्त की है, जैसे-बार-बार, चूर-चूर घिसट-घिसट कर, गाढे-गाढे सूनी-सूनी फैले-फैले, गली-गली, काले-काले, हड्डी-हड्डी आदि।

"अंधायुग" में उपमा, उत्प्रेक्षा, रुपक, आदि अंलकार मिलते है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य है-

"सारा तुम्हारा वंश

इसी तरह पागल कुत्तों की तरह

एक दूसरे को परस्पर फाड़ खायेगा।"[45]

....

"कुचले हुए साँप सा

भयावह किन्तु

शक्तिहीन मेरा धनुष है वह

जैसा है मेरा.......।"[46]

सूने गलियारे में

"जिसके इन रत्न जडित फर्शो पर

कौरव-बधुए

मन्थर-मन्थर गति से

सुरभित पवन तरगो सी चलती थी

आज वे विधवा है।"[47]

यहाँ स्वभावोक्ति एवं पुनरुक्ति (मन्थर-मन्थर) अलकार बहुत ही सुंदर बन पड़ा है। उसी प्रकार निम्नांकित उद्धरण भी द्रष्टव्य है-

"नैतिकता, मर्यादा, अनासक्ति, कृष्णार्पण

यह सब है अन्धी प्रवृत्तियों की पोशाकें जिनमें कटे कपडो की आखों सिली रहती है मुझे इस झूठ आडम्बर से नफरत थी।"

इसलिए स्वेच्छा से मैने इन ऑखो पर पट्टी चढा रखी थी।"[48] इस प्रकार अंधायुग की भाषा की बिंब निर्माण क्षमता एवं अलंकारत्व इस काव्य नाट्क के सौन्दर्य वर्धन में सहायक हैं। मूलतः एक कवि की कृति होने के नाते इन अलंकारो बिम्बों से अधिक गहराई एवं काव्यात्मकता भरी हुई है जो यह सिद्ध करती है कि अंधायुग की भाषा में तत्सम और उर्दू के शब्दों का कलात्मक चयन एवं संयाजन मिलता है, जैसे-शेष

तत्सम-मन्थर, सुरभित, नरभक्षी, जन्मांध, जर्जर, श्वेतकेशों, रोष अवध्य आदि। उर्दू-मेहनत, आसमान, बादल, मौन आदि।

मंचन-सामर्थ्यः

"अंधायुग" की भूमिकासे "निर्देश" में भारती ने "अंधायुग" को 'दृश्य काव्य' कहकर इन तथ्यों की ओर संकेत किया है कि,

1. अधायुग की कथा वस्तु 5 अकों में विभाजित है।
2. ग्रीक नाट्य शैली के कोरस गान पद्धति का प्रयोग अधायुग में किया है।
3. भारतीय लोकनाट्य परम्परा की कथागायन पद्धति भी उपयोग में लायी गयी है।
4. अधायुग के सवाद मुक्त छद में है।
5. इस काव्य नाट्य का मचविधान अधिक जटिल नहीं हैं।
6. मूलत· यह काव्य रंगमच की दृष्टि में रखकर लिखा गया था।

इसके पहले इस तथ्य की ओर संकेत कर चुके है कि "अधायुग" के सवाद काव्यात्मक एवं नाटकीय कथावस्तु रंगमंच पर दर्शायी जाती है। अत· इन सवादो में पात्रों के अंतर बाह्य सघर्ष के साथ-साथ नाट्यकीयता का होना किसी भी नाट्य-कृति के लिए बुनियादी आवश्यकता है। "अंधायुग" के पात्रों के कथन परस्पर एक दूसरे का या तो संवर्धन-संस्कार करते हैं या समर्थन-जैसे प्रहरी। जब कहता है कि-

"आस्था का,
साहस का,
अस्तित्व का हमारे
कुछ अर्थ नहीं था
कुछ भी अर्थ नहीं था।"[49]

तो प्रहरी 2 लगभग वही भाव, वही शब्द दोहराने लगता है-

"अर्थ नहीं था
कुछ भी अर्थ नहीं था
जीवन के अर्थहीन
सूने गलियारे में
पहरा दे-दे कर
अब थके हुए है हम।"[50]

अंधायुग की एक कमी संकेत डॉ0 सुरेश अवस्थी ने एक लेख में दिया है- "नाटककार बार-बार प्रबन्ध काव्य की कथन शैली और कलात्मक संगठन के नियमों को अपनाने लगता है। उसकी रचना के अंको में कथा का फैलाव है, घटनास्थलों में बिलगाव

है, कई धरातलों की विचारधारा का ऊहापोह है।" "इस सबको समेकित करने का एकमात्र साधन कथा गायन रखा गया है। वही अको की कथा को समेटता है, वही घटना स्थलों की अन्विति देता है किन्तु नाटक की धर्मिताओं को वह शक्ति नहीं देता, शायद उनकों दुर्बल ही करता है।"[51]

विभिन्न कालों-स्थलों से सम्बद्ध घटनाओं को भारती ने किसी न किसी रास्ते मच पर प्रस्तुत तो किया है, किन्तु नाट्य रस का प्रवाह उसमें नहीं अनुभूत होता। यह ठीक है कि इन अंकों पात्रों में अन्विति है, किन्तु कमी यह है कि उनकी योजना बार-बार महाकाव्य के ढंग की या खण्ड-काव्य के वजन की बनने लगती है।

प्रहरी और कथागायक दो अंकों को जोड़ने का, अन्तराल को भरने का कार्य करते हैं किन्तु नाटकीय सम्भावना के स्तर पर उनका कोई खास योगदान प्रतीत नहीं होता। भारती ने यहॉ ग्रीक नाटक को कुछ अंशो में अपनाया है, (कोरस पद्धति) और कुछ अंश भारतीय नाट्य पद्धति के जोडे है, किन्तु वे नाट्यानुभूति के लिए अनिवार्य तत्व बनते तो उनकी सार्थकता का सवाल न उठता। डॉ0 सुरेश अवस्थी ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि- "इन दोनों प्रहरियों की स्थिति तटस्थ दृश्यानुवाचकों की रह जाती है, वे नाटकीय पात्र नहीं बन पाते। इसी लिए जैसे कथा-"

गायन नाटक में सुन्दर काव्य-खण्डो के रुप में अलग से पडे रहते है वैसे ही प्रहरियों का वार्तालाप पात्रों के प्रवेश और प्रस्थान को सुगम बनाने और कथा के वेग की कुछ विश्राम देने को एक चातुरीसे अधिक और कोई नाट्य प्रयोजन नहीं पूरा करता।[52]

"अंधायुग" मुख्यतः सभ्य एवं उच्च वर्ग की राजा-महाराजाओं की जीवन की ट्रेजडी है, और भारतीय जीवन को लेकर ही उसका मुख्य सूत्र (महाभारत से लिया हुआ) चलता है। सामाजिक सांस्कृतिक सीमाओं में, अपने निजी परिवेश में ही उसके पुनः पुर्नप्रस्तुतीकरण के माध्यम मिल सकतें हैं और "अंधायुग" की कला-रुढ़ियाँ अपने सहधर्मी रंगमंच की सृष्टि न करके विपरीत रुप-स्वभाव वाले रंग-मंच में आरोपित की गयी हैं। यही अन्तर्विरोध बराबर नाटक के रसास्वादन और वस्तुग्रहण में बाधा डालता है।

सक्षेप में, भारती का अधायुग मचीयता की दृष्टि से कहीं-कहीं पर नाटकीय संभावनाओं से दूर चलता प्रतीत होता है।

अंधायुग की आलोचना के प्रसंग में बहुत सारे आलोचको ने टी0एस0 इलियट तथा उसकी बहुचर्चित कविता बेस्ट लैण्ड का उल्लेख किया है। डॉ0 इन्द्रनाथ मदान ने "अंधायुग" और "वेस्ट लैण्ड" की समानता दर्शाते हुए लिखा है कि 'भारती ने अधायुग में कौरव नगरी को उसकी उजडती और गिरती दशा मे उसी तरह पकडने की काशिश की है जिस तरह इलियट ने वेस्ट लैण्ड में लंदन को ।'[53] कृष्णदत्त पालीवाल को "अंधायुग" और "वेस्ट लैण्ड" में कुछ अंतर दिखाई देता है- "अंधायुग" के कवि की आस्था "वेस्ट लैण्ड" के कवि की आस्था एक में नहीं है, जिसमें जीवन सूख गया हो. .।[54] डॉ0 प्रेमपति ने भारती के अंधायुग और इलियट के 'वेस्ट लैंड' को एक सा माना है, और अधायुग को भारतीय प्रयोग कहा है। डॉ0 प्रेमपति के मतानुसार "अंधायुग में उसके पूर्ववर्ती इलियट द्वारा लिखित" "मर्डर इन द कैथैड्रल" की बातें तो स्वाभाविक रुप से आयी है, जो इस प्रकार है-

1. संवाद मुक्त छन्द में है
2. आवश्यकतानुसार लय परिवर्तन
3. ग्रीक कोरस
4. अन्तराल में वृत्तगंधी गद्य का प्रयोग
5. कथानक में उत्पाद्य तत्वों का समावेश।[55]

वैसे तो डॉ0 भारती पर टी0एस0 इलियट का प्रभाव खासकर नाट्य साहित्य पर पड़ा है, क्योंकि कथ्य एवं शिल्प को लेकर भारती और इलियट में बहुत कुछ समानता मिलती है। "अंधायुग" के आरम्भ में लेखक ने अपनी ओर से भूमिका दी है, जो इस नाट्य कृति की रचना-प्रक्रिया एवं लेखकीय व्यक्तित्व पर प्रकाश डालती है। दूसरे महायुद्ध के विध्वंश पर आधारित इलियट की "वेस्ट लैण्ड" कविता का मूल भाव भारती के "अंधायुग" में मिलता है, और कहीं पर यह कृति इलियट द्वारा लिखित उक्त कविता के

समान्तर भी चलने लगती है, इसमे सदेह नहीं।

इस प्रसग में और एक सवाल उठता है कि क्या इस काव्य नाटक में भाषा का जो रुप है, उसके स्थान पर गद्य का प्रयोग पर्याय रुप में स्वीकारा जा सकता था। यदि हां, तो क्या यह पूर्ण रूप से सफल नाटक-काव्य नाटक है थोडी देर के लिए हम इस तथ्य को भूल जायें कि यह काव्य नाटक एक कवि कृति है, तो भी हमें अंधायुग में ऐसे ही स्थल अधिक मिलेंगे जो शैली और कथ्य में एकरुप हैं। इसीलिए "अधायुग" की काव्यात्मकता अनिवार्य है, और यह काव्यत्मकता नयी काव्यात्मकता है, पारम्परिक कविता से हटी हुई काव्यत्मकता है। नयी कविता गद्य का बाना पहनकर अवतरित हुई थी, क्योंकि नीरसता, असंगतियों एवं सघर्षो की अभिव्यक्ति पारम्परिक चौखटें में प्रस्तुत करना कठिन था, इसलिए उसका रुप, नयी कविता का चेहरा गद्यमय ही बना, अत यह भी बिल्कुल स्वाभाविक है कि प्रस्तुत नाट्य कृति के कुछ के अंश गद्यरुप काव्य में हों।

"अंधायुग" के कृष्ण के चरित्र, उनकी मृत्यु एवं आस्थावादिता के प्रति भारती के आकर्षण के कारण इस कृति की प्रभावक्षमता की हानि हुई है। अच्छा होता यदि नाटककार ज्योति की आस्था के प्रतिपादन को इस कृति पर न लादता, इन अनास्था पीडित अन्धों को अंधकार में रहने देता। प्रभाव की अन्विति में इस आस्था के संदेश ने कुछ बिखराव पैदा कर दिया है। "सूरज का सातवां घोड़ा" के साथ यही हुआ है, "अंधायुग" में वही आदर्शवाद है, और अन्य एकांकियों में (सृष्टि का आखिरी आदमी, नदी प्यासी थी, आदि) यही बात दोहराई गई है। भारती की इसी चूक की ओर डॉ0 प्रेमपति ने यों संकेत किया है- "मूल्य-मर्यादा के रोमांटिक पूर्वाग्रह ने धर्मयुद्ध को चंपारन का सत्याग्रह बना दिया है।"[56]

निष्कर्ष रुप में हम यह कह सकतें है कि भारती की एकमात्र काव्य-नाट्य कृति "अंधायुग" का हिन्दी नाट्य क्षेत्र में अपना स्वतंत्र महत्व है। कुछ पाश्चात्य प्रभाव उसमें अवश्य ढूढ़े जा सकतें है, फिर भी नये भावबोध की मंचीय नाट्याभिव्यक्ति की प्रथम कृति के रूप में "अंधायुग" का महत्व अप्रतिम है।

नदी प्यासी थी (1954 ई0):

"नदी प्यासी थी डॉ0 धर्मवीर भारती के पाच एकाकियों का सकलन है, जो 1954 ई0 में प्रकाशित हुआ था। इस संग्रह में निम्नलिखित एकांकी सकलित हैं-"

1 नदी प्यासी थी

2 नीली झील

3 आवाज का नीलाम

4. संगमरमर पर एक रात

5 सृष्टि का आखिरी आदमी

इनमें से प्रथम चार रगमंच के लिए हैं तथा अंतिम एकाकी रेडियों के लिए लिखा गया है। भूमिका के इन शब्दों के साक्ष्य के आधार पर हम यह कह सकते है कि "नदी प्यासी थी" के एकांकी मच या रेडियों को ध्यान में रखकर ही लिखे गये हैं-मैने अपनी ओर से यही प्रयास किया है कि रंगमंच के लिए ये पूर्णतया उपयुक्त सिद्ध हों, फिर भी जहॉ तक नाट्कों का सम्बन्ध है नाट्ककार और निर्देशक मिल कर ही उसका अंतिम रुप स्थिर कर सकतें हैं। यहॉ तक कि रिहर्सल के दौरान में अक्सर अभिनेता कुछ ऐसे सशोधन उपस्थित करते है जो नाट्क की सफलता के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध होते है।[57] इसी स्थल पर हमें यह संकेत मिलता है कि इन में से कुछ एकांकियों का मंचीकरण भी हो चुका है।

"नदी प्यासी थी" के रैपर पेज पर दी गयी टिप्पणी में कहा गया है- "भारती की कलम उपन्यासों और कविताओं में गहरी और जटिल मनःस्थितियों के सफल चित्रण के लिए ख्याति पा चुकी है। नाट्कों में उन्होने जीवन के कई पहुलओं को बडे कलात्मक ढ़ंग से उभारा है।.. ...... .मार्मिक क्षणों का चुनाव और उनकी ग्हरी अंतदृष्टि, .व्यापक सहानुभूति और रसमय शैली में नाट्कीय निर्वाह और प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति भारती के एकांकी नाट्कों की अपनी विशेषता है।"[58]

आस्था और आशावादिता भारती के साहित्य के महत्वपूर्ण तत्व रहें है, जिनको हम इन पांच एकांकियों में भी स्पष्ट रुप से देख सकतें हैं। "नदी प्यासी थी" संग्रह की इन पॉच एकांकियो की प्रकृति संक्षिप्त रूप में यों है-

एकांकी	विशेषतायें
1 नदी प्यासी थी	कुल 5 पात्र, स्त्री पात्र 2, आदर्शवादी। वातावरण
घटना काल· 1949 ई0 की बरसात	आधुनिक मच के लिए लिख गया है।
2. नीली झील	कुल 4 पात्र, स्त्री पात्र एक भी नहीं। मूल्य हीनता के युग मे यहाॅ लेखकीय आस्था का प्रकाशन भाषा काव्यात्मक है। मच को दृष्टि में रख- कर ही निर्माण। कुल पृष्ठ 12, सुखान्त
घटना कालः 1950 ई0	
3. आवाज की नीलाम	कुल 2 पात्र, स्त्री पात्रं एक नहीं। एक आदर्शवादी पत्रकार की ट्रेजडी। मंचीयता का तत्त्व मौजूद है। कुल पृष्ठ 10, वस्तु आधुनिक। ट्रेजडीपरक,
घटना कालः स्वातंत्रयोत्तर भारत	
4. संगमरमर पर एक रात	कुल 5 पात्र, स्त्री पात्र 3 ऐतिहासिक एकांकी। दो प्रेम कथाऐं एक साथ चलती हैं मंच के लिए लिखा गया एकाकी। कुल पृष्ठ 31, सुख-दुखान्त
घटनाकाल· जहाॅगीर का शासन	
5. सृष्टि का आखिरी आदमी	रेडियो काव्य-नाटक। प्रधान् पात्र 3 एवं भीड नया सेना के रूप में सामूहिक आवाजें। भाषा 'अंधायुग' की ढंग की है, और वस्तु भी अंधा-युग की तरह लेखकीय आस्था का प्रतिपादन करता है।
घटना कालः अनिश्चित भविष्य	

इस प्रकार देखते है कि भारती के एकमात्र एकांकी संग्रह में सकलित 5 एकांकीयों का अपना-अपना स्वतत्र महत्व हैं। प्रत्येक एकाकी अपनी विशेषताओं के कारण अपना खास महत्व रखते है। अत एकांकी नाट्क के तत्वो के आधार पर इन एकांकियों का विश्लेषण इस प्रकार है-

कथावस्तुः

"नदी प्यासी थी" एकांकी का कथासूत्र 3 दृश्यों में विभाजित है। शंकर और राजेश पुराने दोस्त है। राजेश अपना परिचय इन शब्दों में देता है- "न पॉव तले रेत न सर पर आकाश... जाने किस दुनिया में यह खूँख्रार नदी खींच लाई है और न जाने क्या करने पर तुली है.....।[59]" राजेश के मन में आस्था और अनास्था के बीच का संघर्ष मौजूद है। कथावस्तु में और दो पात्र है- पद्मा और कृष्ण, पद्मा शंकर की साली एवं शीला की छोटी बहिन है। पद्मा और डॉ0 कृष्ण के बीच प्रेमी-प्रेमिका के सम्बन्ध है। किन्तु आर्गे चलकर पद्मा के मन में राजेश को लेकर एक आकर्षण डॉ0 कृष्ण के आकर्षण से भिन्न है। राजेश के चले जाने से पद्मा दुखी हो जाती है। राजेश के चले जाने का कारण पद्मा यह मानती है कि डॉ0 कृष्णा ने ही उसे किसी न किसी बहाने रास्ते से हटाया होगा। पद्मा कृष्णा से घृणा करने लगती है।

किन्तु राजेश फिर लौट आता है। वह लौट आता है, जीवन के प्रति आस्थावान होकर, जीने की एषणा पाकर वह कहता है कि "धूर्तता" और कमजोरी के सामने हारुँगा नहीं मरुँगा नहीं, सौन्दर्य का सृजन करूँगा और सुन्दर बनूँगा। जिन्दगी बहुत प्यारी है बहुत अच्छी है, और आदमी को बहुत काम करना है।"[59]

दूसरी ओर कृष्णा ने नदी की बाढ़ रोकते हुए खुदखुशी कर ली। कथा का अन्त यहीं पर होता है।

नीली झीलः

पहले एकांकी की अपेक्षा "नीली झील" की प्रतीकात्मकता अधिक स्पष्ट रुप से उभर आयी है। इसका प्रधान पात्र है बूढ़ा तांत्रिक जो मनुष्य के गरिमामय अतीत और

इस युग के यंत्र युग के मनुष्य के रुपों के भेद को स्पष्ट करता है।

नीली झील के पास वह बूढ़ा तान्त्रिक, आत्मवान श्रम उठाने वाले लोग ही रहते हैं। जो आत्मावान और परिश्रमी नहीं है उनको यह झील निगल लेती है। यहाँ के दो लोग और बूढ़ा तांत्रिक झील के किनारे खडे है, तभी एक आगन्तुक वहाँ आ जाता हैं। पर्वतो और झीलो को भेंट करने के लिए वह सोना लाया है। वह आगन्तुक व्यक्ति फौलादी सभ्यता में जी चुका है, उसी में उसने जीवन का रस पाया है। फौलादी मशीनो के माध्यम से उसने अन्न, बल, वैभव, तेज बहुत कुछ पाया है किन्तु आत्मा नाम की चीज उसके पास नहीं थी–इस बात से वह वाकिफ न रह सका। बूढे तांत्रिक ने नीली झील के पास आने से उस आगन्तुक को रोंका क्योंकि आगन्तुक की आत्मा घायल और डरी हुई है, उससे दूर चली गयी है।

बूढ़ा तांत्रिक उस आगन्तुक को फिर वही लौटने का परामर्श देता है, जहाँ वह पहले गया था। वहीं जाकर वह मनुष्यता के रस को प्राप्त कर सकता है। अंधे युग के मूल्यहीनता में आस्था एवं आत्मविश्वास की प्राप्ति कर सकता है। यहीं पर एकांकी का अन्त होता है।

आवाज का नीलामः

आवाज का नीलाम एक पत्रकार की कथा है जिसे अपनी पत्नी के इलाज के लिए अपनी "आवाज" नाम की पत्रिका बेचनी पड़ती है। सेठ बाजोरिया यह पत्रिका खरीदता है किन्तु कुछ देर बाद दिवाकर को पता चलता है कि उसकी पत्नी उसे छोडकर स्वर्ग सिधार गयी है। पत्नी की मृत्यु के बाद उसकी आस्था टूटने के बदले अधिक मजबूत बन जाती है। दिवाकर के मन से मुसीबतों, तनावों के नष्ट होने के उपरान्त फिर वह "आवाज" की ओर लौट पड़ता है–अपने घरेलू सम्बन्धों के न रहने के कारण अपने व्यक्तिगत दायरे को लाँघकर पत्रकार के दायित्त्व को निभाने के लिए। स्पष्ट है कि पूर्ववर्ती दो एकांकियो– "नदी प्यासी थी" तथा "नीली झील" में कथावस्तु की पाँचो दशाओं को हम देखते है किन्तु "आवाज का नीलाम" एकांकी आरम्भ से ही अवरोह होते होते एकाएक चरम पर

जा रूकता है। "आवाज का नीलाम" की कथा में अवरोह एव अन्त इन अवस्थाओं को नहीं देखा जा सकता है। एक मानसिक तनाव एव प्रभाव का चरम बिन्दु पर समाप्त होने के कारण इस एकांकी का कथा आलेख अधिक प्रभावशाली बनता है।

संगमरमर पर एक रातः

ऐतिहासिक एकांकी नाटक होने के कारण "संगमरमर पर एक रात" के माध्यम से भारती के एकाकी नाटक साहित्य का एक और आयाम उद्‌घाटित होता है। "संगमरमर पर एक रात" मृत शेर अफगन की पत्नी की कथा है। मेहरूनिशा को अपने मृत पति के प्रति श्रद्धा एवं गर्व है किन्तु जब शहंशाह जहॉगीर उसे चाहते है तो उसकी आस्थाओं में कंपन पैदा होता है। उसके सामने सवाल उठ खड़ा होता है कि शेर अफगन के प्रति एकनिष्ठ रहे या बादशाह के अनुराग को स्वीकृत देकर साम्राज्ञी पद को प्राप्त करे। बीच में मेहरूनिशा की पुत्री लाडली की कथा भी आ मिलती है जो शहंशाह के पुत्र से प्यार करती है। किन्तु मेहर के राजा के प्रति समर्पित होने के कारण अनायास ही लाडली और शहजादे के बीच एक दीवार खडी होती हैं। शहजादा लाडली के जीवन से चला जाता है, मेहरूनिशा जहॉगीर के प्रेम की स्वीकृति देती है। कथा का अन्त यहीं पर होता हे।

सृष्टि का आखिरी आदमीः

अनिश्चित भविष्य काल से सम्बन्ध रखने वाला यह एकांकी एक शहर के माध्यम से यांत्रिक सभ्यता के कारण ध्वस्त जीवन पर प्रकाश डालता है।

काव्य नाटक होने के कारण इस एकांकी का कथातत्व क्षीण है। आतंक, तनाव भरी यांत्रिक सभ्यता से अभिशप्त जीवन और अन्ततः एक मुर्दे के माध्यम से आस्था के स्वर की पुर्नजीवित करना "अन्धायुग" की तरह यहॉ भी लेखक का काम्य रहा है।

चरित्र चित्रणः

चरित्र चित्रण की दृष्टि से यह एकांकी संकलन सफल कहा जा सकता है। भारती के लगभग सभी पात्रों पर आदर्शवादी और भावुकता का प्रभाव है, जिसे अभाव नहीं, एक विशेषता के रूप में ही स्वीकार करना चाहिए।

"नदी प्यासी थी" एकाकी के राजेश, पद्मा और डॉ0 कृष्णा प्रेम और ईर्ष्या के सूत्र में एक दूसरे से बँधें हुए है। एक क्षण ऐसा आता है, जब सामान्य स्तर परजीने वाला डा0 कृष्णा नदी में बढ्ती बाढ को रोकने के लिये अपने आपको समर्पित करता हैं। पद्मा की नजरों से गिरने की अपेक्षा आत्मत्याग का मार्ग वह अपनाता है।

यांत्रिक सभ्यता के प्रभाव ने मानव जीवन के रस की बूँद-बूँद सोख ली है, मूल्यों आस्थाओं को नकारा है, भौतिकतावादी के पर्जो में वह मनुष्य को दवा रहीं है इस बात को स्पष्ट करना झील के तात्रिक की भूमिका है, जो उसके व्यक्तित्व को निखारती है। दूसरी ओर 'नीली झील की आत्माहीन सन्तान' नयी सभ्यता के भौतिकवादी मनुष्य के चारित्रिक विशेषताओं को उभारती है। चरित्र-चित्रण में लेखक द्वारा दिये गये निर्देश भी बहुत कुछ योगदान देते है। बाहरी वेशभूषा के माध्यम से पात्र की व्यक्तिगत विशेषताऐं उभर आती हैं-जैसे झील के तांत्रिक का वर्णन- "झील के रंग की पोशाक, माथें पर रक्त चंदन, बाल भौह तक हिमश्वेत है। पीठ दोहरी हो गयी है। पैर और गर्दन कांपती है।"[60]

"संगमरमर पर एक रात" चरित्र-चित्रण की दृष्टि से सफल एकांकी है। मेहरूनिशा इस एकांकी का प्रधान पात्र है, नायिका है जिसके माध्यम से मुगल कालीन नारी के जीवन को भारती ने चित्रित किया है। "जिन्दगी में इस औरत ने बहुत कुछ खोया है बहुत कुछ पया है।"[61] प्रथमतः वह शेर अफगन की पत्नी रही किन्तु शेर अफगन की मृत्यु के उपरान्त परिपक्व, गम्भीर एवं प्रौढ़ तन मन के लिये सहारा देन वाला कोई न रहा। इसी समय सम्राट जहॉगीर अपने राज वैभव के बल पर उसे अपनी रानी बनाना चाहता है। मानसिक द्वंद एवं संघर्ष के इस बिन्दु पर उसके मन में सतीत्व को पकड़े रहने की बहुत कोशिश करने के बावजूद अपने को रोंक सकती, अन्ततः उसे बादशाह के अनुरोध को स्वीकारना पड़ता है। नारित्व के मानसिक यथार्थ का उद्‌घाटन यहॉ प्रस्तुत घट्ना के माध्यम से उजागर होता है। दूसरी ओर मेहरूनिशा की पुत्री शहजादे से प्रेम करती है किन्तु मेहरूनिशा के इस बदले रूख को देखकर शहजादा उसकी पुत्री को नकारता है। इस प्रकार इस एकांकी के पात्र ऐतिहासिक ही नहीं, शाश्वत सत्य के भी प्रतिनिधि बन गये है।

अनिश्चित काल के भविष्य को उजागर करने के लिए इस संग्रह के अंतिम एकांकी "सृष्टि का आखिरी आदमी" में मुख्यत दो पात्रों की उद्घोषक और वैज्ञानिक की योजना की है। भीड और सेना की सामूहिक ध्वनियों के माध्यम से सामाजिक यथार्थ का उद्घाटन होता है। रेडियों एकांकी होने के कारण पात्रों के दृश्य रूप की अपेक्षा प्रभाव डालने की क्षमता पर लेखक का अधिक जोर रहा है।

संक्षेप में भारती के सभी एकाकी चरित्र-चित्रण की दृष्टि से सफल बने पडे हैं।

संवादः

अपने सभी एकांकियों में भारती ने सवादों की भाषा स्वाभाविक एवं यथार्थ रूप में प्रयुक्त की हैं। पात्रों की मानसिक एवं सामाजिक स्थिति के अनुरूप भाषा होने के कारण सभी एकांकियों के कथोपकथन स्वाभाविक एवं सजीव बने है, जैसे राजेश का यह कथन हैं- "जीनियस और लडकी। यह सर्वथा अर्न्तविरोध है। औरत जीनियस हो ही नहीं सकती है। उसके लिये जिन्दगी का वाह्य सबसे प्रमुख होता है। कामिनी के ही बारे में मैने आपको बताया था। वाह्य परिस्थितियाँ उसके अन्तर के सौंदर्य को नष्ट कर रही है और वह चुपचाप है। यह कोई प्रतिभा है। प्रतिभा विद्रोह करती है, सृजन करती है। नारी केवल प्रसव करती है या प्रसाधन, प्रसव की भूमिका .. क्षमा कीजियेगा। यही है पद्मा इनकी मेज पर कामायनी रक्खी है। लेकिन कामायनी के ऊपर क्या है पाउडर का डिब्बा।"[62]

"संगमरमर पर एक रात" में यह संवादगत स्वाभाविकता और ही निखर आयी है-

"बॉदी : क्या गॉऊ

लाडली : कुछ भी गा।

बॉदी : एक गजल है अमीरकी।

लाडली : (चाव से) कौन सीः

बॉदी : चुशमः सोजा चुजर्र हेरां हमेंशा गिरियॉ व अश्क आं मेह

लाडली : (मुॅह बिचकाकर) ऊँहुँ। फारसी नहीं। कुछ दिल के करीब ही। ये हिन्द की रात, ये हिन्द का चॉद, सल्तनते हिन्द का शहजादा और गीत फारसी......।"[63]

देश काल-वातावरणः

एकांकी लिखते समय भारती ने प्राय रंगमच का ध्यान रखा है। नाट्कीय कथा के आलेख कथा के आलेख को एक निश्चित एवं सीमित काल तथा स्थल पर ही प्रस्तुत करना एकांकी के लिये आवश्यक है। इस दृष्टि से 'नदी प्यासी थी' के प्रथम चारों एकाकी लिखें गये है। स्थल इकाई का पालन "नदी प्यासी थी" एकांकी में तीन-तीन दृश्य होने के बावजूद हुआ है।

"नीली झील" का तांत्रिक भी आरम्भ से लेकर अन्त तक एक ही स्थान पर खडा रहकर कथासूत्र को सचालित करता है। एकांकी में समय की इकाई पर भी ध्यान दिया गया है।

"आवाज का नीलाम" की घट्ना, स्थल अतिसंक्षिप्त एव स्वाभाविक है। पूरी कथावस्तु एक ही कमरे में, एक घंटे भर के दौरान घटित होती है। इस दृष्टि से स्थल एवं काल इकाइयों का आयोजन चारों एकांकियों की अपेक्षा "आवाज का नीलाम" में अधिक सुन्दर बना है।

भाषा एवं शिल्पः

इन पॉच एकांकीयों की भाषा भारती की प्रकृति के अनुरूप सरल, विम्बात्मक एवं काव्यमयी है। "नदी प्यासी थी" एवं "आवाज का नीलाम" की भाषा में व्यहवहार के अंग्रेजी के ब्रश, डियर, स्टीमर, यूनिवरसिटी, कनवोकेशन, पाउडर, स्टेशन, डाक्टर, रिलीफ, मशीन, जीनियसस, अस्पताल, आपरेशन, वाइफ, समथिंगस, सीरियस, पर्सनलस, रिमार्क, शेयर, बाई-गाड आदि शब्दों या वाक्यांशों का सफलता के साथ प्रयोग मिलता हैं "संगमरमर पर एक रात" की भाषा उसी काल के वातावरण निर्माण में सहायक है। प्रस्तुत एकांकी में फारसी मिश्रित हिन्दी का प्रयोग हुआ है और तत्कालीन वातावरण समाज में व्यवहत बॉदी, सलामत, मर्तबा, उज्र, शहरयार, पाकई बादत मंद, बुतपरस्ती आदि फारसी शब्द इस में प्रयुक्त होने के कारण मुगलकालीन वातावरण एवं पात्रों के चित्रण में सहायता मिलती है।

"अधायुग" की तरह इस एकाकी संकलन की भाषा भी विम्बात्मकता, अलंकारयुक्तता यह बिम्ब-मैने सुना था अफ्रीका मे एक नरभक्षी पेड होता है। जहॉ कोई उसके समीप गया उसके पत्ते झुककर लपेट लेते है। और उसके वह अपने जहरीले रेशमी कॉटो से बूँदे-बूँदे खून चूसकर हड्डियो को फेंक देते है। ओरत भी विल्कुल ऐसी ही है।"[64]

"नदी प्यासी थी" में भी ऐसे बिम्ब स्थान-स्थान पर विखरे हुए मिलते है-

"काले गुलाम एक चट्टान उलट रहे हैं। वह सोना बटोर रहा है। चट्टान के नीचे एक फूल की झाडी कुचल गई है।"[65]

"धरती और इनके लोग जैसे बासी सूखी रोटी पर सैकडो चीटियॉ रंग रही हो।"[66]

"अंधायुग" की तरह "सृष्टि का आखिरी आदमी" भी बिम्बों-अलकारों का समृद्ध खजाना है-

"गंदे मेढक से कीचड मे
फुदक-फुदक कर चलतें है ये।
दल के दल ये चले आ रहे
जैसे घृणित प्लेग के चूहे
चले आ रहे हो गलियों में।"[67]

(उपमा)

"उसे सैनिको की गोली ने भून दिया है।
काली काली सड़क खून से लाल हो गई।
उसकी लाश पडी है अब तक।"[68]

(स्वाभावोक्ति)

"मैने अपने राज्य-काल में
सोने से मढ़ दी दीवारें
धरती पर फौलादी चादर चढ़ी हुई है।"[69]

(दृश्य बिम्ब)

"सृष्टि का आखिरी आदमी" की भाषा कहीं कहीं पर "अंधायुग" से भी ज्यादा ग़जनदार हो गई है–

"तुम उस नगर के वासी हो
जिनमें भूखे गीदड नारी के लाशों के सग सोते हैं।"[70]
))))   ))))   ))))
"कक्कुवा काला धुवॉ
झुलसते हुए नगर की
अंतिम चीख पुकारों का दम घोंट रहा है।
लाशें सडे हुए कीचड़ में तैर रही हैं।"[71]

"नदी प्यासी थी" और "अंधायुग" में कहीं–कहीं भाषा एव बिम्ब संवेदना एक जैसी ान गयी है जैसे–

"मेरी इस पखली के नीचे
दो पजे उग आये
मेरी ये पुतलियॉ
बिन दॉतो के चोथ खार्ये
पार्ये जिसे।"[72]

"इसकी पीठ पर सोना है और हाथ में राजदण्ड और यह आत्महीन है। दूर रहें, इसकी छॉह जिस पर पड़ेगी उसकी पसलियो के नीचे पंजे निकल आयेंगे उसके दिमाग में कीड़े रेंगने लगेंगें।"[73]

इस प्रकार "नदी प्यसी थी" में संकलित पॉचों एकांकियों को हम -भाषा की कसौटी र करें तो वे सफल सिद्ध होती हैं।

द्देश्यः

कुल मिलाकर इन एकांकियों को हम सफल कह सकते है। एकांकी साहित्य में र्याप्त विविधता होने के कारण भारती के व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम यहॉ उजागर होते

(दृश्य बिम्ब)

"सृष्टि का आखिरी आदमी" की भाषा कहीं कहीं पर "अंधायुग" से भी ज्यादा वजनदार हो गई है–

"तुम उस नगर के वासी हो
जिनमें भूखे गीदड़ नारी के लाशों के संग सोते हैं।"[70]

))))))))))))

"ककुवा काला धुवॉ
झुलसते हुए नगर की
अंतिम चीख पुकारों का दम घोंट रहा है।
लाशें सडे हुए कीचड में तैर रही हैं।"[71]

"नदी प्यासी थी" और "अंधायुग" में कहीं–कहीं भाषा एवं बिम्ब संवेदना एक जैसी बन गयी है जैसे–

"मेरी इस पखली के नीचे
दो पंजे उग आये
मेरी ये पुतलियॉ
बिन दॉतो के चोथ खायें
पायें जिसे।"[72]

"इसकी पीठ पर सोना है और हाथ में राजदण्ड और यह आत्महीन है। दूर रहें, इसकी छॉह जिस पर पड़ेगी उसकी पसलियो के नीचे पंजे निकल आयेंगे उसके दिमाग में कीड़े रेंगने लगेंगें।"[73]

इस प्रकार "नदी प्यसी थी" में संकलित पॉचों एकांकियों को हम भाषा की कसौटी पर कसें तो वे सफल सिद्ध होती हैं।

उद्देश्यः

कुल मिलाकर इन एकांकियों को हम सफल कह सकते है। एकांकी साहित्य में पर्याप्त विविधता होने के कारण भारती के व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम यहॉ उजागर होते

हैं। इन सभी एकाकियों में से “सगमरमर पर एक रात” वातावरण, पात्र, लक्ष्य की दृष्टि से अलग है। शेष एकाकियों में प्रथम में आस्था-अनास्था के सघर्ष के साथ-साथ यांत्रिक सभ्यता के दुष्परिणाम और रोमांटिक प्रतृत्ति को, दूसरे में प्रयोग एवं यात्रिक सभ्यता एव नये मूल्यो में अनास्था, तीसरे (“आवाज का नीलाम”) में आदर्शवादी युवा पत्रकार से भ्रष्टाचार की नीति एवं पूँजीपतियों के षडयन्त्र, अन्तिम एकाकी-(“सृष्टि का आखिरी आदमी”) में काव्यमयी भाषा में नयी सभ्यता की अस्वीकृति इन थीमों का उद्‌घाटन हुआ है।

“नदी प्यासी थी” एकाकी का यह कथन लेखक की अपने परिवेश के प्रति प्रतिबद्धता को स्वीकृत देता है- “मै जब कभी सोंचता हूँ कि इस धरती पर करोड़ों आदमीनुमा कीड़े रेंगतें है और नारकीय जिन्दगी बिताते हैं तो मेरा मन गुस्सा और तरस से भर जाता है। ये, हम सब, क्या है हमारी जिन्दगी का माने करोडों साल से हम सितारों की छॉह में धरती पर अपने पद-चिन्ह बनाते हुए चले आये हैं। मगर है हम सब भी कीड़े के कौडे।”[74]

किन्तु निराशा में आशा- “तमसोमाज्योतिर्गमय”-वाला भारती का स्वभाव है इसीलिए वे फिर से घोषित करते है- “इसीलिए मैं जिन्दगी में वापस लौट आया कि क्रूरता ओर कमजोरी के सामने हारूँगा नहीं, मरूँगा नहीं, सौन्दर्य का सृजन करूँगा और सुन्दर बनूँगा जिन्दगी बहुत प्यारी है, बहुत अच्छी और आदमी को बहुत काम करना है।”[75]

“नीली झील” का महत्व एक प्रयोग के रूप में भी है।

“संगमरमर पर एक रात” में दो प्रेमकथाओं के माध्यम से भारती ने मुगल कालीन समाज व्यवस्था पर प्रकाश डाला है, तो “सृष्टि का आखिरी आदमी” नये ढ़ंग का रेडियों रूपक है।

संक्षेप में भारती के एकांकी थोड़े ही है किन्तु विषय एवं महत्व की दृष्टि से वे निश्चित ही बडे है। एकांकी के तत्वों एवं रंगमंच की गहरी समझ भारती को है, यह बात इन एकांकियों के द्वारा स्पष्ट हो जाती है। काव्यरुपी भाषा, पात्रों के मनोवैज्ञानिक, सामाजिक चित्रण, संकलन त्रयों का उपयोग, कथानक का गठन आदि के दृष्टिकोण से

"नदी प्यासी थी" एकाकी संकलन हिन्दी एकाकी साहित्य की एक महत्वपूर्ण उपलविध है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि हिन्दी नाट्य साहित्य में नाटककर के रूप में भारती का अपना विशिष्ट स्थान है। "अंधायुग" महाभारत के युद्धोपरान्त वाली उन्हीं स्थितियों के माध्यम से भारती ने युगीन भय, अनास्था, कुठा और मूल्यहीनता को अभिव्यक्ति दी है जो इस देश को नहीं, सम्पूर्ण विश्व को भोगनी पडती है- भोगनी पड रही है। अतः "अंधायुग" भारती की ही नहीं, समूचे हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

"नदी प्यासी थी" में भारती एक सफल एकांकी लेखक हैं। प्रत्येक एकांकी रूप एवं रचना की दृष्टि से भिन्न है। यह विभिन्नता भारती के रचना-कौशल के साथ-साथ हिंदी नाट्य जगत में नई सम्भावनाओं का सकेत देती है।

संदर्भ संकेत

1 डॉ0 नामवर सिंह – आलोचना पत्रिका, 1967 ई0 पृ0 63, राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0, नई दिल्ली।

2 डॉ0 कृष्णदत्त पालीवाल – धर्मवीर भारती/सम्पा0 डॉ0 लक्ष्मण दत्त गौतम पृ0 123 तथा 137,

3. डॉ0 बच्चन सिंह – हिंदी नाटक पृ0 201।, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0–1989

4 डॉ0 धर्मवीर भारती – अधायुग पृ0 6 एवं 7, किताब महल, इलाहाबाद, सं0–1983

5. डॉ0 लक्ष्मी नरायण लाल आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच पृ0–101; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, सं0–1976

6 डॉ0 धर्मवीर भारती अधायुग पृ0 6, किताब महल, इलाहाबाद; सं0–1983

7 डॉ0 धर्मवीर भारती · अंधायुग पृ0 12, किताब महल, इलाहाबाद; सं0–1983

8. डॉ0 धर्मवीर भारती : अंधायुग पृ0 14, किताब महल, इलाहाबाद, स0–1983

9. डॉ0 धर्मवीर भारती : अंधायुग पृ0 17, किताब महल, इलाहाबाद; स0–1983

10. डॉ0 धर्मवीर भारती : अधायुग पृ0 23–24, किताब महल, इलाहाबाद; सं0–1983

11 डॉ0 धर्मवीर भारती . अंधायुग पृ0 26; किताब महल, इलाहाबाद; सं0–1983

12. डॉ0 धर्मवीर भारती : अंधायुग पृ0 36; किताब महल, इलाहाबाद, सं0–1983

13. डॉ0 धर्मवीर भारती : अंधायुग पृ0 54; किताब महल, इलाहाबाद, सं0–1983

14. डॉ0 धर्मवीर भारती : अंधायुग पृ0 55; किताब महल, इलाहाबाद; सं0–1983

15. डॉ0 धर्मवीर भारती : अंधायुग पृ0 57; किताब महल, इलाहाबाद; सं0–1983

16. डॉ0 धर्मवीर भारती : अंधायुग पृ0 64; किताब महल, इलाहाबाद, सं0–1983

17. डॉ0 धर्मवीर भारती : अधायुग पृ0 94; किताब महल, इलाहाबाद; सं0–1983

18. डॉ0 धर्मवीर भारती : अंधायुग पृ0 109; किताब महल, इलाहाबाद; सं0–1983

19. डॉ0 धर्मवीर भारती : अंधायुग पृ0 107; किताब महल, इलाहाबाद; सं0–1983

20. डॉ0 धर्मवीर भारती : अंधायुग पृ0 107; किताब महल, इलाहाबाद; सं0–1983

21 डॉ0 धर्मवीर भारती अधायुग पृ0 109, किताब महल, इलाहावाद, स0-1983

22. डॉ0 धर्मवीर भारती अधायुग पृ0 117, किताव महल, इलाहावाद, स0-1983

23 डॉ0 धर्मवीर भारती अधायुग पृ0 6, किताब महल, इलाहावाद, स0-1983

24 डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी नयी कविताएँ एक साक्ष्य पृ0 108, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र0सं0-1976

25 डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी नयी कविताएँ एक समय पृ0 104, किताब महल, इलाहाबाद, सं0-1983

26 डॉ0 धर्मवीर भारती : अंधायुग पृ0 7; किताब महल, इलाहाबाद; सं0-1983

27. डॉ0 धर्मवीर भारती : अधायुग पृ0 15, किताब महल, इलाहाबाद, सं0-1983

28. डॉ0 धर्मवीर भारती . अधायुग पृ0 120; किताब महल, इलाहाबाद; सं0-1983

29 डॉ0 धर्मवीर भारती : अंधायुग पृ0 16; किताब महल, इलाहाबाद, स0-1983

30. डॉ0 धर्मवीर भारती : अंधायुग पृ0 18, किताब महल, इलाहाबाद, सं0-1983

31. डॉ0 धर्मवीर भारती : अधायुग पृ0 96; किताब महल, इलाहाबाद, सं0-1983

32. डॉ0 धर्मवीर भारती · अधायुग पृ0 16, किताब महल, इलाहाबाद, सं0-1983

33. डॉ0 देवीशंकर अवस्थी विवेक के रंग पृ0 394

34 अंधायुग : डॉ0 धर्मवीर भारती पृ0 14, किताब महल, इलाहाबाद, सं0-1983

35. अंधायुग : डॉ0 धर्मवीर भारती पृ0 16; किताब महल, इलाहाबाद, सं0-1983

36. डॉ0 धर्मवीर भारती : अंधायुग पृ0 16, किताब महल, इलाहाबाद; सं0-1983

37. डॉ0 धर्मवीर भारती : अंधायुग पृ0 63; किताब महल, इलाहाबाद; सं0-1983

38. डॉ0 धर्मवीर भारती : अंधायुग पृ0 70, किताब महल, इलाहाबाद; सं0-1983

39. डॉ0 धर्मवीर भारती अधायुग पृ0 14; किताब महल, इलाहाबाद, सं0-1983

40. डॉ0 धर्मवीर भारती . अंधायुग पृ0 19; किताब महल, इलाहाबाद; सं0-1983

41. डॉ0 धर्मवीर भारती · अंधायुग पृ0 33; किताब महल, इलाहाबाद, सं0-1983

42. डॉ0 धर्मवीर भारती : अंधायुग पृ0 42; किताब महल, इलाहाबाद; सं0-1983

43. डॉ0 धर्मवीर भारती : अंधायुग पृ0 29; किताब महल, इलाहाबाद; सं0-1983

44. डॉ0 धर्मवीर भारती : अंधायुग पृ0 38-39; किताब महल, इलाहाबाद; सं0-1983

45 डॉ0 धर्मवीर भारती अधायुग पृ0 102, कितव महल, इलाहावाद, स0-1983

46 डॉ0 धर्मवीर भारती अंधायुग पृ0 35-36, किताव महल, इलाहाबाद, स0-1983

47 डॉ0 धर्मवीर भारती अधायुग पृ0 14, किताब महल, इलाहाबाद, स0-1983

48 डॉ0 धर्मवीर भारती अधायुग पृ0 23, किताब महल, इलाहाबाद, स0-1983

49 डॉ0 धर्मवीर भारती अधायुग पृ0 15, किताब महल, इलाहाबाद, स0-1983

50 डॉ0 धर्मवीर भारती अधायुग पृ0 15, किताब महल, इलाहाबाद, स0-1983

51 डॉ0 देवीशकर अवस्थी विवेक के रग (सपा0) में संकलित डॉ0 सुरेश अवस्थी का लेख 'वस्तुयोजना और रंग-विधान की पारस्परिक विसगति' से उद्‌धृत पृ0 394; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0-1977

52. तदैव : पृ0 397

53 धर्मवीर भारती . (संपा0) लक्ष्मणदत्त गौतम। इन्द्रनाथ मदान का लेख। पृ0 117; कुमार प्रकाशन, 20/15 मोती नगर, नई दिल्ली-15; प्र0सं0 जुलाई 1974

54. तदैव : पृ0 129, कुमार प्रकाशन, 20/15 मोती नगर, नई दिल्ली-15, प्र0सं0 जुलाई 1974

55. तदैव : डॉ0 प्रेमपति का लेख पृ0 117, कुमार प्रकाशन, 20/15 मोती नगर, नई दिल्ली-15; प्र0सं0 जुलाई 1974

56. धर्मवीर भारती : (संपा0) डॉ0 लक्ष्मणदत्त गौतम, डॉ0 प्रेमपति का लेख पृ0 178;; कुमार प्रकाशन, 20/15 मोती नगर, नई दिल्ली-15; प्र0सं0 जुलाई 1974

57 डॉ0 धर्मवीर भारती . नदी प्यासी थी; किताब महल 560, जीरो रोड इलाहाबाद पृ0-1 भूमिका से; -प्र0सं0-1954

58. डॉ0 धर्मवीर भारती : नदी प्यासी थी; किताब महल 560, जीरो रोड इलाहाबाद प्र0 सं0- पृ0-1 भूमिका;

59 डॉ0 धर्मवीर भारती : नदी प्यासी थी; पृ0 31, किताब महल-560, जीरो रोड इलाहाबाद

60 डॉ0 धर्मवीर भारती : नदी प्यासी थी; पृ0 5; किताब महल 560, जीरो रोड इलाहाबाद

61. डॉ0 धर्मवीर भारती : नदी प्यासी थी; पृ0 31; किताब महल 560, जीरो रोड इलाहाबाद

62 डॉ0 धर्मवीर भारती नदी प्यासी थी, पृ0 21, किताब महल 560, जीरो रोड इलाहाबाद

63 डॉ0 धर्मवीर भारती नदी प्यासी थी, पृ0 73; किताब महल 560, जीरो रोड इलाहाबाद

64 डॉ0 धर्मवीर भारती नदी प्यासी थी, पृ0 20, किताब महल 560, जीरो रोड इलाहाबाद

65 डॉ0 धर्मवीर भारती नदी प्यासी थी, पृ0 45-46, किताब महल 560, जीरो रोड इलाहाबाद

66 डॉ0 धर्मवीर भारती नदी प्यासी थी, पृ0 90, किताब महल 560, जीरो रोड इलाहाबाद

67 डॉ0 धर्मवीर भारती . नदी प्यासी थी, पृ0 102; किताब महल 560, जीरो रोड इलाहाबाद

68 डॉ0 धर्मवीर भारती · नदी प्यासी थी, पृ0 106; किताब महल 560, जीरो रोड इलाहाबाद

69. डॉ0 धर्मवीर भारती . नदी प्यासी थी; पृ0 108; किताब महल 560, जीरो रोड इलाहाबाद

70. डॉ0 धर्मवीर भारती नदी प्यासी थी, पृ0 112; किताब महल 560, जीरो रोड इलाहाबाद

71. डॉ0 धर्मवीर भारती · नदी प्यासी थी, पृ0 117; किताब महल 560, जीरो रोड इलाहाबाद

72. डॉ0 धर्मवीर भारती : नदी प्यासी थी; पृ0 38, किताब महल 560, जीरो रोड इलाहाबाद

73. डॉ0 धर्मवीर भारती : नदी प्यासी थी; पृ0 44, किताब महल 560, जीरो रोड इलाहाबाद

74. डॉ0 धर्मवीर भारती : नदी प्यासी थी; पृ0 13, किताब महल 560, जीरो रोड इलाहाबाद

75. डॉ0 धर्मवीर भारती : नदी प्यासी थी; पृ0 31; किताब महल 560, जीरो रोड इलाहाबाद

षष्ठम् अध्याय

डॉ0 धर्मवीर भारती का साहित्य-चिंतन तथा गद्य की विभिन्न विधाओं में लेखन

आधुनिक हिन्दी साहित्य के रचनाकार-समीक्षकों में डॉ0 धर्मवीर भारती का गौरवपूर्ण स्थान है। कवि, कथाकार, नाट्ककार, उपन्यासकार, निबंधकार, पत्रकार के साथ-साथ डॉ0 भारती एक समर्थ समीक्षक भी हैं। 'प्रगतिवाद एक समीक्षा' 'मानवमूल्य और साहित्य' 'सिद्ध साहित्य' (शोधपरक) जैसी आलोचनात्मक कृतियों से डॉ0 भारती का साहित्य चिंतन उनके समीक्षात्मक ग्रंथों के अतिरिक्त काव्यरचनाओं के भूमिका भाग, वक्तव्यों, प्रक्कथनों में भी सहज रूप से देखा जा सकता है।

डॉ0 धर्मवीर भारती का भाव-प्रवण रचनाकार व्यक्तित्त्व उनकी आलोचनात्मक कृतियों तथा वक्तव्यों में द्रष्टव्य है। क्षण की महत्ता, काव्य-उपलब्धि, सृजन के विभिन्न रूप तथा रचना की समस्याओं से पाठकों को अपनी काव्य रचनाओं तथा गद्य कृतियों की भूमिकाओं से परिचित कराने का अथक यत्न डॉ0 भारती ने की है। इस प्रकार रचनाकार समीक्षक डॉ0 भारती की साहित्य चिंतन संबंधी पद्धति को समझने के लिए उनकी आलोचनात्मक कृतियों पर विचार विश्लेषण करना आवश्यक है।

प्रगतिवाद एक समीक्षा (1949 ई0):

आलोचना-साहित्य में डॉ0 धर्मवीर भारती द्वारा रचित "प्रगतिवाद एक समीक्षा" का विशिष्ट स्थान है। प्रस्तुत रचना का शीर्षक से ही ज्ञात हो जाता है कि रचनाकार ने इसमें प्रगतिवाद सम्बन्धी कुछ स्वयं की अनुभूति को विश्लेषित किया है, यद्यपि डॉ0 धर्मवीर भारती का मार्क्सवादी विचारधारा से दूर-दूर तक कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। मार्क्सवादी धारणा का खुलकर विरोध किया है, मजाक उडाया है। उदाहरणस्वरूप "पिछले तीन-चार वर्षो में मार्क्सवाद के अध्ययन से मुझे जितनी शांति, जितना बल और जितनी आशा मिली है, हिन्दी की मार्क्सवादी समीक्षा और चिन्तन से उतनी ही निराशा और असन्तोष। अपने समाज, अपनी जन संस्कृति और उसकी परम्पराओं से वे नितान्त अनभिज्ञ रहे हैं। अतः उनके निष्कर्ष ऐसे ही रहे हैं कि उन पर या तो रोया जा सकता है

या दिल खोलकर हसा जा सकता है।"[1]

प्रस्तुत समीक्षा ग्रन्थ को कुछ आलोचकों ने असतुलित एव अवैज्ञानिक बताया है। परन्तु किसी भी रचना या रचनाकार को समझने, परखने के लिए उसके गुण-दोषों पर पहले विचार कर लेना चाहिए। एक विद्वान ने 'प्रगतिवाद' एक समीक्षा के आधार पर डॉ0 धर्मवीर भारती को नितान्त अपरिपक्व तथा आवेगप्रवण घोषित किया है। उनका विचार इस प्रकार है, "प्रगति को अपना 'ईमान' घोषित करने वाले धर्मवीर भारती ने 'प्रगतिवादः एक समीक्षा' में अनुभव-चिंतन की जो भूमिका प्रस्तुत की है वह नितान्त अपरिपक्व तथा आवेगप्रवण है- संतुलन तथा वैज्ञानिकता का इसमें नितान्त अभाव है। पुस्तक के प्रारम्भ से ही भ्रान्ति की शुरूआत हो जाती है और अन्त तक पाठक को भटकाती रहती है। सम्भावना यह थी कि अपने 'ईमान को जाहिर करने के लिए भारती' 'प्रगति' और 'प्रगतिवाद' के स्वरूप विज्ञान को-अपने तरीके से ही सही रूपायित करेगा और इन महत्वपूर्ण किन्तु अनिवार्य तत्वों को अपना मौलिक आधार प्रस्तुत करेगा, प्रगति के नाम पर उसका इशारा कहीं और है, अपनी सिद्धांत-स्थापना में वह किसी न किसी रूप में प्रतिगामी शक्तियों से जुडा नजर आता है।"[2]

"प्रगतिवाद एक समीक्षा" प्रगतिवाद का स्वरूप विश्लेषण किस हद तक विवेचित हो सका है इसके लिए हमें कृति की विषय-वस्तु से अवगत होना पड़ेगा। रचना की भूमिका से रचनाकार की मान्यता का पता चल जाता हैं। डॉ0 धर्मवीर भारती किसी भी प्रवृत्ति विशेष को किसी 'वाद' के घेरे में बाँधने के पक्षधर नहीं है। डॉ0 भारती मार्क्सवादी विचार धारणा के प्रति अंधविश्वास तथा विरोध दोनों स्थापनाओं को अस्वीकार करते हैं। उनके अनुसार "मैं प्रगतिवाद के उन निन्दकों का विरोधी हूँ जो मार्क्सवाद के व्यापक उद्देश्य को समझे बिना रूसी साहित्य का अध्ययन किए बिना, प्रगतिवाद के खिलाफ गुहार मचाते है। मैं प्रगतिवाद के उन समर्थकों का भी विरोधी हूँ जो भारतीय परिस्थितियों, भारतीय परम्पराओं और भारतीय साहित्य की आत्मा को पहचाने बिना अपने पूर्व-निर्धारित सिद्धान्त साहित्य पर लादना चाहते है। ऐसे समर्थक न केवल प्रगतिवाद का नुकसान करते हैं वरन् हिन्दी के मार्ग में भी खतरे बिछा देते है।"[3]

'प्रगतिवाद : एक समीक्षा' में विषय-प्रवेश, रूसी साहित्य में प्रगतिवादी धारा, प्राचीन, स्थायी और शाश्वत साहित्य तथा प्रगतिवादी प्रयोग, क्या प्राचीन राष्ट्रीय इतिहास पर लिख गया साहित्य पलायनवादी है? प्रगतिवाद और रोमांटिक प्रेम, राजनीतिक अनुशासन और साहित्य, क्या मुक्ति का कोई मूल्य नहीं हैं? धर्म, ईश्वर, वैयक्तिक अध्यात्म साधना और सोवियत साहित्य, प्रगतिवाद साहित्य के नाम पर गन्दी अश्लीलता, कलाकार किसी का मानसिक गुलाम नहीं बनेगा, तरूण कलाकारों से, तथा परिशिष्ट शीर्षक निबन्ध प्रस्तुत है जो वस्तुत: एक ही विषय से सम्बन्धित है।

डॉ0 धर्मवीर भारती ने विषय-प्रवेश में प्रगतिवादी साहित्य से आभिप्राय को प्रस्तुत किया है तथा मार्क्सवादी जीवन-दर्शन के समाज और सभ्यता को परिवर्तनशीलता की ओर संकेत किया है। लेखक ने मार्क्सवादी धारणा से कला की उत्कृष्टता जन आन्दोलन तथा नवजीवन के विकास में अस्वीकार किया है। डॉ0 भारती ने रचनाओं में साधारण जनता की समस्याओं से अवगत कराने पर ऐसे रचनाकार को प्रतिक्रियावादी तथा पलायनवादी घोषित किया है। जिस उद्देश्य से मार्क्स एवं गोर्की ने साम्यवादी विचारधारा का प्रचार-प्रसार किया था, उसे इनके समर्थकों नें एकागी, संकीर्ण तथा खोखला बना दिया। रचनाकार ने भारतवर्ष में पदार्पण करने वाले प्रगतिवाद को 'दुर्भाग्यपूर्ण' कहा है तथा उसका व्यक्तिगत विचार रहा है कि प्रगतिवादी कहे जाने वालों में इसकी मूल चेतना का अभाव है। यही कारण है कि इससे विशुद्ध साहित्य परम्परा में गतिरोध हुआ तथा दलबन्दी का विकास हुआ।

'रूसी साहित्य में प्रगतिवादी धारा' के अन्तर्गत लेखक ने रूसी राज्य क्रान्ति से पहले के स्वच्छन्दतावाद तथा बाद के मार्क्सवादी विचारधारा के विकास का अवलोकन करते हुए भारत में प्रगतिवाद के प्रचार का विवेचन किया है। डॉ0 भारती ने आरम्भ में ही छायावाद की व्यापकता की ओर पाठकगण का ध्यान केन्द्रित कराया है। प्रगतिवाद तथा मार्क्सवाद के सम्बन्ध में लेखक का विचार है कि रूसी साहित्य के विस्तृत अध्ययन से ही हम भारतीय प्रगतिवादियों का संकीर्णता तथा रूसी रचनाकारों की मानसिक उदारता का अन्तर हम समझ सकते है।

'प्रगतिवाद और रोमाण्टिक प्रेम' में लेखक का रोमाटिक भाव उजागर हुआ है। भारती मूलत रोमांटिक रचनाकर्मी है। भारती के काव्य, उपन्यासों कहानियों तथा आलोचनाओं में इनका रूमानी भाव सहज रूप से देखा जा सकता है; लेखक प्रगतिवाद और रोमांटिक प्रणयानुभूति से युक्त काव्यों का आधार बनाकर रूसी साहित्य के साथ-साथ हिन्दी आलोचना को भी गति प्रदान करता है। डॉ० धर्मवीर भारती का कथन है, "लेकिन सच बात तो यह है कि प्रेम-भावना और उसका हल्का, सूक्ष्म और रोमानी स्वरूप न आज तक मर पाये हैं और न मर पायेंगे। यह एक शाश्वत भूख है; एक ऐसी भूख है जो कभी न बुझ पाई है, न कभी बुझ पायेगी। वह एक ऐसा फूल हैं जो लहरों के थपेड़े खाकर भी लहरों के सर पर मुकुट की तरह चढा रहता है।"[4] लेखक ने रोमाटिक कवि येसेनिन तथा प्रगतिवादी कवि मायकावस्की की रचनाओं में तुलना की है। रोमांटिक कवि येसेनिन जो जनसाधारण का कवि है, उसकी अद्‌भुत प्रतिभा से डॉ० धर्मवीर भारती अत्यन्त प्रभावित है। भारती उनके विषय में कहते है- "वह गाता था तो रूस का हृदय, रूस की धरती गा उठ्ती थी। वह रूस के हरे भरे खेतों पर नीलम के पंख फैलाकर उतरने वाली पावस संध्या का गायक था वह जौ की बालियों से ज्यादा दुबली पतली सुकुमार रूसी कन्याओं के दोशीला रूप का गायक था। वह खेत खलिहान गांव की डगर और चौपालों की छांह में पलने वाली रूसी किसान की मदभरी, सुकुमार और करूण अनुभूतियों का गायक था।"[5] मायवास्की के सर्मथकों ने प्रतिक्रिया स्वरूप येसेनिन की प्रेम-परक शैली का विरोध किया परिणामस्वरूप येसेनिन के अन्तिम दिन बड़े ही बुरे कटे। अन्ततः उसे आत्महत्याकरने पर विवश कर दिया गया है। परन्तु प्रेम, शाश्वत होता है, लेखक को विश्वास है, "आने वाली रूसी कविता में फिर एक बार रूसी मधुमास की सुबह की ताजगी, उडते हुए बादलों का हल्कापन और पालकों के आंसुओं की चचक झलकेगी। प्रेम की दिशा सृष्टि के प्रथम दिवस से कविता को अनिवार्य दिशा रही है और सृष्टि के अन्तिम दिवस तक रहेगी।"[6]

'तरूण कलाकारों' से शीर्षक निबन्ध मे धर्मवीर भारती ने युद्ध, अकाल, अनैतिकता एवं संघर्ष के फलस्वरूप नीरसपूर्ण जीवन का प्रस्तुतीकरण करते हुए संक्रान्तिकाल, वस्तुस्थिति के प्रति रचनाकार के दायित्व का बोध चित्रित किया है,

'परिशिष्ट' में रूसी साहित्य में वैयक्तिक चरित्र-चित्रण एव मनोविज्ञान, राजनीति एव साहित्य तथा मार्क्सवादी विचारधारा को सक्षिप्त रूप से निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

डॉ0 धर्मवीर भारती की विचार-दृष्टि किसी विशेष 'वाद' से संपक्त नहीं है। वह समता की बात करते हैं। वह मानव के सुख एवं मगल की कामना करते है। भारती मानवता के पक्षपाती हैं। उन्होने 'प्रगतिवाद एक समीक्षा' की भूमिका में स्वय कहा है- "मानवता को प्यार करने वाले एक ईमानदार कलाकार के नाते प्रगति मेरा ईमान है, मेरी कलम की जवानी है, लेकिन अपनी आत्मा में जिस सत्य का साक्षात्कार करता हूँ उसे निर्भीकता से आगे रखना मेरा कर्तव्य है। जहॉ तक कम्युन्ष्टि प्रगतिवाद का सम्वन्ध है उसके अन्दर जो संकीर्णताएँ है, जहॉ तक अपने में सिमटा हुआ भारत की सास्कृतिक परम्परा से दूर, मानव जीवन के विशाल कैनवास से अनजान, एक कट्टर राजनीतिक मजहब का रूप धारण कर लेता है प्रगतिवाद के समर्थन में आवाज उठानी पडती है, क्योंकि मैं देख रहा हूँ 'वाद' की जंजीरों ने 'प्रगति' के कदम जकड़ लिए हैं।"[7]

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि डॉ0 धर्मवीर भारती का रोमांटिक अन्दाज हर जगह व्याप्त है। वस्तुत· आलोचना में भारती की किशोरवस्था का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। लेखक अपने को भारतीय जीवन-परिवेश, संस्कृति को भी नहीं भुला पाते हैं इसका साक्षात् मूर्तरूप 'प्रगतिवाद· एक समीक्षा' में देखने को मिलता है।

मानव-मूल्य और साहित्य (1950 ई0):

आधुनिक हिन्दी समीक्षकों में डॉ0 धर्मवीर भारती ही एकमात्र आलोचक हैं, जिनकी विचार दृष्टि प्रायः मूल्यों पर आधारित रही है। डॉ0 धर्मवीर भारती ने अपनी कृतियों में परम्परागत तथा युगबोध को संयुक्त रूप से देखने को मिल जाती हैं। वस्तुतः लेखक ने प्रस्तुत आलोचना ग्रंथ में मूल्यों के मानवीय तथा साहित्यिक सन्दर्भ को विस्तारपूर्वक चित्रित करने का अथक प्रयास किया है।

डॉ0 भारती मूल्यों का महत्व स्थापित करते हुए कहते हैं, "मानवीय संस्कृति का विकास केवल नये बाँध नहीं देने, नये नगरों का विकास नहीं है, वह मानव की

आंतरिकता का विकास है जो दर्शन, चिंतन, कला, सगीत, साहित्य, स्थापत्य, अर्थ और राजनीतत के क्षेत्रों में मूल्य के नित नये नवीन विकास को नियोजित करता है।"[8] इसी सन्दर्भ में पुन उनका विचार है, "यह उसी सांस्कृतिक व्यवस्था में सम्भव है। जहा प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है और अपने दायित्व को खोजकर उससे अपनत्व अनुभव कर, उसे अपना स्वधर्म मानकर उसी में अपने अस्तित्व की सार्थकता मरनता है।"[9] इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रस्तुत समीक्षा ग्रन्थ में लेखक ने राजनीतिक वनाम सास्कृतिक व्यवस्था की रूपरेखा चित्रित किया है जिसमे व्यक्ति की स्वतन्त्रता, मानव-गरिमा आदि मूल्यों का नूतन विकास होता रहेगा।

डॉ0 धर्मवीर भारती की समीक्षा के क्षेत्र में 'मानव मूल्य और साहित्य' एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। प्रस्तुत समीक्षा ग्रन्थ को विषय-वस्तु को दृष्टि से तीन खण्डो में विभक्त किया गया है। प्रथम खण्ड में 'मानवीय तत्वों के विघटन है', द्वितीय खण्डमेंनयी मर्यादा का उदय चित्रित किया है तथा तृतीय खण्ड में 'नये मूल्यों और विविध सन्दर्भ' विश्लेषित किया गया है। डॉ0 धर्मवीर भारती ने भूमिका भाग में मानवीय संकट, विघटन को साहित्य से संपृक्त बनाने का प्रयास किया है। यथा-"जब हम मानव मूल्य की बात करते है तो हमारा तात्पर्य क्या है, यह समझ लेना आवश्यक है। अपनी परिस्थितियां, इतिहास-क्रम और काल प्रवाह के सन्दर्भ में मनुष्य की स्थिति क्या है और महत्व क्या है-वास्तविक समस्या इस बिन्दु से उठती है। ज्यों-ज्यों हम आधुनिक युग में प्रवेश करते गये, त्यों-त्यों इस मानवोपरि सत्ता का अवमूल्यन होता गया। मनुष्य की गरिमा का नये स्तर पर उदय हुआ और माना जाने लगा कि मनुष्य अपने में स्वतः सार्थक और मूल्यवान है-वह आंतरिक शक्तियों से सम्पन्न चेतन-स्तर पर अपनी नियति के निर्माण के लिए स्वतः निर्णय लेने वाला प्राणी है।"[10]

डॉ0 धर्मवीर भारती ने मानववाद का विस्तृत चित्रण 'अन्तरात्मा के ध्वंसावशेष' में किया है। भारती ने द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण पश्चिमी देशों मे व्याप्त स्थिति का अवलोकन करते हुए मानव की सर्वोच्चता का विश्लेषण किया है। युद्धोपरान्त मानवीय गौरव को स्वीकारा गया। इसी सदी में मानव को स्वतन्त्र, सचेत एवं दायित्व मुक्त मानने

के साथ-साथ उरो अपनी नियति, मूल्यों एव इतिहास का सर्जक माना गया तथा मानव के लिए बुद्धि एव मनोबल को सर्वोच्च तथा अपराजेय घोपित किया गया। डॉ0 धर्मवीर भरती के शब्दो में, "अन्तरात्मा वस्तुत आधुनिक सन्दर्भ में मानवीय गौरव के प्रति हमारी जागरुक संवेदना का प्र्याय है, और मानवीय गौरवकी प्रतिष्ठा इसी में हे कि मनुष्य को हम विवेक और संकल्प- शक्ति से मुक्त इतिहास का निर्माता और अपनी नियति का अधिनायक मानें।"[11] प्रस्तुत अध्याय में ही मूल्यों को आधर स्तम्भ वनाकर मानव सम्बन्धित विविध विचार-दृष्टि को प्रस्तुत किया गया है। इसमें अवर्तमान मनुष्य, विच्छिन्न मनुष्य, विकल्पहीन. संकल्पहीन मनुष्य, कम और क्रमभग्न मनुष्य उपशीर्षकों के अन्तर्गत विस्तृत चित्रण हुआ है। डॉ0 प्रेमपति ने तीखाव्यंग प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार, "शुरु से आखिरी तक मानव मूल्य और साहित्य' में भारती की विडम्बना यही रही कि चूँकि मार्क्सवाद को बराबर अवांछनीय बताया, अतएव एकाध जगह पूँजी वाद को भी आवांछनीय बताना पड़ा। लेकिन उसी पूँजीवाद से सारी की सारी मूल्य-प्रणाली ले ली और निंस्संकोच उन्हीं मूल्यों को सार्वभौम घोषित कर दिया। पता नहीं विज्ञान के प्रति उनकी समझ कितनी वैज्ञानिक है, अपनी इस 'मूल्य सोच' को विशुद्ध वैज्ञानिक ठहरा दिया।"[12]

'सृजन का क्षण' में यह माना गया है कि सृजन का क्षण विवेचित रिक्तता, विघटन तथा विच्छिन्नता के क्षण से प्रायः अलग होता है। उसमें प्रत्ये क्षण में संगति, अर्थ और क्रम विद्यमान होता है। डॉ0 धर्मवीर भारती का विश्वास है- "झूठी शाश्वतता और निश्चयात्कता के अंधकारपूर्ण आश्वासनों का तिरस्कार कर हम मानवीय गरिमा को प्रतिष्ठा और मानव मूल्यों की खोज और उन्हें आत्मसात करने की प्रक्रिया द्वारा क्षण को अर्थवान बनाते है।[13] इस तरह मानव मूल्यों की खोज लगातार होती रहती है, ऐसी स्थिति में ही सृजन का क्षण सम्भव है। "भारती ने प्रगति प्रसंग में समानता की स्थापना और मानवीय गरिमा को प्रष्ठिा को अन्योन्याश्रित मानते हुए इन्हें अविच्छिन्न मूल्य घोषित किया है। इसीलिए विवेक और साहस के मार्ग को दुष्कर मानते हुए इसकी अनिवार्यता प्रतिपादित की है।"[14]

दूसरा खण्ड 'नयी मर्यादा का उदय' में साहित्य, प्रगति, आचरण, स्वातन्त्रय आदि

मर्यादाओं के साथ नूतन दायित्व का परिचय है। प्रत्येक मर्यादा की चर्चा अलग-अलग उपशीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है। नूतन मर्यादा के विकास की पृष्ठभूमि के आर्थिक, राजनीतिक तथा समाजिक सकट तक सीमित नहीं है वल्कि इस विकट परिस्थिति को मानव-जीवन के मूल्य अधिकारो में स्वीकार करता है। इस प्रकार साहित्य में एक निरन्तर सहज वृत्ति होती है। जिसके कारण वह मूल्यों द्वारा नियोजित मर्यादाओं को स्वीकार करता है। साहित्य को प्रशासित करने वाली मर्यादाओं को दो खण्डों में बांटा गया है-सम्प्रदायगत तथा मूल्यगत। सम्प्रदायगत मर्यादा ह्रासोन्मुख तथा संकीर्ण होती है तथा मूल्यगत मर्यादा प्रगतिशील तथा विकासोन्मुख होती है। यही इन दोनों मर्यादाओं में मूल अंतर है। प्रस्तुत मान्यता का स्पष्टीकरण डॉ0 धर्मवीर भारती ने विविध मत-वादों तथा प्रभु जीसस के उल्लेख से करने का प्रयत्न किया है। डॉ0 भारती की मान्यता है कि धर्म का विरोध भी सम्प्रदायगत संकीर्णता के कारण हुआ और मूल्य मर्यादा में दृष्टि के उदार, व्यापक एवं सूक्ष्म होने पर जोर दिया गया।

'प्रगति की मर्यादा' उपशीर्षक में डॉ0 धर्मवीर भारती ने हीगल तथा मार्क्स की विचार दृष्टि को आधार बनाकर मानव मूल्यों में उनकी स्थिति का अवलोकन किया है। लेखक मार्क्स के भौतिकवाद को निष्क्रिय तथा जड रूप में स्वीकार नहीं किया है। प्रगति की मर्यादा में मार्क्स द्वारा स्थापित किसी ऐसे तथ्य का पता नहीं चला जिससे मानववादी उत्कृष्ट साहित्य के विकास में बाधा पहुंचे। इसका मुख्य कारण है, सम्प्रदायगत सीमाओं का बहिष्कार तथा मूल्यगत मर्यादाओं की स्वीकृति। डॉ0 भारती एक दूसरे 'वाद' पर लगाए गये आरोपों-प्रत्यारोंपो को ध्यान में रखते हुए बुद्धि का समुचित प्रयोग द्वारा निर्णय करने के पक्षपाती है। डॉ0 भारती आज के मार्क्सवादी रचनाकारों की दोहरी चिन्ता को उद्घाटित करते हुए कहते है "मार्क्सवादी को अंततः संकीर्ण सम्प्रदायिक रूढि से मुक्त व्यापक मूल्य मर्यादा से युक्त होना ही है, यद्यिप अभी वह सम्प्रदायगत रूढिवादिता से जोर आजमाइश कर रहा था।"[15]

'आचरण की मर्यादा 'स्वातन्त्रय' में डॉ0 धर्मवीर भारती ने वैयक्तिक स्वतन्त्रता के मूलभाव तथा प्रभाव को चित्रित किया है। प्रस्तुत स्वातन्त्रय में दायित्वबोध भी विस्थापित है

जिसमें मूल्यों की खोज, मानववादी सामाजिक व्याख्या तथा आचरण की सक्रियता का महत्व मान्य है। लेखक ने पाश्चात्य विद्वान सात्र का अस्तित्ववाद, उसकी मूल्य तथा नैतिकता विरोधी विचार धारणा का प्रस्तुतीकरण किया है।

तृतीय खण्ड 'नये मूल्य और विविध सन्दर्भ' में समीक्षा के आयाम, सृजन प्रक्रिया का मानवीय धरातल, उपन्यास और आत्मान्वेषण तथा नयी कविता और दायित्व की आंतरिकता शीर्षकों में विभक्त है। "समीक्षा और आयाम" में डॉ0 भारती ने हिन्दी समीक्षा की क्रियाशीलता की चर्चा करते हुए उस पर समकालीन परिस्थितियों की सापेक्षता में अपने दायित्वबोध से दूरी का आरोप है। दृष्टि के संयमित एवं संतुलित न होने के फलस्वरूप कई बार मिथ्या मानदण्ड तक प्रतिश्ठत हो जाया करते हैं जो कि हानिकारक होते हैं।'[6]

सृजन प्रक्रिया का मानवीय धरातल में डॉ0 धर्मवीर भारती ने कलाकार के रूप की व्याख्या की है। साहित्य के तीनों कालों (आदि काल, मध्यकाल तथा आधुनिक काल) को ध्यान में रखते हुए डॉ0 भारती ने परिवेशगत प्रभाव का विशेषरूप से विवेचन किया है। यहीं पर मार्क्सवादी तथा फ्रायड के मूल सिद्धान्त को सी0जी0 युंग द्वारा असंगति को विस्तृत रूप से चित्रित किया गया है।

'उपन्यास और आत्मान्वेषण, में लेखक ने काव्य, नाटक की अपेक्षा उपन्यास को अधिक नूतन साहित्य रूप माना जाता है। क्योंकि इसमें मानव-जीवन को व्यापक रूप में चित्रित किया जाता है, उसे अपने परिवेश, वातावरण, परम्परा तथा परिस्थिति अनुरूप दर्शाया जाता है। इसमें पात्रों की सजीवता, आत्मान्वेषण पर आधारित होती है। प्रस्तुत उपशीर्षक में डॉ0 भारती ने उपन्यास के आधारभूत आयामों को चित्रित करते हुए टालस्टाय के उपन्यास 'वार एण्ड पीस' के व्यापक चरित्रों तथा उनकी आत्मान्वेषण में लीनता को उजागर किया गया है। इसमें समकालीन हिन्दी उपन्यासो की स्थिति का चित्रण करते हुए महत्वपूर्ण उपन्यासों गोदानः चित्रलेखा, सुनीता, शेखर एक जीवनी तथा बाणभट्ट की आत्मकथा आदि का विवेचन किया गया है।

'नयी कविता और दायित्व की आंतरिकता' प्रस्तुत उपशीर्षक में डॉ0 धर्मवीर भारती ने नयी कविता को प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद से अलग भावभूमि पर देखने की चेष्टा की है। आलोचकों द्वारा नयी कविता पर व्यक्तिवादी आग्रह या सामाजिक आग्रह का आरोपण भारती को पूर्वाग्रह तथा भ्रामक प्रतीत होते है। आधुनिक काव्यदृष्टि तथा यथार्थबोध की चर्चा में डॉ0 भारती ने मार्क्सवाद और फ्रायडवाद को विस्तृत रूप से उद्घाटित किया है। भारती की दृष्टि मे रचनाकार को किसी एक धारणा, वाद, सिद्धान्त आदि के संकुचितदायरे में नहीं बाधा जा सकता है। अंतत डॉ0 धर्मवीर भारती ने नयी कविता की मुख्य प्रवृत्ति मानव-मुक्ति स्वीकारा है तथा प्रमाणिक रूप से देने के लिए डॉ0 केदारनाथ सिंह, अज्ञेय, स्वयं धर्मवीर भारती, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना तथा कुंवर नारायण की कविताओं को उद्घाटित किया है।

सिद्ध साहित्य (1955 ई0)

'सिद्ध-साहित्य' डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा के निर्देशन में लिखा गया भारती का शोध ग्रन्थ है, जिसका प्रथम संस्करण सन् 1955 ई0 में प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत ग्रन्थ को तीन खण्डों में विभाजित किया गया है। प्रथम खण्ड में दो अध्याय है-प्रथम अध्याय-(1) परिचय तथा पृष्ठभूमि का विवेचन से सम्बन्धित है, जिसके अर्न्गत (क) आधार सामाग्री, (ख) दोहाकारों तथा पदकर्ताओं का कार्यक्रम तथा जीवन वृत्त, (ग) साधना केन्द्र तथा राजाश्रय एवं (घ) सामाजिक पृष्ठभूमि आते हैं। द्वितीय अध्याय का सम्बन्ध दार्शनिक तथा साम्प्रदायिक पृष्ठभूमि से है, जिसे (क) (क) महायान का विकास, (ख) समकालीन बौद्धेत्तर तांत्रिक धर्म साधना, (ग) बौद्ध धर्म में तांत्रिक प्रवृत्तियों का प्रवेश तथा वज्रयान का विकास आदि शीर्षकों में रखा गया है।

दूसरे खण्ड में भी दो अध्याय (तृतीय एवं चतुर्थ) है। तृतीय अध्याय के अन्तर्गत (क) तत्व चिंतन, (ख) साधन-पद्धित, (ग) उपलब्धि एवं चतुर्थ अध्याय में- सिद्ध साहित्य का काव्य पक्ष- (क) भाव, (ख) शैली, (ग) भाषा और छन्द आदि आते हैं।

तथा तीसरे खण्ड (यानी पंचम अध्याय (क) सिद्धों की सम्प्रदायिक परिस्थिति, (ग)

वज्रयानी पारिभाषिक शब्दों की परम्परा (घ) परवर्ती सम्प्रदायों की साधना पद्धति में वज्रयानी शब्दावली और प्रवृत्तियां और (ङ) भाव, भाषा और छन्द आदि की विशेष चर्चा हुई है।

यहां 'सिद्धो' से तात्पर्य 'वज्रयानी परम्परा के सिद्धाचार्यो' से है। ये सिद्ध लोग विभिन्न प्रकार की साधनाओं में निष्णात, अलौकिक सिद्धियों से सम्पन्न और चमत्कारपूर्ण अतिप्राकृतिक शक्ति से पूर्ण होते थे, जो अजर अमर थे। इनकी साधना कृच्छाचार की साधना थी, सिद्धों का साधना क्षेत्र पूर्वी भारत का अधिक रहा है। नालान्दा और विक्रमशिला के विश्वविद्यालय इनके गढ रहे हैं। ओडियान, कामरुप, जालन्धर, पूर्णगिरि, अर्बुद, श्री हट्ठ इत्यादि स्थान इनके सिद्धपीठ हैं। पाल राजबश का इन्हें राजाश्रय भी प्राप्त था। इनका स्थान आठवी से 12 वीं शती तक स्वीकार किया गया है। इनकी संख्या चौरासी हैं। सिद्धों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनके नामों के अंत में उपाधिसूचक 'पा' जुटा हुआ रहता है। उदाहरणार्थ-सरहपा, सबरपा, लुईपा, दारिकपा आदि नामों को देखा जा सकता है।

सिद्ध साहित्य से तात्पर्य वज्रयानी परम्परा के उन सिद्धाचार्यो के साहित्य से है जो अपभ्रंश, दोहों तथा चर्यापदों के रूप में उपलब्ध है और जिनमें बौद्ध तांत्रिक सिद्धान्तों को मान्यता दी गयी है यद्यपि उन्हीं के समकालीन शैवनाथ योगियों को भी 'सिद्ध' कहा जाता था किन्तु कतिपय कारणों से हिन्दी तथा अन्य कई प्रांतीय भाषाओं में शैव योगियों के लिए 'नाथ' तथा बौद्ध तांत्रिकों के लिए 'सिद्ध' शब्द प्रचलित हो गया। उसी प्रसंग में 'सिद्ध साहित्य' और सिद्धाचार्यो के साहित्य का वाचक हो गया है। प्रस्तुत प्रसंग में भी सिद्ध साहित्य का यही तात्पर्य अभीष्ट है।

'नाथ-सम्प्रदाय' के सबसे बड़े पुरस्कर्ता मत्स्येन्द्र नाथ के शिष्य गोरखनाथ थे। गोरखनाथ इसके बारह सम्प्रदायों के प्रवर्तक माने जाते हैं। इस मत के साधक अपने नाम के आगे 'नाथ' शब्द जोड़ते हैं इनकी संख्या 84 बतलायी जाती है। इसमें मुख्यतः नौ नाथ हुए, जिनमें से-गोरक्षनाथ, जालन्धर नाथ नागार्जुन, सतहार्जुन, दत्तात्रेय, देवदत्त, जड़भरत, आदि नाथ और मत्स्येन्द्रनाथ प्रमुख है। व्यावहारिकता के विचार से इसका

सम्बन्ध 'हठ्योग' से है। यहा 'ह' का अर्थ सूर्य और 'ठ' का अर्थ चन्द्रमा किया गया है। ब्रह्मानन्द के अनुसार इसे प्राणवायु और अपानवायु भी कहा गया है। तात्पर्य यह है कि प्राणायाम द्वारा इन दोनों प्रकार की वायुओं का निरोध ही 'हठ्योग' है। नाथ साधकों के लिए 'हठ्योग' की क्रिया आवश्यक थी। इन्होनें अपने सम्प्रदाय में हिन्दू मुसलमान दोनों को सम्मिलित किया।

'सिद्ध साहित्य' का सर्वप्रथम पता सन् 1907 ई0 में श्री हरप्रसाद शास्त्री को नेपाल में मिला था। यह मूलत· दो काव्य रूपों में उपलव्ध है-'दोहाकोश' और 'चर्यापद'। प्रथम से मुक्त चतुष्पदियों की कडवक शैली मिलती है और द्वितीय में तांत्रीक-चर्या के समय गाये जाने वाले पद। सरहपा कण्हपा, तिलोपा आदि के 'दोहाकोश' प्राप्त हैं एवं चर्यापदों का संग्रह जिसमे विभिन्न सिद्धाचार्यो की रचनाए संग्रहीत हैं।

डॉ0 भारती : निबन्ध साहित्य :

डॉ0 धर्मवीर भारती के प्रकाशित तीन निबध संकलन विशेष उल्लेखनीय है-

(1) ठेले पर हिमालय · प्रथम संस्करण 1958 ई0

(2) पश्यंती · प्रथम संस्करण 1969 ई0

(3) कहनी-अनकहनी · प्रथम सस्करण 1970 ई0

ठेले पर हिमालय (1958 ई0):

धर्मवीर भारती के निबन्धों का यह पहला संग्रह है। इस संग्रह के निबंधों का विभाजन यात्रा, विवरण, डायरी, पत्र शब्दचित्र, साहित्यिक डायरी, संस्मरण, कैरीकेचर, व्यंग्य, रूपक, श्रंद्धांजलि, आत्मव्यंग्य आदि उपशीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है। प्रकाशकीय टिप्पणी इन सभी रचनाओं को ललित निबंध के अंतर्गत ही रखती हैं। 'ठेले पर हिमालय' के सभी निबन्धों में लालित्य एवं लेखकीय व्यक्तित्व ही प्रधान है, अतः इन रचनाओं को निबंध मानना उचित है। किन्तु रूपक, व्यंग्य, श्रंद्धाजलि आदि को स्वतन्त्र स्थान देना ही ठीक लगता है। इसलिए ललित निबंधों के अंतर्गत ठेले पर हिमालय की निम्न रचनाओं को हम रख सकते है-

(अ) डायरीः

1 एक सपना और उसके बाद

2 काले पत्थर की अंगूठी

3 क्षणों की अथाह नीलिमा

4 चांदनी में कोकाबेली

5 उचटी नींद

6 केवल कौतुक वश

(ब) पत्रः

1 फूल-पाती

2. लाल कनेर के फूल और लालटेन वाली नाव

3. डेड सी के तट पर

4. कैक्टस

5 होना और करना

(क) संस्मरण

1. उसने कहा था

(ड) कैरीकेचरः

1. रामजी की चींटीः रामजी का शेर

शेष व्यंग्य, रूपकादि रचनाओं की प्रकृति मुख्यतः ललित होने के बावजूद उनको स्वतंत्र रूप से देखना आवश्यक हैं। उपरोक्त रचनाओं में भी पर्याप्त विविधता है, किन्तु इन्हें हम ललित निबंध मान सकते हैं। अधिकतर निबंधों में निबंध कार पूर्णरूप से व्यक्तित्व को उद्घाटित करता है, नितांत स्वाभाविक एवं निजी वातावरण निबंध में आद्यन्त बना रहा है, इसीलिए ऊपर निर्दिष्ट रचनायें ललित निबंध के अनुरूप हैं। "ठेले पर हिमालय" के प्रथम संस्करण में कुल सत्ताइस निबंध संकलित है। इसी निबंध संग्रह का

तीसरा संस्करण 1976 में प्रकाशित हुआ जिसमें 5 रचनायें और जोड दी गई है जो निम्न प्रकार की हैं– 1 सिटिंग आन द फेन्स 2 कहानी बाजार रहस्य भाग 3 आधुनिक हिन्दी कविता का पार्टीपरक इतिहास 4 बिलहाबाद की डायरी (सभी रचनायें व्यग्य) 5 एक छोटी चमकने वाली मछली की कहानी (रूपक)

पश्यन्ती (1969 ई0):

'पश्यंती' में 17 निबन्ध सकलित हैं, जिनको आत्मकथ्य, वयक्तित्व और कृतित्व, सर्वथा निजी इतिहास, सर्वेक्षण आदि उपशीर्षकों के अतर्गत विभाजित किया है।

"ठेले पर हिमालय" की अपेक्षा लालित्य की मात्रा 'पश्यंती' में कुछ कम है। यहां आकर भारती की निबंधकार भावना के आरोहावरोह की अपेक्षा विचार प्रधान संतुलन को पकड़ने लगता है। 'शुक्रतारे वाले शाम' था 'एक खत' जैसे एक दो निबन्ध ही 'ठेले पर हिमालय' की भावनात्मक एवं काव्यात्मक ऊँचाई पर आ सके है, अन्यत्र भारती का विचारक रूप ही निबंधकार पर हावी होने लगता है। 'हिंदी नाट्य लेखन· कुछ समसयाएं' तथा 'आधुनिकता अर्थात् संकट बोध' जैसे निबंध तो पूर्णत समीक्षा का मुखौटा धारण किए हुए हैं।,

भारती के 'पश्यन्ती' में प्रकाशित निबन्ध 1957 ई0 से लेकर 1967 ई0 के बीच के कालखण्ड में लिखे हुए है। यह इसीलिए स्वाभाविक है कि 'ठेले पर हिमालय' के बिलकुल करीब की रचनायें 'शुक्र तारे वाली शाम' (1959), एक खत (1960) लालित्य प्रधान है। समय के साथ-साथ भारती का निबंधकार काल एवं समाज सापेक्ष बनता है, अपने मन की गहराई में उतरने की अपेक्षा वह राष्ट्रीय स्तर पर की समस्याओं को, सामाजिक विडम्बनाओं को, राष्ट्रभाषा-अंग्रेजी संघर्ष को अपने लेखन का केन्द्र बनाता है। भारती के परवर्ती निबंधों में एक चिंतनशील व्यक्तित्व ही रह रहकर उभरता हुआ प्रतीत होता है।

कहनी-अनकहनी (1970 ई0):

"प्रकाशकीय टिप्पणी के अनुसार कहनी-अनकहनी 'ललित निबंध संग्रह है।"[17] स्वयं भारती ने अपनी संक्षिप्त भूमिका में लिखा है कि– "समकालीन इतिहास चक्र की

कोई छोटी घटना हो, सामान्य से सामान्य समाचार हो, लेकिन मानव मूल्यों के निकष पर उसे भी कसा जा सकता है और बहुत कुछ है जो उसके सन्दर्भ में कहा जा सकता है- बहुत कुछ, जिसका स्थायी मूल्य है। यह लेखन उसी दिशा में एक प्रयोग रहा है।"[8]

"कहनी-अनकहनी" में कुल 45 निबंध है जो 5 फरवरी 1961 से लेकर वसत पंचमी 1963 की कालावधि में हिन्दी लोकप्रिय 'धर्मयुग' के साप्ताहिक संपादकीय रूप में प्रकाशित इन रचनाओं में पूर्णरूप से साहित्यिक-तत्व गोचर होते हैं और जो 'ठेले पर हिमालय' तथा 'पश्यंती' के निबंधो से हटकर भारती के व्यक्तित्व के एक और आयाम का उद्घाटन करते हैं। "कहनी-अनकहनी" के रचयिता को "ठेले पर हिमालय" की उच्च कोटि की संवेदनशीलता छोडकर विश्लेषण प्रधान वैचारिकता का रुख अपनाना पडा है, जो संपादकीय उत्तरदायित्व की शर्त है। किन्तु इस उत्तरदायित्व शर्त को स्वीकारते हुए भी भारती का सजग कलाकार प्रत्येक निबंध में उभरता रहता हैं।

भारती के ये तीनों निबंध संग्रह भाषा, कथ्य एवं अनुभूति के स्तर पर एक दूसरे से नितांत भिन्न है। मन और मानवीय अनुभूतियों के अरोह-अवरोह का कलात्मक प्रस्तुतीकरण "ठेले पर हिमालय" में मिलता है तो "पश्यंती" के माध्यम से भारती के राष्ट्रीय, सामाजिक समस्याओं के प्रति दृष्टिकोण को अभिव्यक्ति मिली है। "कहनी-अनकहनी का रचनाकार पूर्ववर्ती दोनों निबंध संकलनों के रचनाकार की अपेक्षा अधिक गहराई से राष्ट्रीय एवं विश्वजीवन की, राजनीति की, बदलते मूल्यों की आलोचना करने लगता है।"

ठेले पर हिमालय (1958 ई0):

इस संग्रह के ललित निबंधों के माध्यम से डॉ0 भारती के व्यक्तित्व का सही-सही उद्घाटन हुआ है। भारती के संवेदनशील भावुक, स्वच्छन्दताप्रेमी, सुंदरता के अन्वेषी स्वभाव का दर्शन हम "ठेले पर हिमालय" में स्थान-स्थान पर पाते हैं।

ललित निबंध का स्वरूप जीवन और यथार्थ के सर्वाधिक निकट रहता है, इसलिए

निबंध लेखक निबंध के माध्यम से अपनी बात पाठक के सामने सीधे रखने लगता है। भारती के निबधों के बारे में यही बात कही जा सकती है। निवधों के आरम्भ में ही लेखक पाठ्कों को बगैर किसी लाग-लपेट के अपने प्रति आश्वस्त कर लेता है। लगभग सभी निबन्धों के आरम्भ नितान्त स्वाभाविक ढंग के है-

"भाई पहले की बात जो हो, यह डायरी में कतई उसभरे हुए मन से, पूजा प्रार्थना की किसी मनः स्थिति में नहीं शुरू कर रहा हूँ जैसे और डायरिया की थी, जो कभी तुम्हारी ही मेहरबानी से झाड फूँक कर जला दी गयी। गभीरता वम्भीरता की ऐसी-तैसी. . . . . ।"[19]

"मुझे आज 15 दिन बाद समय मिल पाया है कि आप को बैठकर पत्र लिखूं। आपकी दी हुई अमूल्य कलम मेरे हाथ में है, पंखे की हवा में रह रहकर होठों की तरह कांप उठने वाला पेड़ सामने है और मन में यह असमंजस है कि आपको कैसे लिखूं।"[20]

बहुत ही स्वाभाविक और घरेलू वातावरण की पृष्ठिभूमि में बडी से बड़ी समस्याओं का उद्घाटन करने में भारती माहिर हैं। "डेड सी के तट पर" निबध की चर्चा आगे चलकर दार्शनिक बन जाती है, किन्तु आरम्भ में किसी परिचित जो न पहचाने व्यक्ति के साथ किए वार्तालाप का अहसास देने वाली इन पंक्तियों के कारण पाठ्क और लेखक दोनों एक दूसरे के सामने अधिकाधिक खुल जाते हैं- "मुझे आजकल रोज-रोज याद दिलाई जाती है कि मैने अभी तक तुम्हे न कोई भेजी है न कोई कविता, और न कोई ठीक ठाक सा खत, पर मेरा स्वास्थ्य, की बीमारी और यहां का भयावना मौसम कोई काम नहीं करने दे रहा है. ..... ।"[21]

तथा- "कोई कहानी कहने नहीं जा रहा हूँ। आप खुद सोचिए-पार्क, सड़क की ये लालटेन और चिड़ियां, ये भी कोई कहानी के विषय हो सकते हैं, कितने भिन्न। कितने बेमेल! कहीं की ईट कहीं का रोड़ा भानुमती ने कुनबा जोडा।"[22]

निबन्ध में लेखक और पाठक के बीच अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक नैकट्य रहता है, इस बात के सबूत उपर्युक्त उद्धरण है। इनको पढ़ने पर लगता है, जैसे कोई

हमारा चिर परिचित मित्र हमें अपने मन की हर बात बता रहा हो-प्रेम और यौनभाव जैसी नितांत गोपनीय घटनाओं से लेकर राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय एव वैश्विक समस्याओं तक ही हर बात बगैर किसी छिपाव के सामने रख रहा हो। अभिव्यक्ति की यही पद्धति निबन्ध के स्वरूप को रूपायित करती है।

"ठेले पर हिमालय" का लेखक संवेदनशील, भावुक युवा, मानसिकता से युक्त कवि भी है। इस लालित्य को, भावुकता को दोष या अभाव नहीं कहा जा सकता। हम तो यहां तक कहेंगे कि भावना के इन्हीं आरोंहों में भारती को निबन्धकार के रूप में मिली ख्याति और इन पुस्तकों के नूतन संस्करण निकलने का रहस्य अन्तर्निहित है।

भारती के रोमाटिक शैली में लिखे हुए निबंधों में भावना, सौन्दर्य, पलायन एवं आदर्श के बिन्दु स्थान-स्थान पर मिलते है-जैसे

"अभी सावन आधा भी नहीं बीता, लेकिन मौसम है। बादल छॅट गये है और सुबहों में इठलाती हुई खुनकी है कि हरिसिंगार के फूल याद आने लगते है। कौन जाने कहीं कही हरसिंगार फूलने भी लगे हो।"[23]

भारती कविताओं एवं उपन्यासों में अपने को वासना का पक्षधर घोषित कर चुके है, किन्तु निबंधों में वासना के साथ सौन्दर्य और प्रेम का समर्थन भी वे करने लगते हैं। निबंध व्यक्तित्व का प्रकाशन है इसलिए हम इस बात पर जोर दे रहें हैं कि इन निबधों में ही भारती का सही-सही व्यक्तित्व प्रतिबिंबित होता है। भारती रोमाटिक कलाकार हैं और रोमांटिक कलाकार कल्पना की, प्रेम की, वासना की रमणीयता में विश्वास करता है, किन्तु प्रत्यक्षतः उनका भोक्ता नहीं रहता, जैसे चोरी करने की टेकनिक चोर की अपेक्षा वकील और जज लोग ही ज्यादा जानते हैं। भारती का सौन्दर्य प्रेम उनकी हर कृति में मौजूद है और निबंधों में तो- खास कर "ठेले पर हिमालय" में यह प्रवृत्ति चरम पर दिखाई देती है-

"मैं स्वप्न डूबी निगाहों से उन फूलों को देख रहा था और प्यार डूबी निगाहों से मूझे।

"फूल लोगे क्या," तुमने निगाहो में थोडी शरारत थोडी स्पन्दन भर कहा।

"नहीं।" मैने कहा।"

"मन तो है तुम्हारा' अभी बचपना गया नहीं, खेर, फूल आ तो सकते है चुराना पडेगा"[24],

स्वप्न औरपलायन का पक्षी यथार्थ के धरातल को छोडककर उडता है, उडता ही रहता है, वापस लौटने का नाम ही नहीं लेता, पूरें केलेन्डर को गिनने के लिए फूलों की माप का उपयोगी करने की जिद करता है–तुम घूम–घूम कर हमारे गुलाबों की जाच कर रही थी। तब मैने गुलदाउदी के नये गमले दिखा कर कहा था कि अगर मेरा वश चले तो मैं एक नया कैलेन्डर जारी करूं जिसमें दिन, सप्ताह, मास वर्ष से गिनती न होकर फूलों के बोने, उगने, फूलने ओर झरने के महीनों और बरसों की माप की जाया करें।

कविता और सौन्दर्य के इस अथक उपासक में सौन्दर्य सम्राज्ञी नूरजहा को लेकर आकर्षण है, किन्तु वह इसलिए नहीं कि वह सुन्दर थी, किन्तु एक पत्थर से बने हौज– "जिसमें नूरजहाँ गुलाब के फूल भरवाकर नहाया करती थी–मैं उसे इसलिए प्यार करने लगता कि वह फूलों से नहाती थी।"[26]

फूलों और प्रकृति से प्रेम भारती के रोम–रोम में है, जिसने गुनाहों का देवता (बर्टी का चरित्र) से लेकर आज तक भारती का साथ नहीं छोडा है। चलते, खाते गाते, सोते समय, हर समय जहां दीखी वहां फूल ही फूल देखना यथार्थ की दृष्टि से कुछ असभांव्य बात निश्चित ही है किन्तु भारती को उसकी चिंता नहीं है। सोने के बाद भी उनका पीछा फूल छोडते नहीं और मालूम कैसे सोता था, तकिये से काफी नीचे खिसक जाता था और बेतों के फूलों अच्छी तरह अपना मुंह छिपालेता और माथे, होठों पर पलकों पर बेले का शीत स्पर्श मुझे आच्छादित कर लेता था। बेचारी अम्मा मुझे रात भर जगा कर कही थी– "राम! राम! कैसे सोये हो भारती, आधी खटिया तो छोड दिये हो।– कहीं फूल में इतना मुँह डालकर सोया जाता है। ठण्ड लग जई है। भईया।"[27]

भारती के लिए स्त्री और प्रकृति प्रायः पर्यायवाची है। इस बात का मूल छायावाद

हो सकता है या रोमाटिक कविता। नारी सौन्दर्य को वे कई बार फूलों से फूलों की नाजुक वस्तु से एकाकार देखते हैं- "एक कहानी एक लाल कनेर के गुच्छे की है वह गुच्छा एक सुकुमार, लहराती हुई तनुयष्टि वाली लडकी के हाथो में है और वही लडकी एक नदी किनारे रेत में से चली आ रही है, और वह थक गयी है, घाट दूर है और शाम हो गयी है .उसकी याद आते ही पता नहीं मुझे नीचे फूल याद आते है ।"[28]

"क, (सम्भवत लेखक की पत्नी) सो गयी थी और कटहल की टहनियों में, पत्तों को बडी मुश्किल से भेदती हुई चांद की एक किरण उसके बेसुध अस्त-व्यस्त बदन पर बड़ी सी तितली की तरह पंख फैलाकर बैठी हुई थी।"[29]

"ठेले पर हिमालय" में सकलित निबन्धों में से "एक सपना और उसके बाद" "काले पत्थर की अंगूठी," क्षणों की अथाह नीलिमा। आदि छः निबन्ध तथा "पत्र के अन्तर्गत "फूल पाती," लाल कनेर के फूल और लालटेन वाली नाव," डेड सी के तट पर शब्दचित्र में "आधी रात· रेल की सीटी," पार्क, चिडिया और सडक की लालटेन इन सभी निबंधों में लगभग एक सी ही रचना रही है। इन निबंधों में भारती, कवि अधिक रहे हैं, विचारशील कम। यों वे इन निबधो में कई समस्याओं पर प्रकाश डालते है, जैसे- "एक सपना और उसके बाद" मे मृत्यु सम्बन्धी चिंतन "क्षणों की अथाह नीलिमा" में जीवन की अमरता, "डेड सी के तट पर" में मृत्यु के लिए चुनौती जैसे गंभीर पहलू विद्यमान है। किन्तु सामाजिक यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में इन निबंधों का महत्व क्या है?

"ठेले पर हिमालय" में कुछ ऐसे निबंध भी है जो हमारी समसामयिक समस्याओं से प्रतिबद्ध हैं। "कैक्टस" निबंध इसी श्रेणी का है। भारती ने इस निबध में कैक्टस को हमारे युग की युवा पीढी की मानसिकता का प्रतीक माना है जो तमाम विरोधों के बावजूद अपनी रस-क्षमता को जिलाये रखती है। नये युग की नीरस बंजर भूमि में भी एक कैक्टस नया रसस्रोत-साहित्य अपनी हस्ती खो नहीं गया है- "परम्परागत साहित्य की लय बद्धता, तराश, पच्चीकारी, सजाव-सिंगार में अपना आकर्षक होकर वह कैक्टस वाला आकर्षण तो नहीं है। कैक्टस को वनस्पतिशास्त्र की भाषा में "जीरो पिटड" कहा जाता है।

अर्थात् बालू हो, कंकरीली मिट्टी हो, कडी धूप हो, पानी हो खाद न हो, देखभाल भी न हो, पर यह पौधा जीवन की अदम्य घोषणा करता हुआ उगता रहता है, बाहर कांटे, अन्दर रस,।"[30]

हर पीढी की अपनी मान्यतायें होती है, पुराने मूल्यों को त्यागकर प्रत्येक पीढी अपने नये मूल्यों का निर्धारण करती रहती है। होता यह है कि पूर्ववर्ती पीढी नये के आगमन मे सतुश्ट नहीं हो सकती, प्रतिक्रिया का, विरोध का रूख अपनाने लगती है। पुरानी मान्यतायें, सुन्दरता के मान नये कवियों को स्वीकार्य नहीं होते क्योंकि "सुन्दर क्या है और असुंदर क्या है, इस बहुत विवदास्पष्ट प्रश्न को अगर हम नये सिरे से न भी उठाये तो भी इतना तो बताना बहुत आवश्यक है कि नया लेखक यदि देखता है कि पिछली दो शताब्दियों से एक कोई चीज साहित्य में बराबर आ रही है तो वह अब घिस घिसकर अपना महत्व खो बैठी है तो वह उस चीज को त्याज्य समझेगा, चाहे परम्परागत दृष्टि से वह अतिसुन्दर और अनिवार्य ही क्यों न मानी जाती रही हो।"[31]

"होना और करना" निबंध में उस युग की एवं युगीन मूल्यों की आलोचना है जिसकी "नयी कविता" एक मुख्य देन है। निबंध के कथ्य को ध्यान में रखे तो ज्ञात होता है कि भारती अपने ही जड़े काट्ते हुए प्रतीत होते है किन्तु बात कुछ और ही है। हमारे युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या है व्यक्ति के, मनुष्य के टूटने की, व्यक्तित्व के विघट्न की। नये साहित्य में यथार्थ की कमी है, लेखक यथार्थ में पूर्णरूप से उतरता नहीं यह भारती की दृष्टि में नये साहित्य का दोष है।[32] अर्थात भारती कभी नयी कविता के पक्षधर लगते हैं। तो कभी विरोधक यह मात्र आभास है। क्योंकि, यदि वे कैक्टस, निबन्ध में नयी कविता के पक्षधर हैं। तो "होना और करना" में वे मात्र परामर्शदाता हैं, विरोधक नहीं। अपदस्थ जन सामान्य को पुन. प्रतिष्ठित करना, उसके होने और करने में जो भी व्यवधान है, आर्थिक शोषण के कारण, राजकीय नियंत्रण के कारण, मृत रूटियों के कारण या स्वतः उसके अहंकार, भीरूता या उसके अज्ञान के कारण उन पर खुल कर चोट करना, उसके विवेक और मनोबल को पुनः जागृत कर उसे जीवन्त प्राणी बनाकर एवं आंतरिक सामंजस्य और बाह्य समृद्धि की ओर ले चलना, यही निर्माण की वास्तविक

दिशा है इसे ही साहित्यकारके दायित्व के रूप में ग्रहण किया जा सकता है।[33]

संस्मरण के रूप में लिखा गया निबध "उसने कहा था एक सस्मरण" तथा कैरीकेचर "रामजी को चीटी रामजी का शेर" भी ललित निबध की कोटि में ही आते हैं। स्व0 चन्द्रधर शर्मा गुलेरजी की विख्यात कहानी "उसने कहा था" को विजय देव नारायण शाही, कवियों सुमित्रानदन पत डॉ0 जगदीश गुप्त, डॉ0 रघुवश, गोपीकृष्ण, गोपेश, कुमारी कृष्णा वर्मा, डॉ0 भारती ने मच पर किस तरह प्रस्तुत किया, मंचीयता में किन मुसीबतों से पाला पडा आदि बाते "उसने कहा था" एक सस्मरण मे बडे ही रोचक ढग से अंकित की हैं। कुछ घटनायें तो बहुत ही दिलचस्प हैं। विजयदेव नारायण साही एवं गोपीकृष्ण गोपेश के बीच पिस्तौल को लेकर तानाशाही, "तेरी कुडमाई हो गई" वाला तथा उसके उपरान्त का सूबेदार जी और लहनासिह के बीच हुई भेट का प्रसग दिखाने में आई हुई दिक्कते आदि बहुत सारी बाते इस निबंध को लालित्य मिश्रित संस्मरण के स्तर तक उठाती हैं।

"रामजी की चीटी रामजी का शेर" ठेले पर हिमालय का अंतिम निबंध है, जिसमें भारती ने भारतीय स्त्री एवं उसकी "दरियादिली" पर पैना व्यंग्य किया है। प्रस्तुत निबन्ध पढने पर लगता है कि इसके लेखक भारती नहीं हैं, या किसी परम्परावादी ही आदमी ने जबर्दस्ती उनसे यह निबन्ध लिखाया हो। भारती ने इस निबन्ध में कहा है– "यह जो भारतीय नारी नाम का जन्तु है इस पर डारवीन के विकासवाद का सिद्धात लागू ही नहीं होता। इनमें आदि काल, मध्यकाल, आधुनिक काल होता ही नहीं, यह तो सदा प्रागैतिहासिक काल में रहेगी। ऊपर से यह भारतीय नारी ऊँची एड़ी की सैंडिल पहन ले, नाइलिन की साड़िया पहन ले, तन के चले, ऊँचा जूड़ा बनायें, सरटि से मोटर चलाये, अंगरेजी में धोबी का हिसाब लिखे, पर अन्दर से यह हमारी वही पुरानी बचपन वाली ताई है।"[34]

भारती नाम के इस जन्तु को, जिसने बी0ए0 में गृहशास्त्र और एम0ए0 में अर्थशास्त्र पढ़ा एक प्राकृतिक कविता–एक प्रवृत्ति के रूप में देखने में क्या हर्ज था?

"ठेले पर हिमालय" पर लिखे एक आलोचनात्मक लेख में श्री ओमप्रकाश भाटिया ने कहा है– "पहली दृष्टि में लगता है कि यह किसी यात्रा विवरण शीर्षक है, किन्तु डॉ0 धर्मवीर भारती के इस ग्रथ में अनेक गद्य विधाओ की रचनाए सकलित हुई है। वे बहुत बारीक शब्द तारों का ताना बाना बुनती हैं, हर बारएक आकर्षक/चिलमन तैयार होती है जिसमें से झाँकते दृश्यों में से भारती का व्यक्तिव उभरता है।– "नीले फूलों से घिरा भावुक व्यक्तित्व। प्रत्येक विषय या विधा को भारती की भावना अपने रग मे रग देती है। चित्र उभरते हैं, कोलाहन होता है, चित्र तिरोहित हो जाते है, कोलाहल शून्य में विलीन हो जाता है, शेष रह जाता है केवल भारती–माधुर्य, स्नेह, भावना और सुगंधियों में अमूर्त होकर भी मूर्त सा विद्यमान।"[35]

विविध शैलियों में लिखे गये निबन्धों में भारती के रूमानी व्यक्तित्व का परिचय हमें मिलता है। कुल मिलाकर भारती के दर्शन, भारती की प्रकृति, अध्ययन, रूचियाँ, मान्यताएं, "ठेले पर हिमालय" के ललित निबन्धों में प्रतिबिंबित हैं।

पश्यंतीः

भारती के इस निबंध संग्रह में कुल सत्रह निबंध संकलित हैं, जिन्हें आत्मकथ्य, व्यक्तित्व और कृतित्व, सर्वथा निजी, इतिहास, सर्वेक्षण, युग–बोध, चिकनी, सतहेंः बहते आन्दोलन, उपशीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया गया है।

"आत्मकथ्य" शीर्षक के अन्तर्गत दो निबन्ध हैं–

1. नवलेखन· माध्यम में (कुछ स्नैपशाट्स)

2. एक घृणा· अनेक आयाम

इसमें से "नवलेखनः माध्यम में" सन् 1961 ई0 तथा "एक घृणाः अनेक आयाम" सन् 1966 ई0 में लिखी रचनायें है। भारती के लेखकीय व्यक्तित्व के अंकन की दृष्टि से इन दोनों निबन्धों का पर्याप्त महत्व है। अपनी लेखन प्रक्रिया के विषय में भारती ने यहां पर कुछ महत्वपूर्ण संकेत दिये हैं। जैसे– "मैने अमुक कृति क्यों लिखी;

कब लिखी, उसके द्वारा नवलेखन का कौन सा पक्ष उभरा, क्या उसने कोई मान स्थापित किये, ये सवाल दरपेश हैं।"

और मेरा मन है कि पुरनी यादों में डूब जाने की आतुर है। उसे इतनी भी ताव नहीं कि सवालों का मुख्तसर सा जबाब देने का शिष्टाचार तो निभा दें। सवालों को साथ-साथ लिये-दिये वह यादों मे डुबली लगा जाता है।[36]

अपनी रूमानी प्रकृति की खुले आम स्वीकृति देते हुए वे लिखते हैं- "अधिक से अधिक यह जानने का बोध, जानने की प्यास, जानने की प्रक्रिया में जीने और जीने की प्रक्रिया में जानने वाला मिजाज जिन लोगों का है उनमे मैं अपने को पाता हूँ ऐसे लोग बहुत भाग्यशाली नहीं होते। वे अधिक से अधिक यह कह कर अपने को संतोष दे सकते हैं कि भाग्यशाली न होना ही उनकी ताकत है। वे यह भी पाते है कि तमाम चीजों के बीच शायद उनका एक अंश तटस्थ दृष्टा बना रहता हैं संजय की भांति। और अक्सर राज्य कौरवों का होता है और जिस शासन-सत्ता के सामने उसे विवरण देना पडता है उसके आंखे नहीं होती।"[37]

संजय जो कि यहा साहित्यस्रष्टा का प्रतीत है, बहुत बडी उलझन में है क्योंकि "अब कुरुक्षेत्र बहुत व्यापक है। हर जगह है। शस्त्रयुक्त योद्धाओं की रणभूमि में भी पांडवों के अन्तःपुर में भी, कौरवों के प्रसाद में भी, यहां तक कि अर्जुन का रथ चलाते हुए कृष्ण के चिंतन में भी है, और दूर छूटी हुई यमुना तट की किसी ग्राम बालिका के मन भी।"[38] अर्थात् आज का साहित्यिक वह चाहे धर्मवीर भारती हो या कोई सवालों का पुंज है, इसी से उसकी रचना साकार होती है, फिर भी जीने की अदम्य एषणा और आस्था अपने रास्ते से भटकने नहीं देती। इस निबन्ध के बाद छः सालों का अंतराल बीत जाने पर सन् 1966 में लिखे "एक घृणा अनेक आयाम" के अशवत्थामा की मनोदशा भी यही है- "वह घृणा का जीवन्त ज्वालामुखी है किन्तु लेखक उस घृणा से आतंकित होता, उसमें विश्वास करता है कि "घृणा का भी औचित्य है। जानते हो हमारे यहां कहा जाता है- घृणा प्रेम का पूर्वाभ्यास है।"[39]

"व्यक्तित्व और कृतित्व" में दो साहित्यिक कृतियों की विवेचना की गयी है किन्तु

वहां आलोचकों की तटस्थता और प्रखरता की जगह तन्मयता और भावना की भारती पर हावी है। फलत आलोचना की अपेक्षा इन लेखों पर ललित्य छा जाता है। "यदि आज इस वेला में उन्हें श्रद्धा देने का अधिकारी अपने को पाता हूँ तो भी यह उन्हीं की प्रेरणा है और यदि उनमें से कुद निवेदन करने का सामर्थ्य पाता हूँ तो यह उन्हीं की प्रेरणा है।"[40] जैसे कथन वाणभट्ट की आत्मकथा, की आलोचना न होकर आचार्य द्विवेदी के प्रति भारती के मन की श्रद्धा की अभिव्यक्ति है।

"मध्यम वर्ग का सैलाब और बूढा मछेरा" भी समीक्षा के मुक्त ढग की स्थापना है। वैसे लेखक (भारती) ने "अमृत और विष" की खूबियों को अचूक पकडने की कोशिश की है किन्तु "अमृत और विष" की कमियों के प्रति वे सजग नहीं है। अर्थात् वहां पर भारती की भूमिका एक समीक्षक की नहीं, सहृदय, पाठक की है। फिर भी जलोक्ष्मग्ना सचराचर धरा' की अपेक्षा 'मध्य वर्ग का सैलाब और बूढा मछेरा' का समीक्षक अपने दायित्व के प्रति अधिक सजग है, जैसे- "कहीं कहीं तो अरविद दर्शन की सुमित्रानन्दनीय शब्दावली तक आ गई है . . यह स्वर सारे उपन्यास के मूल सशक्त स्वर से मेल नहीं खाता। न यह नागर जी का अपना स्वर है।"[41]

अर्थात संगत-असंगत के प्रति सचेत रहकर निर्णय देने के कर्तव्य को यह यहां पर भारती निभाते है- "वह एक कहानी और उसके अनेक परिशिष्ट" व्यक्तित्व और कृतित्व का एक और निबन्ध है जिसमें भारती से मोपासा की विख्यात कहानी "धागे का टुकड़ा" को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। वास्तव में भारती जैसे हिन्दी के जबर्दस्त समर्थक और स्वभाव से रोमांटिक कलाकार के मन में (अंगरेजी) लेखक जो अपनी यथार्थवादी मान्यताओं के लिए विख्यात है- के लिए कुछ प्रेम, आदर हो, यह बात लेखक के व्यक्तित्व की ही ऊंचाई का प्रमाण है। कहानी कहने के बाद फिर लेखक (भारती) यथार्थ और अयथार्थ पर उतर आता है और प्रेमचन्द की अपेक्षा कहानीकार के रूप में प्रसाद को श्रेष्ठ घोषित करता है।[42]

इस कहानी के प्रसंग में भारती लिखते हैं- "उन्हीं दिनों पढ़ते-पढते पाया कि इसके बहुत निकट, लगभग इसे छूती हुई एकदूसरी बहुत बड़ी कहानी है 'जिसीस के

बलिदान की कहानी'। अपनी सच्चाई जिसके लिए उसे सलीक पर चढना पडा वह सिर्फ उसकी सच्चाई नहीं थी, सबकी सच्चाई थी, और इतना बडा दिल था कि उसने मरते वक्त सबके लिए क्षमा मागी। यही नहीं, उसने बार-बार कहा कि वह सबके पाप, सबके झूठ, सबके अत्याचार, सबकी निरकुशताये अपने कंधो पर वहन कर रहा है, ताकि उसके पिता की बनाई हुई धरती हलकी हो, इसमें रोशनी और सुख चैन पनपे।"[34]

मानवता और आस्था की इस पगडंडी में भारती का पूरा-पूरा विश्वास है चाहे विश्व भर में 'अन्धायुग' छा जाये-

"मरण नहीं है ओ व्याध।
मात्र रूपान्तरण है वह
सबका दायित्व लिया मैने अपने ऊपर
अपना दायित्व सौंप जाता हूॅं मैं सबकों"[44]

. . . . . .

"सभी परिस्थितियों का अतिक्रमण करते हुए
नूतन निर्माण करेगा पिछले ध्वसो पर।
मर्यादा युक्त आचरण में
नित नूतन सृजन में
निर्भयता के
सहस के
ममता के
रस के
क्षण में
जीवित और सक्रिय हो उठूॅंगा मैं बार-बार।"[45]

तात्पर्य यह है कि इन तीनों लेखों के माध्यम से भारती ने इन तीनों कृतियों- "आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की बाणभट्ट की आत्मकथा, अमृतलाल नागर जी की 'अमृत और विष' एवं मोपासां की 'धागे का टुकड़ा'-में से अपनी स्थापनायें ढूंढी है, और ललित निबंध के रूप में उन्हें प्रस्तुत किया है। अर्थात् आलोच्य कृतियॉं यहां साध्य न

होकर साधन बन गयी हैं।"

"पश्यन्ती" के दो निबन्ध- "शुक्र तारे वाली शाम" एव "एक खत"-गद्य-गीत की शैली में लिखे गये है जिनके बारे में डॉ0 धनजय वर्मा ने कहा है- "सर्वथा निजी बाल अंश भारती की भावाकूलता को पुकार-पुकार कर उद्घोषित करता है। सच तो यह है कि भारती के लेखन चिन्तन में रूमानियत "उशनस" की तरह स्थिर हो गयी है लेकिन उसकी चमक वहां गायब है।"[46] और कीट्स की "Bright Star, would I were stead fast as thou art" के केन्द्रीय भाव की रसात्मक व्याख्या करते करते भारती स्वयं यह स्वीकृति देते हैं कि- "कीट्स मेरी जाति का या (कलाकार था) अत आज उसकी पीडा ठीक ठीक मुझे समझ में आती है।"[47] कीट्स की वह पीडा की हम जादू भरे उस क्षण को पकड नहीं रख सकते, मुट्ठी की रेत सा वह देखते ही देखते हमसे बिछुड जाता है, जिसकी प्राप्ति में जीवन का जीवन दे देने को तैयार रहते है।

निबन्ध के शीर्षक का कीट्स की उसी कविता से सम्बन्ध है जिसमें उस आंग्ल कवि ने एक जमगाते तारे को अपनी प्रेयसी मानकर अपने मन की विवशताओं को अभिव्यक्ति दी थी। "एक खत" भी स्वच्छन्द शैली में लिखा गया दार्शनिक स्तर का निबन्ध है। उदासी के क्षण में अपने किसी निकट व्यक्ति को सम्बोधित इस पत्र में लेखक "स्व" के अन्वेषण की चर्चा करता है। निबन्ध का स्वरूप नितांत स्वाभाविक और व्यक्तिगत से मानवीय वैश्विक समस्याओं तक पहुँच जाता है। जैसे- "सुनों यह मैने पहली बार आज महसूस किया कि यहां बम्बई में भी तीसरे पहर सूरज ढलता है और धूप खिड़की में से तिरछी होकर पड़ती है और एक अलसाया पन सा सब पर छाने लगता है। तुम कितनी-कितनी दूर हो और आज इस बेला में मेरा वह बहुत पुराना प्यारा अलसाया सा मूड लौटा है तुमसे ढेर-ढेर सी नानसेन्स बाते करने का।"[48]

मानसिक यंत्रणाओं को भोगते हुए भी अपनी आस्था को हम खोवे नहीं-'बहुत अर्न्तमंथन के बाद पाया है कि नहीं, हमारा प्रभु हमें नहीं भूला नहीं है। इतना कष्ट इतनी विडम्बना देते हुए भी हमें पता नहीं किन अदृश्य हार्थों से अनजाने सम्भाल लेता है।"[49]

इसलिए हमें 'स्व' की प्राप्ति करनी चाहिए। 'स्व' का यह अन्वेषण व्यक्ति को पूर्णता प्रदान करता है। और इस स्व पूर्णत्व के माध्यम से हम– "हर कीमत पर अपने जीवन को सत और निष्ठावान मधुर और गहरा बनाकर निखिल ससार में व्याप्त असत्य, कटुता और छिछलेपन को कम करते है।"[50]

इसलिए भारती अपनी प्रिय को समझाते हैं– "तू इतना क्यों नहीं समझती कि हम जिस चीज के लिए लड रहे हैं, जिसके लिए एक स्टैण्ड ले रहे हैं उसके अर्थ बहुत गहरे हैं, बहुत व्यापक।"[51]

निबन्ध की दार्शनिक गवेषणा के बोझ को हलका करने के लिए भारती फिर अपने कवित्व को जगाते हैं– "काश किसी तरह हर तीसरे दिन वहां से तुम रजनीगधा के फूल भेज सकती! रजनीगंधा से कुछ याद आया–क्या, मैं इस वाक्य को पढने के बाद की तुम्हारी मुद्रा प्रत्यक्ष देख रहा हूँ भृकुटि टेढी, मन गद्‌गद–क्यों है ना।"[52]

"रत्नाकार शान्ति का साध्य चिंतन" ऐतिहासिक निबन्ध है। इस निबन्ध में भारतीय इतिहास के आठवीं से बारहवीं सदी तक के काल की सामाजिक परिस्थितियों पर प्रकाश डाला गया है। निबन्ध का स्वरूप कथा प्रधान है, जिसमें शान्ति नामक एक सिद्ध की कथा कही गयी है। इस "इतिहास" खण्ड के निबन्ध की भाषा काव्यात्मक एव रूमानी है। निश्चित तिथियों का विवरण देने की इतिहास लेखन की पद्धति का इसमें प्रभाव है, किन्तु रत्नाकर शान्ति का व्यक्तित्व इस तरह अकित किया है कि किसी भी दशा में स्थितियां, विवरण अविश्वसनीय नहीं लगते हैं।

मंगोल भिक्षु की गरदन में पागल कुत्ते के दांत गड जाने पर दार्शनिकों की भीड़ हर्षोन्माद से उछलकूद करने लगती है, तगडे शेर और मृदंग जब उठते हैं किन्तु शान्ति के मन में बवाल उठता है– 'जो मनुष्यता को पागल कुत्तों का भक्ष्य माने और नगाड़े पीट कर इसका उद्‌घोष करें। नहीं नहीं यह अतिनाथ अपग का योग–मार्ग नहीं, यह नागर्जुन का विवेक–मार्ग नहीं–नहीं कदापि नहीं।[53] और वह इस आडंबर के खिलाफ अपनी राय दे देता है कि– "आडम्बर का विरोध करने में हम स्वयं बड़े आडम्बर में उलझ गये हैं,

देवताओं में से महानता बहिष्कृत की और पागल कुत्तो में प्रतिष्ठित कर दी। लघु को महान् के समकक्ष रखने की स्पृहा मे लघुता की जगह क्षुद्रता की उपसना करने लग गये हम। लिप्सा हमारा बीजाक्षर बन गयी, पशुता हमारा धर्म। केवल पक मे थूथन गडाकर हमने जाना कि हमने त्रैलोक्य विजय कर लिया।"[54]

धार्मिक पाखंड, अनाचार इस काल की महत्वपूर्ण विशेषता थी। भारती ने रत्नाकार शांति के माध्यम से उसी पर बार-बार फोकस डालने की है- "आलिगन में मातंगी अधिक सुख देती है या शबरी। ये सैद्धान्तिक मतभेद के आधार बन जाते है और अष्ट साहस्त्रका, गुह्य समाज-तत्र तथा अनेकानेक शास्त्रों के श्लोक उद्धृत किये जाते है और गाली गलौज भरा शास्त्रार्थ होता है। फिर कोई साधक अपने चार मित्रों सहित शैव हो जाता है कोई वैष्णव अपने सखा-सखी सहित बौद्ध हो जाता है।"[55]

संक्षेप में, "रत्नाकर शान्ति का सान्ध्य चितन" निबंध भारती के व्यक्तित्व के और एक आयाम की ओर संकेत करता है।

"सर्वेक्षण" उपशीर्षक के अन्तर्गत कुछ छः रचनाएं है जिनमें से अधिकतर हिन्दी साहित्य सृजन की विविध समस्याओं पर प्रकाश डालती है।

"भारती साहित्य जगत मे हिन्दी लेखक" निबंध मे हिन्दी भाषा, हिन्दी भाषी लेखक, हिन्दी का नया साहित्य आदि को लेकर भारती ने कुछ प्रश्न उठाये हैं, एवं अपनी ओर से उनके समाधान खोजने की कोशिश की है।

नये साहित्य के प्रति अध्यापक लोगों का उपेक्षा भाव साहित्य के लिए निश्चय ही हानिकर है। भारती ने कहा है कि "कभी कभी तो ट्रेजडी यह होती थी कि अध्यापक, साहित्यिक, प्रतिष्ठा के क्षेत्र में अपने को रचनाकार का प्रतिद्वंद्वी मानने लगता था और यह कुण्ठा उसके दृष्टिकोण को और धूमिल कर देती थी। हिन्दी का समसामयिक लेखक इन के पूर्वाग्रहों का बुरी तरह का शिकार रहा है।"[56]

राष्ट्रीय स्तर पर हमारे देश में साहित्स के निर्माण एवं वर्द्धन की बड़ी खूबसूरत योजनायें तो बनी थी किन्तु प्रत्यक्षतः हुआ क्या; "उसने (सरकार ने) व्यक्तिगत सम्पर्क के

लेखकों को सरक्षण दिया, रचनात्मक लेखन को नहीं। अगर ज्यादा साक्षरता फैंलाती पाठ्क वर्ग तैयार करती, सुरुचिपूर्ण गम्भीर साहित्य के प्रकाशन को प्रोत्साहन देती, कुल मिलाकर उच्चतर रचनात्मक लेखन के उपयुक्त वातावरण तैयार करती तो शायद धीरे-धीरे ही सही, पर कुछ फायदे अवश्य होते।"

चीनी-आक्रमण के तुरन्त पूर्व का भारत, बौद्धिक चेतना का एक सर्वेक्षण आजाद भारत वर्ष के बुद्धिजीवी की मानसिकता का उद्घाटन है। साथ ही साथ निर्भीक रूप से भारती ने इस बात का विरोध भी किया है कि किसी व्यक्तित्व महात्मा के माध्यम से पूरे देश की अस्मिता को पहचाना जाये। भारती ने स्पष्ट कहा है कि- "पहले भावना थी कि भारत यानी मैं, यानी आप, यानी वह, वह यानी हमसब भारतवासी। धीरे-धीरे धारणा उभारी गयी- भारत यानी नेहरू। राजनीतिक बात अलग, लेकिन किसी देश की बौद्धिक सक्रियता, जागरूकता और मौलिक चितन शक्ति के लिए इतिहास का सबसे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण क्षण और कोई नहीं हो सकता कि देश एक व्यक्ति के समक्ष छोटा या मूल्यहीन साबित किया जाने लगे, समूचे जनमानस की सकल्पशक्ति और दृष्टि को अक्षम और निस्सार बनाने के लिए इससे ज्यादा कारगर और कोई तरीका इतिहास में नहीं रहा है कि एक व्यक्ति की छाया से सारे आकाश को ढक लिया जाये।"[58]

हमारा देश अनेक भाषाओं एवं प्रवृत्तियों का बना हुआ है, फिर भी इस विभिन्नता को अभिन्न रूप देने वाले कई सूत्र यहा मौजूद हैं। "एशियायी आधुनिकता और हूलाहूप" निबन्ध में यही बात कही गयी है कि भाषा एव प्रान्त के नाम पर अपनी अपनी ढपली के राग अलापना गलत है। हमारे देश की सांस्कृतिक विरासत ही हमें राष्ट्रीय एकात्मकता का सही आधार प्रस्तुत कर सकती हैं जब तक हम इस सांस्कृतिक एकता के तत्व को समझेंगे नहीं तब तक हताशा, निराशा हमारे मन में बसी ही रहेगी- "इसके पहले कि हम चीनी और फारसी काव्य से अपनी पृथकता साबित कर अंग्रेजी या फ्रेंच से अपनी समानता साबित करें बेहतर यह होगा कि बंगला, मराठी, गुजराती, उडिया, हिन्दी, तमिल, तेलगू अपनी पारस्परिक एकसूत्रता पर विचार कर ले क्योंकि इन सबो ने एक ही इतिहास दिया हैं शायद ऐसा हो तो वह "सांस्कृतिक अनाथत्व की भावना न जागे जो ऐसे

लेखक वर्ग में जाग जाती है।"[59]

बुद्धदेव बसु द्वारा सपादित "कविता" शताक में प्रकाशित ज्योतिर्मय दत्त के लेख में लेखक को यह सूत्र मिला है, और उसी प्रसग मे उसने विभिन्न प्रान्तों की भाषाओं में पनपती बेपनाही की भावना के मूल खोजने की सही सही चेष्टा की है।

"राष्ट्रीय स्तर पर भाषा का प्रश्न हमारी आजादी के साथ-साथ पनपा, राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकृति दे दी गयी किन्तु व्यक्तिगत स्वार्थ और प्रातीयता की भावना ने राष्ट्रभाषा, राष्ट्रीयता एकात्मकता जैसी बाते उतनी महत्वपूर्ण नहीं समझी जितनी कि व्यक्तिगत लिप्सा और प्रातीयता। भारती ने "भाषा का प्रश्न और कुछ बुद्धिजीवियो का रूख" और निबंध में इस समस्या को उठाया है और वास्तविक स्थितियों का पर्दाफाश भी किया है। अग्रेजी के कारण हमारी भारतीय भाषाए उनका साहित्य एवं भारतीय भाषाओं को बोलने वाली जनता बिल्कुल पराधीन और किकर्तव्यविमूढ बन गयी है। इस समस्या का ईलाज क्या है? सरकार का इस समस्या के प्रति रूख या तो बचाव का होता है या अंग्रेजी भलिका और हिन्दी प्रसारको की नीति भी व्यक्तिगत स्वार्थ पर ही अधिक निर्भर करती है। इस समस्या के समाधान सहयोग, असहयोग का रूप अपनाकर भी सरकार ठीक रास्ते पर चलती नहीं है तो सघर्ष ही एक मात्र उपाय बचता है।"[60]

"तलाश ईश्वर की बजरिये अफीम" और 'अराजनीति की राजनीति' पश्यन्ती के अन्तिम दो निबंध है जिनमें आधुनिकता के नाम पर पूजीवादी देशों में पनपती मूल्यहीनता की भारती ने कडी आलोचना की है। हिसा, पाप संगीत, अप्राकृतिक मैथुन आदि भयंकर चीजें एक अध्यात्मिक अनुभूति के नाम पर खपाने वाले नये युग के प्रणेताओं पर संदेह प्रकट करते हुए भारती कहते है- "हम नहीं जानते कि हिसा उद्‌भ्रान्त, सगीत, अप्राकृतिक मैथुन, छिली जांघों के आदिम जगल और अफीम और मारिजुआना के अंधेरे दर्रो से गुजर कर इनमें से कितने आस्था के द्वारा पर या जेल के द्वार पर पहुंचे और कितनों ने कितने ईश्वर का बेनकाब चेहरा देखा, लेकिन अमेरिका की अपराध रिपोर्ट गवाह है कि इनमें से कितने ही गुप्त रोगों के अस्पताल के द्वार पर या जेल के द्वार पर या पागलखाने के द्वार पहुँच गये।"[61]

वैचारिक सतुलन के न होने पर उठाये गये कदम हमेशा गलत रास्ते पर हो जाते है, आत्मविनाश के अतिरिक्त दूसरा पर्याय होता नहीं है- "जिस विचारान्दोलन में अपना विवेक अपना साहस, साहस और दृष्टि और अपनी सकल्प ढूँढता नहीं है वह हमेंशा एक अफीम से दूसरी अफीम तक भटकता रहेगा। राजनीति की अफीम से अफीम तक भटकता रहेगा। राजनीति की अफीम से तस्कर व्यापार की अफीम तक। अधसशय की अफीम से अंध भक्ति की अफीम तक क्योंकि बीच मे उसने एक चीज भुला दी है, छोटी सी कि वह मनुष्य है, वह अपने समाज, परिवेश और इतिहास से सम्बद्ध है, उसमें विवेक है, साहस है, सकल्प है बशर्ते वह इनका इस्तेमाल कर अपनी सार्थकता सिद्ध करे।"

ऐसे आन्दोलन विदेशों मे ही चलते हो ऐसी बात नहीं है हमारे देश में भी युवा पीढी का एक ऐसा गुट है जो विदेशी बीटनिकों को अपना अगुवा मानकर उनका अनुकरण करता है। इन वीटनिक कवियों के मन में हर पुरानी चीज के प्रति घृणा है, नारी शरीर के प्रत्येक छिद्र के प्रति कामेच्छा है और इन्हीं चीजो के पूर्ति के लिए वे विरोध और नकार के नारे लगाते रहते हैं। गिन्सबर्ग जो इस आन्दोलन के नेता समझे जाते हैं- ने विरोध और नकार के बाद व्यक्ति की स्वतंत्रता और विश्वबधुत्व के सपने देखे थे। किन्तु यथार्थ स्तर पर उतर कर वह आन्दोलन चरस अफीम और जाघो के जगल में ही घिर गया। यह बात विशेष रूप से नयी पीढी के भारतीय लेखकके लिए खतरनाक थी, जिसके कुछ शिकार भी हुए थे, और इन्हीं को लक्ष्य कर भारती ने यह निबन्ध लिखा है।[62]

संक्षेप में "पश्यन्ती" के निबन्ध भारती के व्यक्तित्व के अनेकानेक आयामों को उजागर करते है। आत्मकथ्य और सर्वथा निजी खण्डों में वे अपने व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते है, "इतिहास" व्यक्तित्व और कृतित्व, में आलोचना प्रधान निबन्ध शैली अपनायी गयी है तथा "सर्वेक्षण" और "चिकनी सतहें बहते आंदोलन" में साहित्यिक्र एवं राजनीतीक समस्याओं को उठाया गया है। यह तो स्पष्ट है कि "ठेले पर हिमालय" की अपेक्षा 'पश्यन्ती' के लेख अधिक यथार्थवादी हैं, समस्या प्रधान हैं, समाष्टि से सम्बद्ध हैं। हॉ, सर्वथा निजी खण्ड 'शुक्र तारे वाली एक शाम' और 'एक खत' की प्रकृति 'ठेले पर हिमालय' के निबन्धों जैसी ही है। भावना और रोमास 'पश्यन्ती' के इन्हीं दो निबन्धों में मिलता है।

कहनी-अनकहनी (1970 ई0):

सन् 1670 ई0 प्रकाशित इस सग्रह मे लगभग 45 छोटे-छोटे निवन्ध हैं। ये पैतालिस निबन्ध 5 फरवरी 1961 से लेकर बसत पचमी 1963 ई0 तक हिन्दी की लोकप्रिय साप्ताहिक पत्रिका 'धर्मयुग' में प्रकाशित हुए थे। कहनी-अनकहनीके निबन्धों को लेकर सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि ये निबन्ध सम्पादकीय के रूप मे लिखे जाने के बावजूद पत्रकारिता की नीरसता, शुष्कता के स्थान पर नितान्त भावनाप्रधान लालित्य लिए हुए हैं। इनके बारे मे स्वय भारती का कहना है कि "समकालीन इतिहास चक्र की कोई छोटी सी छोटी घटना हो, सामान्य से सामान्य समाचार हो-लेकिन मानव मूल्यों के निकष पर उसे भी कसा जा सकता है और बहुत कुछ, जिसका स्थायी मूल्य है। यह लेखन उसी दिशा में एक प्रयोग रहा है।"

'कहनी-अनकहनी' के निबन्धों का स्वरूप ललित निबन्धों का ही है कितु अन्तरंग में ये निबन्ध मुख्यत समस्या प्रधान हैं। इस संग्रह के निबन्ध विचार व्यक्तिगत से व्यक्तिगत समस्या को लेकर सामाजिक और जागतिक समस्याओं से सम्बन्धित हैं। ये समस्याये राजनीतिक हैं, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय हैं, सामाजिक हैं, शिक्षा पद्धति सम्बन्धी हैं, सांस्कृतिक हैं मनुष्य के अस्तित्व को लेकर हैं, और हमारे देश की भाषा सम्बन्धी हैं, अत व्यक्तिगत रागात्मकता के स्थान पर इन निबन्धों के भारती का विचारक व्यक्तित्व ही उभरा है। प्रधानत· निम्न समस्याओं पर "कहनी-अनकहनी" के लेखक का अधिक जोर है-

1.राष्ट्रभाषा की समस्या :

तरक्की का तर्क या तर्के तरक्की, गोरियां दी गालिया, टी0 दास पशु प्रदर्शनी, उर्दूवाले और फील्ड मार्शन का मजाक, सत्याग्रह की अंग्रेजी क्या है, प्रेमचन्द ने कहा था, आयी-आयी बम्बई वाली बरसात, अंगरेजी भी बनाम अगरेजी ही, जब जब बोले राजाजी, सन्त मुए क्या रोइए, आगन्तुक पखेरू, बसन्त पंचमी, संसद का प्रांगण और निराला की याद।

2. सामाजिक समस्या :

आइखमैन को सजा लेकिन, एक छोटी खबर एक बडा सदर्भ, शराब पीने की आजादी, संकट और नया रास्ता, लूथुली, रग की खायते, बुद्धिजीवी, द्वितीय कोटि।

3. राजनीतिक समस्या :

विचारक का गुस्सा, मानसरोवर और दिल्ली के हंस, हाय! हाथी हाय! व्यक्ति पूंजा के लिए।

4. अन्तर्राष्ट्रीय समस्या :

बसंती समाचार, एक दूसरी रूसी स्त्री, शब्द बदले प्रकाश में, देखने का फलसफा, गोवा।

5. राष्ट्रीय समस्या :

यें ठ्ग हटे तो मुसाफिर को रास्ता मिल जाये, विकासोन्मुख व्यवस्था ह्रासोन्मुख आत्मीयता, काबा और दरवेश के पांव।

6. साहित्य एव साहित्यकार :

ताजमहल खरीदिये, भूत के साथ एक रात, राजनीतिक नियति और भारतीय लेखक।

7. शिक्षा एवं शिक्षा पद्धति :

सबमिशन, जहाँ प्रशसकों और न्यायाधीशों का निर्माण होता हैं, मधुमक्खियों से सबक : विश्वविद्यालयों के लिए विशेष, रामायणः बतर्ज मेरठ।

8 .विविध :

पागल होता बुनियादी अधिकार,यामिनी राय, जुंग· श्रद्धांजलि, एशियायी इतिहास

और पश्चिमी फारमूले, अजन्ता का अज्ञात शिल्पी और यह जन-जागरण

इस निबन्ध सग्रह मे सकलित निबन्धों को स्वय लेखक ने टिप्पणियाँ कहा है, तो प्रकाशकीय टिप्पणी के अनुसार ये निबन्ध ललित निबन्ध है। प्रस्तुतीकरण की नितांत स्वच्छन्द शैली, व्यग्य का पुट एव छोटी-छोटी घटनाओं के माध्यम से महत्वपूर्ण समस्याओं का उद्घाटन-इन तत्वों के कारण इन निबन्धों का स्वरूप ललित निबन्धों का ही है।

'कहनी-अनकहनी' के अधिकतर निबन्ध भाषा की समस्या से ही सम्बद्ध हैं। हिन्दी उर्दू के साम्य एवं भेद, दोनों के लिए एक लिपि का उपयोग आदि बातों के साथ-साथ 'तरक्की का तर्क या तर्के तरक्की' निबन्ध का वह आशावाद लेखक की स्वप्नवादिता पर प्रकाश डालता है- "भारत में उर्दू को देवनागरी लिपि में आना ही है, क्योंकि ज्यादा दिन तक वह फारसी लिपि की नकली और निरर्थक दीवार नहीं कायम रखी जा सकती। उर्दू हमारे समृद्ध हिन्दी साहित्य की ही एक बहुत प्यारी मंजी-गढी भाषा शैली है।"[63]

"अन्ततोगत्वा हिन्दी और अन्य भाषायें इसी देश की हैं- साथ पनपी है तथा पनपेगी, सभी हिलमिलकर कुटुम्ब में रहेगी।"[64]

पत्रकारिता के क्षेत्र में हिन्दी पत्रकार और अंगरेजी पत्रकार दोनों की स्थितियां बडी खतरनाक हैं । हिन्दी पत्रकारिता की तडक-भडक से प्रभावित होकर अपने अन्दर एक हीनता ग्रन्थि पैदा कर लेता है, और स्वयं हिन्दी भाषी होते हुए भी हिन्दी विरोध की नीति अपनाता है।[65] वास्तव में भारतीय भाषाओं के पास साहित्यिक इतिहास का जो, सम्पन्न भण्डार है, उसकी सोलहवीं सदी तक अंगरेजी वालों के पास पूरी तरह से अभाव है। भारत में इसके पहले ही-'हिन्दी में रामचरित मानस लिखी जा चुकी है, तमिष में श्रेष्ठतम् साहित्य विद्यमान था, मैथिल में विद्यापति की वाणी गुजें सौ वर्ष बीत चुके थे और देशी भाषाओं की एक दूसरे के प्रति उदारता इतनी थी कि सतारा जिले के मराठी भाषी नामदेव पंजाब से जाकर हिन्दी पंजाबी मिश्रित काव्य लिखते थे और सारा देश उन्हें पूजता था।[66]

भाषा एवं साहित्य को लेकर जो भी संघर्ष करना पड़े भारती के मतानुसार धैर्य,

साहस और ठण्डेपन के साथ करना होगा क्योंकि "देशी भाषायें और नागरी लिपि उच्चतर सास्कृतिक मूल्यों की स्थापना के लिए है, उन्हें खोने के लिए नहीं।"[67]

'सत्याग्रह' की अगरेजी क्या है, "निबन्ध मे अगरेजी भाषा के व्यवहार का अनौचित्य स्पष्ट करने की कोशिश की गई है। शब्दावली शब्दकोष नहीं बनाते, शब्दकोशे समाज से उन्हें अपनाता है, और समाज अपनी सास्कृतिक प्राकृतिक अनुरूप ही शब्द गढता है। अपनी भाषा और अपने साहित्य को यदि हम सम्पन्न बनाना चाहते हैं तो हमारे देश की विभिन्न भाषाओं के बने शब्दों के प्रति अगरेजी शब्दो की अपेक्षा ज्यादा आस्था होनी चाहिए। अगरेजी के भारतीय उपासकों के विरोध की परवाह न करते हुए हमें हमारी वैभवपूर्ण परम्परा अर्थात् शब्द परम्परा की सहायता लेकर अपनी शब्दावली बनानी चाहिए। "इस प्रसंग में उस तमाम विरोधी प्रचार से भी विचलित होने की जरूरत नहीं, जो कि सस्कृति से च्युत, अस्त होते हुए एक खोखले वर्ग द्वारा बराबर किया जा रहा है।"[68]

पूरे देश के मुह में पडी हुई पराई भाषा की लगाम के प्रति भारती के मन में कुछ गहरी चिढ है, घृणा है, जिसका प्रमाण है, 'आयी आयी बम्बई वाली बरसाता'। हमारे देश का एक खास बुद्धिजीवी वर्ग इस रूढ़ धारणा का शिकार है कि ससार का जो कुछ महान है, वह मात्र अंगरेजी में ही लिखा गया है। भारती का सवाल है– "अगर सचमुच ऐसा होता तो क्या उन्हें नहीं दिखाई कि विज्ञान के क्षेत्र में सब से उन्नत देशों में अपनी भाषा का आदर, क्या उन्हें यह भी नहीं मालूम होगा कि अगरेजी बोलने वाला देश, इंगलैण्ड बीसवी शताब्दी में आदमी तो दूर, बन्दर तक अंतरिक्ष में नहीं भेज सका।"[69]

हम थोडे में यों कह सकते है कि हमारे देश की भाषा समस्या पर भारती ने विविध दृष्टिकोणों से विचार किया है। यह सत्य है। कि भारती स्वभाव के अनुसार ऊँचे-ऊँचे सपने देखते हैं, असम्भव बातों की आशा करने लगते हैं किन्तु उनकी ऊँचाई और आशावाद थोपा हुआ न होकर स्वाभाविक है।

रचनात्मक लेखन के लिए समसामयिक सामाजिकता के प्रति सजग रहना

रचनाधर्म की अनिवार्य शर्त है और इस सग्रह मे हम भारती को सामाजिक समस्याओ के प्रति पूरी तरह से सचेत पाते है। भारती की यह सामाजिक दृष्टि किसी वाद के प्रति कमिटेड नहीं है, वे किसी भी समूह, देश या सिद्धान्त से प्रतिबद्ध नहीं है, इसलिए एक कविमना रचनाकार के सामाजिक, सामूहिक सघर्षो के प्रति सहज-स्वाभाविक प्रतिक्रियायें यहां मिलती हैं।

भारती का सबसे बडा सिद्धान्त मनुष्यता है जिसका समर्थन वे स्थान स्थान पर करते है। मनुष्य के बीच रग की, वर्ग की, जाति की दीवारें नहीं होनी चाहिए यह आज के युग की मांग है, मानववाद का बुनियादी तत्व है। किन्तु अतिसभ्य समझे जाने वाले अंग्रेजों पर ही यह जातियता सर्वाधिक हावी है। जिनके लिए काली चमडे वाले मनुष्य संस्कृतिहीन, असभ्य एवं अभद्र होते है और यह बात तब तक तो ठीक मानी जाती है कि काले उनसे नीच हैं जब तक उनके काम के नहीं, जब उनके किसी काम में आने की संभावना होती है, उनको मनुष्य करार दिया जाता है।[70]

विचारक का गुस्सा, मानसरोवर और दिल्ली के हस, हाय! हाथी हाय! व्यक्ति पूंजा के लिए। जैसे निबन्ध राजनीतिक स्तर पर प्रचलित भ्रष्टाचार, अनीति तथा जालसाजी की आलोचनाएं है।

हमारे देश में भूख हडताल या अनशन की सम्पन्न परम्परा रही है जिसमें आधुनिक युग में व्यक्तिगत स्वार्थ ही प्रधान होता गया। 'अपने देश के सामाजिक जीवन में जहां और दस अजूबे देखने में आते है उनमें से यह एक अनशन का राजनीतिक ब्रह्मास्त्र भी है। कोई मांग पेश की गई, कोई नारा बुलन्द किया गया, कोई आंदोलन छेड़ा गया और किसी वजह से चल नहीं पाया तो पुरानी कहानियों की रूठी रानी के मानिंद आटी-पाटी लेकर पड़े रहे, खाना-पीना छोड दिया! अब क्या है! दस अखबार वाले दौडेंगे दस फोटोग्राफर दौड़ेंगे, रोजाना हेल्थ बुलेटिन निकलेगी, जरा ठण्डी नसों में गर्म जोश दौडेगा, दो-चार जुलूस निकलेंगे, अश्रुगैस फेकी जायेगी, फिर उधर से सधिप्रस्ताव होगा-अंत में ऊंट इस करवट बैठे या उस करवट, परिणाम तो हो ही जायेगा।[71] अर्थात्

आत्मशुद्धिया हृदय परिवर्तन की अपेक्षा आधुनिक अनशन सिद्धात नाम और काम बनाने की चीज बन गई है।

"मानसरोवर और दिल्ली के हस" हमारे देश की शासन व्यवस्था पर गहरा व्यग्य करने वाला निबंध है, जिसमें सरकार नितात मूर्खतापूर्ण वक्तव्य किसी प्रकार किये जाते है यह बात स्पष्ट की गई है। कोई भी तीर्थक्षेत्र बनाना सरकार का नहीं, समाज का काम है और समाज सैकडों वर्षो की आध्यात्मिक साधना के बलपर ही इस पवित्रता के प्रतीक रूप में तीर्थक्षेत्र को स्वीकृति देता है। लेकिन हमारी सरकारें और उनकी शासन व्यवस्थाए है कि अपनी मूर्खता के बल पर नये तीर्थक्षेत्र बनाने के सुझाव रखती है। फिर जब अपनी मूर्खता का अभिज्ञान होता है तो वे अपना मतप्रस्ताव या कानून बदलवा देती है। "बडी–बडी योजनाओं में ऐसा हो गया है कि लाखों के खर्चे पर ऐक्सपर्ट आये लेकिन तब तक योजना बदल गयी।"[72]

मानवतावाद के धरातल पर विश्व के किसी भी कोने मे उठी समस्या, पीड़ा, अन्याय के प्रति भारती का लेखक पूर्ण रूप से सचेत रहता है। 'बंसती समाचार' मूलत. विश्वबंधत्व की भावना की ही स्थापना करता है।[73]

समाज के विश्व के कल्याण में सहायक होने तक ही वास्तव में विज्ञान वरदान है। किन्तु आज हर वैज्ञानिक आविष्कार मनुष्यता के संकट, अस्तित्व के प्रश्न को भी खड़ा कर देता है इसलिए "आज सबसे पहले जरूरत महसूस होती है कि वह मशीन जो आदमी के मन में स्थित है और इस हृदय तक विकृत हो गयी है कि उसमें पड़े हुए शब्द घृणा और आग बनकर ही निकलते हैं उसे दुरुस्त किया जाये।"[74]

अस्तित्व के सकट के साथ देश–देश के बीच के सम्बन्धी की तानातनी पर भी "गोवा," "एक दूसरी रूसी स्त्री," "बेचने का फलसफा" जैसे निबंधों में प्रकाश डाला हैं। "गोवा" निबंध किसी भी गुलाम देश की परिस्थितियों पर लागू है– "और भारती का यह कहना कि "जिस स्थिति को दुनिया के अधिकांश देश औपनिवेशिक गुलामी समझते हो उस स्थिति को बनाये रखने के लिए कागजी नियम कानून किसी काम के साबित नहीं

होते।"[75]

किसी भी देश के लिए व्यक्ति की सत्ता को, स्वाभाविक स्वतत्रता नकारना अमानुषिक है, फिर भी वह भौतिक प्रगति के वल पर अपने आप को कितना भी श्रेष्ठ घोषित क्यों न करें। भारती का सवाल सही है कि "एक ओर रगभेद और उपनिवेषवाद का दम्भ अतर्मन में पालते हुए व्यक्तिगत स्वाधीनता का नाम लेने वाली एक सस्कृति और दूसरी ओर मानवीयता को नृशसता से कुचलते हुए भी मानवीयता और साम्य का नाम लेने वाली दूसरी संस्कृति ये दोनो चद्रलोक में पहुचने वाली सूरवीर सस्कृतिया क्या मानवीयता के प्रति सही दृष्टिकोण बना पायी है।"[76]

स्पष्ट ही भारती की दृष्टि यहा दोनों ओर संतुलन रखती है साम्यवादी देशों के प्रति भी और पूंजीवादियों के प्रति भी। इसलिए धनंजय वर्मा का यह सवाल कि– "जितना मुखर, भारती में रूस और साम्यवाद विरोध है, उतना ही अमरीका और पूजीवाद विरोध भी क्यों नहीं।"[77]

"ये ठग हटे तो मुसाफिर को रास्ता मिल जाये," विकासोन्मुख व्यवस्था ह्रासोन्मुख आत्मीयता, "काबा और दरवेश के पॉव" निबधों में राष्ट्रीय समस्याओं पर भारती ने विचार किया है।

राष्ट्रीयता का राष्ट्र के इतिहास से हमारा साधारणत यह तात्पर्य होता है– "देश की लडाइयां, उनको जीतने वाले या हराने वाले, जो वस्तुत असंगत है। वे लोग यह भूल जाते हैं कि भारत की साधारण जनता का अंतर्मन सतो ने बनाया है और उन संतों और फकीरों के सामने हमेशा आदमी की अंदरूनी सच्चाई का आदर रहा है। संप्रदाय, भाषा, सूबा, जाति–पाति और वेशभूषा का भेद उन्होनें कभी नहीं माना।"[78]

हमारे देश की वर्तमान स्थितियों की विडम्बना यह है कि –"राजनीतिज्ञ अपने मतदाता से, साहित्यिक का अपने पाठक से, शिक्षक का अपने छात्र से आत्मीयता भरा रिश्ता टूट रहा है।" यह खतरनाक असंगति पूरे भारतवर्ष को व्याप्त कर चुकी है– "हमारी संस्कृति की जो महत्वपूर्ण उपलब्धियां थी जैसे वर्ण, वर्ग, सम्प्रदाय के बावजूद गांव,

मुहल्ला, पास-पडोस की मानवीय आत्मीयता, अपनापन इसानियत के स्तर पर बड़े-छोटे का भेद-भाव न कर एक पारिवारिकता की मधुरता उन्हें अगर हमने नष्ट हो जाने दिया तो फिर वह कभी-कभी पूरी न हो सकेगी। धन की दरिद्रता को कभी अमेरिका कभी सोवियत रूस से धन या मशीन मागकर दूर की जा सकती है, पर वह आदमीयत जो हमारी हजारों वर्ष की परम्परा की देन है, उन्हे हम फिर किसी दूसरे से उधार नहीं माग सकेंगे।"

राष्ट्रीयता को लेकर भारती ने जहा कहीं भी लिखा है, वहां उसके सामने रविबाबू की वह विख्यात कविता रही है जिनमें वे कहते है कि, "जहा चित्त भाव से मुक्त हो और सिर स्वाभिमान से ऊंचा हो-उस आजादी के देवलोक में मेरा देश जागे!"

हमारे देश का आपसी समस्याओं को ससार के सामने विकृत रूप में प्रस्तुत करना भी कुछ सीमावर्ती लेखकों का धधा बनता है, जिसमें धन प्राप्ति की आशा से पूरे राष्ट्र को राष्ट्रीय सरकार को बदनाम होना पडता है। भारती के मतानुसार इन बुराइयों का इलाज सरकार की ओर से, कानूनी तौर पर नहीं हो सकता, साधारण पाठक ही इस प्रवृत्ति पर रोक लगा सकता हैं "प्रत्येक साधारण नागरिक का भी यह दायित्व होता है कि वह इस दिशा में सचेत रहे और बराबर विचार करता रहे। केवल उन्हीं प्रवृत्तियों को प्रश्रय दें जो सुरूचिपूर्ण और सस्कारपूर्ण हो तब अपने आप सुरूचिपूर्ण प्रवृत्तियां फीकी पड़ जायेगी।"

"राजनीतिक नियति और भारतीय लेखक" निबंध में भारतीय ने टालस्टाय की विख्यात कृति "बार एंड पीस" को समाने रखकर कुछ बुनियादी सवाल उठाये है जिनका संबंध इस देश के लेखक से है। डा0 राधाकृष्ण का एक सवाल है-"इस संकट, आपत्ति और निराशा के युग में लेखक ने महान् कृतियों का सृजन किया है। भारत को स्वतंत्र हुए इतने वर्ष बीत गये। हम संकट और पुनर्निर्माण के दौर में से गुजरने और आज विश्वविद्यालय के समक्ष खड़े हैं, लेकिन क्या कारण है कि हमने कोई भी महान कृति नहीं दी।"

भारतीय ने इस सवाल का उत्तर वडे मार्मिक ढ्ग से दिया है–"अन्य देशों के मुकाबले में यहा कम से कम इतनी अच्छाई है कि लेखक अब भी यह कह सकता है कि साधनहींन ही सही लेकिन हमारी कल्पना का पियरे अपनी ही पगडण्डी पर जायेगा।" भारतीय वर्तमाना लेखन जगत मे गहरी आस्था रखते हैं– "चौदहों भाषाओ के साहित्य में एक समान स्वर होता है जिसने फिर से इस बात को साहसपूर्वक कहना चाहा है कि मनुष्यता के लिए सहज और समान्य मूल दृष्टि वह है जो साहित्य देता है, वह नहीं जो राजनीति देती है। अगर पिछले वर्ष में भारतीय साहित्य यह भी कर पाता है तो यह बहुत बडी बात है। यही अविचल ईमानदारी किसी भी महान् साहित्य की पूर्वभूमिका हुआ करती है। भारतीय भाषाओं का साधनहींन और उपेक्षित लेखक घटाटोप और आडम्बर से हटकर इस पगडंडी को ढूढ़ सका और उस पर विश्वास बनाये रख सका, यह उसकी निष्ठा का प्रमाण है।" और यह बात हमारे लिए कम गौरवपूर्ण नहीं है।

उपाधि, पुरूस्कार, पद, सम्मान, आदि तरीकों के माध्यम से लेखक को प्रोत्साहन देने का पुराना रिवाज है। किन्तु आज की वास्तविकतायें इस कदर बदल गयी है कि पुरस्कार आदि पाने के लिए लेखक के लेखन की अपेक्षा उसकी तिकडमबाजी का असर ही पुरस्कार देने वालों पर पड़ता है। पुरस्कार के असली हकदार प्राय· पुरस्कार पाते ही नहीं' इस पुरसकार नीति का विरोध करने के साथ साथ भारती ने अपनी सहानुभूति इन लेखको के साथ प्रकट करते हुए कहा है– "अपना काम ही उनके लिए सबसे बड़ी उपाधि है, अपना लेखन ही सबसे बडा अभिनन्दन।"

हमारे देश के बुद्धिजीवी वर्ग का मानसिक असन्तुलन समाज और देश के लिए किस तरह खतरनाक है इस बात को भारतीय ने "पागल होना बुनियादी अधिकार" निबंध में उठाया है। बुद्धिजीवी विचारक और मनीषी देश की असली सामर्थ्य होती है, उनमें तानव आते ही सामाजिक एवं राष्ट्रीय स्वास्थ्य अन्दर ही खराब होता जाता है। भारती ने इस बुद्धिजीवी वर्ग को बड़ी ही गम्भीर चेतावनी देते हुए कहा है–"देश आप का है। राष्ट्रनिर्माण के लिए हर क्षण सचेत रहें। यह आपका मौलिक जन्मसिद्ध अधिकार है। आप इस दिशा में ढीले पड़े कि दूसरे प्रजाविरोधी तंत्रों को सिर उठाते देर नहीं लगती। फिर

वहा बुनियादी मानवीय अधिकारों का कोई भी सवाल नहीं उठ पाता।"

प्रसिद्ध बंगाली चित्रकार श्री यामिनी राय पर लिखे लेख से यह प्रमाणित होता है कि भारती का लेखक दूसरे कलाकार की कला को परखते भाषा या प्रान्त की कोई दीवार नहीं मानता। भारतीय भाषायें ही भारती को प्रिय हों ऐसी बात नहीं, उन्होने जो भी चीज अच्छी महसूस की, उसका सहर्ष स्वागत किया। स्थान-स्थान पर विभिन्न देशों के लेखकों के प्रति भारती ने आस्था और श्रद्धा प्रकट ही किन्तु राजनीतिक स्तर पर अग्रेजी भाषा के आधार पर भेद-नीति का पश्चिम के अधानुकरण का वे गभीर विरोध करते दिखाई देते हैं। हमारा देश हमीं अच्छी तरह से जान सकते हैं, पश्चिमी इतिहासकारों को उसमें दखल लेने की आवश्यकता नहीं यह बात "एशियाई इतिहास और पश्चिमी फारमूले" निबध से भारती ने सप्रमाण सिद्ध की है।

उपरोक्त विवेचित भारती के लगभग 75 निबंधों के आधार पर हम भारती को एक सफल निबंधकार मान सकते हैं। विकास की दृष्टि से भारती का पहला निबंध संग्रह "ठेले पर हिमालय" भावना प्रधान है, जहां स्थान-स्थान पर कविता का रस छलकता हुआ नजर आता है। डायरी (एक सपना और उसके बाद काले पत्थर की अगूठी, चांदनी में कोका-बेली आदि) पत्र (फूल पाती, लाल कनेर के फूल और लालटेन वाली नाम तथा डेड सी के तट पर), शब्दचित्र (आधीरात रेल की सीटी, पार्क, चिडिया और सड़क की लालटेन) इन निबंधों की अपनी खासियतें हैं। तरल कवित्व इनका प्राण है। रसवत्ता इसकी विशेषता है। मधुरता इनका रूप है।

'ठेले पर हिमालय' की आत्मपरकता को छोड़कर 'पश्यन्ती' के भारती अधिक यथार्थ प्रिय, वस्तुपरक बन गये हैं। आलोचात्मक निबन्ध (व्यक्तित्व और कृतित्व) तथा इतिहास आदि आयामों को 'पश्यन्ती' में उजागर किया गया है। 'सर्वेक्षण के निबंधों में भारती सामाजिक राष्ट्रीय प्रतिबद्धता को स्वीकार करते हुए परिलक्षित होते हैं।

"कहनी-अनकहनी" भारती के निबन्ध लेखन की अन्तिम कडी है जिसमें वे व्यक्तिपरक के राग का मोह छोड़कर अपनी आलोचनात्मक दृष्टि को अधिक प्रखर पैने रूप

में प्रस्तुत करते हैं। यहा आकर भारती व्यक्तिगत से व्यक्तिगत विपय या घटना से प्रारम्भ कर विचार सूत्र का सम्बन्ध सामाजिक राष्ट्रीय, वैश्विक, साहित्यिक मानवीय सभी समस्याओं के साथ जोड देते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारती की निबध रचनाओं मे पर्याप्त विविधता है। सस्मरण, आलोचना, रिपोतार्ज ताज, लेख, इतिहास, डायरी, मृत्यु, लेख जैसे विविध शिल्प और व्यंग्य के अतिरिक्त कथ्य के अन्य अनेक आयाम अपनी-अपनी स्वतत्र सत्ता के साथ भारती के निबध सग्रह में देखे जा सकते हैं।

यात्रा साहित्य :

डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी ने यात्रा साहित्य के सम्बन्ध में लिखा है कि 'देवदर्शन यात्रा-संस्मरण की मूलवृत्ति है जिसमें एक ओर प्रकृति की पुकार है, दूसरी और साहित्यिक जिज्ञासा। यात्रा मानों विराट मानवीय विकास का ही एक सीमित प्रतीक है। इस दृष्टि से यात्रा-संस्मरण लेखक और पाठ्क दोनों के लिए एक आदिम प्रतीक या पुराण कथा की भांति बार-बार अपने को खोलता चलता है।[88]

"ठेले पर हिमालय" में भारती के दो यात्रा लेख संकलित है-1 ठेले पर हिमालय 2. कूर्माचल में कुछ दिन।

यात्रा विवरण के अन्तर्गत लेखक किसी खास भू-भाग के दर्शन कराता है, वहा की जलवायु, यातायात के साधन, लोकजीवन आदि का परिचय कराता है। 'ठेले पर हिमालय' में लेखक की कौसानी यात्रा का विवरण है, कौसानी जाते समय जिस रास्ते से जाना पड़ा। उसके विषय में भारती कहते है- "कितना कष्टप्रद, कितना सूखा और कितना कुरूप है वह रास्ता! पानी का कही नामनिशान नहीं, सूखे-भूरे पहाड़, हरियाली का नाम नहीं। ढालो को काटकर बनाये हुए टेढे मेढ रास्ते पर अल्मोडे का एक नौशिखिया और लापरवाह ड्राइवर जिसने बस के तमाम मुसाफिरों की ऐसी हालत कर दी कि हम कोसी पहुंचे तो सभी के चेहरे पीले पड चुके हैं।"[89]

भारती के कवित्व का परिधान पाकर अकित प्रकृति और अधिक खूबसूरत बन जाती है "इस कौसानी की पर्वतमाला ने अचल मे यह जो कल्यूर की रग बिरगी घाटी छिपा रखी है, इसमें किन्नर और यक्ष ही तो है वास करते होंगे। पचासो मील चौडी यह घाटी, हरे मखमली कालीनों-जैसे खेत, सुन्दर केरू की शिलायें काटकर बने हुए लाल-लाल रास्तें, जिनके किनारे सफेद-सफेद पत्थरों की कतार और इधर उधर से आकर आपस में उलझा जाने वाली बेले की लडियो सी नदिया। इतना सुकुमार, इतना सुन्दर, इतना सजा हुआ और निष्कलक कि लगा इस धरती पर तो जूते उतारकर, पांव पोछकर आगे बढना चाहिए।"[90]

कहीं-कहीं पर यात्रा प्रसंगों में प्रकृति पर मानवीकरण का आरोप भी सुन्दर बना है- "इसी घाटी के पार वह नगाधिराज, पर्वत सम्राट हिमालय हैं, इन बादलों ने उसे ढाक रखा है, वैसे वह क्या सामने है उसका एक कोई छोटा सा बाल स्वभाव वाला शिखर बादलों की खिडकी से झांक रहा है। मैं, हर्षतिरेक से चीख उठा,। "बरफ! वह देखो!" शुक्ल जी, सेन सभी ने देखा, पर अकसमात वह फिर लुप्त हो गया। लगा, उसे बाल शिखर जान किसी ने अन्दर खीच लिया। खिडकी से झॉक रहा है, कही गिर न पड़े।"[91] प्रकृति के प्रति भारती का दृष्टिकोण रोमानी ही है। हिमालय का शात शीत और ऊंचा सौन्दर्य उन्हें बारम्बार अपनी ओर आकर्षित करता है- "वे बर्फ को ही देखकर मन बहला लेते हैं।" किसी ऐसे ही क्षण में, ऐसे ही ठेलों पर लदे हिमालयों से घिरकर ही तो तुलसी ने कही कहा था . कबहुँक हौ यहि, रहनि रहों गो। . . .मैं क्या कभी ऐसे भी रह सकूँगा वास्तविक हिम शिखरों की ऊचाइयों पर। "और तब मन में आता है कि फिर हिमालय को किसी के हाथ सदेशा भेज दूँ।"[92]

यात्रा विवरण में कहीं-कहीं पर व्यंग्य शैली का उपयोग भी हुआ है- "मेरी पत्नी जिसे दुःख है कि सूरज डूब गया, अब उसका कैमरा बेकार है, और मन में सोच रही है कि काश इन पहाड़ों पर सेब की जगह हरी मिर्चो के बगीचे होते।"[93]

भारतीय जीवन में, हिन्दू सभ्यता में हिमालय पर्वत का स्थान बहुत ही महत्व का

रहा है। क्या कारण है भारती लिखते है- "कालिदास से लेकर सुमित्रानन्दन पन्त तक, हिमालय भारतीय कवि की आत्मा मे बराबर यह प्यास जगाता रहा है। कूर्मांचल हिमालय का द्वार है। कूर्मांचल के पहाडो से दिखने वाला हिमालय पता नहीं कैसे अपने पास खीचने लगता है।"[94] और आगे जाकर भारती इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि, भारतीय मनीषा को ऊँचे उठने के आदर्श के सपने हिमालय हमेशा देता रहा है- "लगा जैसे हमारी चेतना का कोई अश का ऐसा जरूर है जो धरती के कठोर यथार्थ से हमे ऊपर की ओर उठा रहा है, वहां जहां अनन्त काल से शुभ श्वेत हिम जामा हुआ है इन्हीं शिखरों को शंकराचार्य ने देखा था, इन्हीं में कालिदास भटके थे, इन्हीं मे विवेकानन्द ने आत्म-साक्षात्कार किया था।"[95]

"ठेले पर हिमालय" के दोने यात्रा-विवरणों में प्रकृति वर्णन, यात्रा में दिखे लोक जीवन के ब्योरे की अपेक्षा आत्म प्रक्षेपण का पलडा भारी रहा है। फिर भी सुन्दर, शीत और उदात्त सी एक अनुभूति इन कुछ पन्नों को पढने पर हो जाती है।

युद्ध यात्रा (1972 ई0):

1971 के बंगला मुक्ति संग्राम को लेकर बगवाहिनी द्वारा बगला देश मुक्ति हेतु चलाये जा रहे सशस्त्र अभियान के समय डॉ0 भारती पत्रकार के रूप में बगभूमि की यात्रा पर गये थे जिसका रोमाचक वर्णन "युद्ध यात्रा" पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुआ है। यों इस विवरणका मुखौटा कुछ-कुछ रिपोर्ताज के अनुकूल होने के बावजूद इसमें कही-कही लेखक का अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व झलकता है, कुछ घटनाओं के अंकन के बहाने वह अपनी जीवन-दृष्टि को अभिव्यक्ति देता है, सृजनात्मक मूल्यों के प्रति भी वह सचेत है और सिद्धांत कथन की अपेक्षा अपनी भावाभिव्यक्ति सहज, सापेक्ष या घटना रूप में की है इसलिए "युद्ध यात्रा" को यात्रा वर्णन के अन्तर्गत रखना ही हमें उचित लगता है। मनुष्य और मनुष्यता को नापने के भारती के मान यहां किसी रिपोर्टर के नहीं, एक सहृदय साहित्यिक के हैं। इसलिए पुस्तिका के आरम्भ ही में लेखक अपनी आस्था की अभिव्यक्ति देता है कि, "निशा से अरूणोदय की यात्रा ही तो वास्तविक युद्ध यात्रा है।"[96]

3 दिसम्बर से लेकर 16 दिसम्बर तक चले इस युद्ध में पत्रकार भारती भारतीय जवानों के साथ मृत्यु की भयावनी छाया से आँख मिचौनी खेलते हुए बागला देश की राजधानी ढाका की ओर बढ रहे थे। जवान बचाव और आक्रमण मे व्यस्त थे तो पत्रकार भारती का लेखक मनुष्यता और पशुत्व के बीच उभरे हुए सघर्ष को अपने मानव पटल पर अकित कर रहा था। मनुष्यता के अनेको आयामों को आत्मसात किये आगे बढ रहा था। 'युद्ध यात्रा' में ऐसे कई वर्णन है जिसकी भीषणतापर विश्वास तक करना कठिन है। लेकिन ऐसा होता है , होता रहा है पाकिस्तानी सैनिको के पाशवी अत्याचारों के कुछ नमूने–

"पाकिस्तानी सिपाहियों का एक दस्ता, अधाधुंध इधर उधर बंगाली घरों पर फायरिंग करता हुआ, गालिया बकता हुआ चला आ रहा है। उसके साथ तीन बगाली युवतियां है। दो अर्धनग्न, अचेत, जिन्हे आगे और बाहे पकडकर वे झूलते हुए ला रहे हैं। अकस्मात दूसरा दस्ता आया। आते ही जानवरों की तरह हो–हो कर उछला और तीसरी औरत को वही सडक पर गिरा दिया।"[97]

एक रजाकार लोगों को मार–मार पानी में फेंक दिया करता था। डाक बगले का चौकीदार। नाम मोहम्मद लाल। मारने के पहले लोगों के पेट चीर देता था ताकि पानी भर जाये और लाश तैरे नहीं। हट्टा कट्टा नहीं दुबला पतला, घिनौना सा। महीने भर पहले उसे मुक्तवाहिनी ने पकड लिया था और तब अपने माँ–बाप को याद कर बच्चों की तरह फूट–फूट कर रो रहा था।"

"... ... .और झटके से दिमाग में घूम जाती है बंगला देश में जगह–जगह पर सुनी उनके पैशाचिक कृत्यों की लोमहर्षक गाथायें। कैसे उन्होने गोद से बच्चों को छीनकर अलग फेंक दिया और असहाय चीखती माँ पर बलात्कार किया और चलते–चलते दोनों को संगीने भोंक दी। कैसे उनके बंकरों में स्त्रियां गिरी जिन्हें वे पकड़ लाये थे। उन्हें हफ्तों निर्वस्त्र रखकर उन्हीं से सफाई और पकाने का काम भी लेते थे और उन्हीं से अपनी जघन्य लिप्सा तृप्त भी करते थे।"

"अंधायुग" यदि कभी अवतरित होता है तो बिल्कुल इसी रूप मे।

कालिदी, ब्रह्मपुत्र, शेरपुर, जमालपुर, मधुपुर, टकाइल, जयदेवपुर, आदि स्थानों से होते हुए ढाका तक जाने में लेखक और लेखक के सहयोगी सैनिकों को जिन परिस्थितियों का सामना करना पडा। मृत्यु कब और कैसे बिल्कुल पास आकर निकल गई, पाकिस्तानी हमलावरों को भारतीय फौज ने किस प्रकार जबाब दिया आदि बातों का भारती ने बडे ही मार्मिक ढंग से चित्रण किया है। अपने सहयोगियो की व्यक्तिगत विशेषतायें सक्षेप में, प्रभावशाली ढग से अंकित की है। आरम्भिक पृष्ठों पर दिया हुआ मेजर जलील का यह व्यक्तित्व इतना यथार्थ लगता है कि पाठकों के सम्मुख उसका जीता जागता चित्र खडा हो जाता हैं।

" . . . खूब भरा-भरा सावला चेहरा, नाटा कद घनी मूछे, और रूखे बिखरे बाल हिप्पियों जैसे। बन्द गले का फौजी स्वेटर। औपचारिक स्वागत करके वे अपने काम में लग जाते हैं। बलिलपाल में जन्में मेजर जलील, विदेशों में सैनिक शिक्षा ले चुके हैं। उनकी व्यक्तिगत रूचियां, बहुत कुछ "मार्डन" पीढी की है, चलने का ढग, बोलने का लहजा, अंगरेजी गानों का चुनाव।"[100]

"कमाडर मुखर्जी शात, सचेत, मितभाषी।"[101]

इस प्रकार इने गिने शब्दों में ही व्यक्तियों का चित्र यहां उभर आता है। भारती की यह 'युद्ध यात्रा' वास्तव में 'मृत्यु यात्रा' ही थी। स्थान-स्थान पर पाकिस्तानी गोलाबारी होती थी, बम फूटते थे, मशीनगने चलती थी और इन सबके बीच में होकर उनसे बच आगे निकलता जा रहा था। भारती के साथ-साथ ब्रिगेडियर क्लेर, विदेशी फोटाग्राफर, जनरल नागरा, कैप्टन भटनागर बलवीर आदि का मृत्यु से साक्षात्कार किस प्रकार हुआ, और वे लोग किस तरह इस सकट से बच निकले इसका विवरण इस संकट से भरी पुस्तिका के पृष्ठ 22 पर बडी ही ओजपूर्ण भाषा में किया गया है। 'मुझे मोर्टार के विस्फोट में कुछ सुनाई नहीं पडता। कोई हाथ बढाकर मेरे गले में पड़ा रंगीन झोला खीचकर अन्दर फेंक देता है। क्लेर इशारा कर रहे है कि जमीन से चिपक कर लेटा

जाओं। जनरल अपना हैट उतार कर अन्दर फेंक देते है और फिर जाने कौन-कौन लेटा-लेटा मेरे ऊपर बालू फेंक रहा है। नाक, कान, होठ, गर्दन सब रेत से भर जाते हैं। बाद में मालूम हुआ कि जनरल और उनके दाये मैं बिल्कुल खुले में थे और जनरल के हैट की लाल पट्टी और पीली कमीज और नीला झोला धूप मे खूब चमक रहा था। और ये लोग ठीक उसी पर निशान साध रहे थे। यही राज था कि गोल मेरे सामने और दाये पॉच छ: गज की दूरी पर गिर रहे थे। बालू फेक कर मेरी कमीज ढांकी जा रही थी।[102]

फौजी जीवन की अनेको विशेषतायों को भारती ने इस यात्रा विवरण मे दी है। उनके रोजमर्रा के जीवन, उसमे घटित घट्नायें, उनका मनोविज्ञान आदि पर इस यात्रा विवरण में प्रकाश डाला गया है। घर, बनिता, पुत्र-सब कुछ छोडकर चली हुई "फौज का सवेरा खूब होता है। रात को जो शहर चारों ओर बस गया था, वह सारा सिमट्कर अलसाते अलसाते उठ्ते हैं, तब तक हमारी इमारत के सारे सिपाही बिस्तरे बांधकर ट्रकों पर सवार हो रहे है।"[103] जीवन की इस मस्ती और बेबुनियादी को देख हमें भगवती बाबू की "हम दीवानों की क्या हस्ती है, आज यहां कल वहा चलें पंक्तिया याद आने लगती हैं। सैनिक जीवन की सुबहें यों होती है- "उधर के किनारे सुबह-सुबह नहाते, दातौन करते, साबुन मलते फौजी गठे हुए बदन, इधर के किनारे की घास पर उनके कपडे निचोडकर सूखने के लिए फैलाए हुए, कैसा जीवन्त लग रहा है यह प्रांगण। कुछ सैनिक तैयार होकर कतार बांध रहे है, कुछ अभी बरामदों में कपडे बदल रहे है, कुछ जमीन पर बैठ कर सेव कर रहे है, रातों-रात सैनिक, टेलीफोनों के तार घास पर बिछा दिये गये है, पिछवाडे की ओर एक एक तरफ ईटों का जगी चूल्हा बनाकर चाय के देगचे चढा दिये गये और एक मोटर मरम्मत का गैरज बना दिया गया है जहां गाडियों के बोनेट खोलकर मरम्मत हो रही है, वा टायरों के पंचर ठीक किये जा रहे हैं। उधर बडे-बडे पीपों में भरकर पेट्रोल लादकर लाया गया है और गाड़ियों टोकन दिखाकर पेट्रोल भरवा रही हैं। कुछ कान पर जनेऊ चढाकर बोतलों में पानी भर कर पीछे पोखरों की ओर जा रहे हैं। एक सैनिक अपने किट में से सुई-डोरा निकालकार वर्दी का टूटा बटन टांक रहा है। एक ओर ट्रक पर गिनती करके कंवल और बिस्तरें लादे जा रहे है, एक ओर पेटियॉ। गेट के

पास लगर है, जहा गरम चपातिया सिक रही हैं और तरकारी का देगचा चढा हुआ है।" [04]

प्रदेश विशेष की भौगोलिक, सास्कृतिक विशेषताओ का मौजूद होना यात्रा विवरण में जरूरी होता है। फिर भी युद्ध यात्रा में आये हुए भौगोलिक सास्कृतिक विवरणों में भारती पूरी तरह तन्मय हुए नहीं हैं, और स्वाभाविक भी है, जब मृत्यु और दुश्मन दोनों के बीच में से वे गन्तव्य की ओर निकलते जा रहे हो। कहीं-कहीं पर भारती ने यात्रा में मिले लोगों का जीवन, उनकी आर्थिक विपन्नता, भौगोलिक परिस्थितिया आदि पर प्रकाश डाला है। कालीगज के आसपास का यह वातावरण देखिये- "इक्के-दुक्का दुकाने और इमारते तेजी से जाती जीप पर पीछे छूटती जा रही है। जमुना किनारे बसा यह कस्बा जब आज युद्ध ध्वस्त होने के बाद इतना रौनक अफरोज है, तो पहले तो कितनी चहल-पहल रहती होगी। कुछ फूस, कुछ टीन की छोटी-छोटी दुकानों की कतार। नदी के दोनों ओर लम्बे गोदाम, जिनमें सेबास और लोहे के छोटे-छोटे माल लादने उतारने के मचान। कुछ दुमजिली पक्की इमारते और बीच-बीच में खेत और बांस, केले के हरे झुरमुट"[105]

बांगला देश की भौगोलिक ही नहीं, लोक जीवन की भी छवि, युद्ध यात्रा में कहीं-कहीं प्रतिबिम्बित है-'सुबह जब हम 10 मील तक फैले माइलाम के इन शरणार्थी कैपों से गुजर रहे थे, तब इस सगीत का रहस्य मालूम हुआ। ये तमाम गिलहर और ममनसिंह जिले के हिन्दू-मुसलमान किसान है। वहां इनके खेतों में फसलें पक गयी होगी। फसल पकने पर काटने के पहले ये खूब जी भर कर नाचते गाते हैं। कल पकी फसलों की यांद से बांसुरी ढोल बजाकर नाच रहे थे। फसल कहीं और है, संगीत कहीं और, सिर्फ पकने का समय और उगता हुआ चांद इनके मन में फसल और सगीत को जोडा गया।'[106]

"अब गांव और ब्रह्मपुत्र के बीच में आधी मील का खुला फैलाव है। कुछ दूर तक खेत और उसके बाद रेत। खेत में कही-कही तिनके फूल खिले है, कहीं कहीं बैगन की छोटी-छोटी पौध, जिसमें इक्के दुक्के नीले फूल"[107]

भारती इस यात्रा पर पत्रकार के रूप में गये थे किन्तु विवरण देने की उनकी

शैली इन वक्तव्यों में झलकता व्यक्तित्व पत्रकार का नहीं, एक भावुक मानवतावादी चिंतनशील कवि का है। इस यात्रा विवरण की शैली कवित्व प्रधान है जो पत्रकारिता में बहुत ही विरल रहती है। इन विवरणो में बीच-बीच में दिए हुए शीर्षक उपशीर्षक. भी किसी कविता के जैसे है, जैसे पुष्पशक्ति से अग्निशक्ति, एक लैला मशीनगन वाली, फसल कहीं, संगीत कही, धन और नारी, पागल मेजर, शेर आदमी, पहली रात, मालाए और जयध्वनियां, ट्राजिस्टर और टूटी चूडियो, मृत्यु यात्रा का दूसरा चरण, आठ वरस का जासूस, इंदिरा मुजीज बहन भाई, झोपडो मे ककाल, वीरों का कैसा हो बंसत आदि।

युद्ध, बम, मशीनगनो-सबसे बीच से गुजरते हुए भी भारती अपने कवि को पीछे छोडते नहीं, मौका पाकर उसकी कविता उमड आती है- "मै मोटर वोट से झुककर कालिदी का जल अंजलि में लेना चाहता हूँ। अपने इलाहाबाद की कालिदी के शान्त मन्थरजल पर तैरती नावों पर अपने बचपन और कैशौर्य के अपने के कई महत्वपूर्ण मोडो की यादे कसकने लगती है।"[108]

अपनी युद्ध यात्रा की पहली रात का यह रोमांटिक चित्र केवल कविमना पत्रकार के लिए ही अकित करना सम्भव है- "अब चांदनी में सारा जगल बूदों का झरना बन गया है। लो अब चांदनी धीमी पड रही है। पौ फटने वाली है शायद पौ फटने के जरा पहले किसी घोसले में चिडियों के बच्चे कुनमुनाते है और जब यादों के इस जगल में सुबह का पहला पाखी धुँघरू की सी आवाज बोलता है, तब मुझे गहरी नींद आ जाती है। सिपाहियों की-सी गहरी,मगर सतर्क नींद। मेरी पहली सैनिक रात।"[109]

लेकिन भारत-पाकिस्तान युद्ध बांगला मुक्तिसंग्राम को लेकर घटित के दौरान भारती ने जो कुछ कहा उसमें उनकी कविता या रिपोर्ट महत्व की नहीं है। महत्वपूर्ण और सबसे ऊंचा स्वर है एक मानवतावाद चिंतनशील व्यक्ति का, जो युद्ध और हिंसा के अंधे युग की बर्बरता देखकर किर्तव्य विमूढ सा हो गया है। युद्ध क्या क्या नहीं करता, खून की नदियां और माँस का कीचड जितना चाहे पैदा कर सकता है। असहाय स्त्रियों पर बलात्कार करता है जिन्हें देख हिंस्त्र पशु भी शरमा जायें, बच्चों को लावारिस कर देता है।

ऐसी ही एक खूनी रग की खौपनाक शाम थी जब भारती एक 4–5 साल के बच्चे को हाथ में एक खोपडी लिये खडा हुआ देखा था। (बच्चे का विचार शायद यह होगा कि वह खोपडी उसके मा बाप की है) भारती के मन मे सवाल यह उठता है कि– "कत्ले आम के बीच पले ये अबोध बच्चे क्या जीवन भर सहज हो पायेगे, पाकिस्तानी दरिंदे यहा क्या कर गये है, क्या दुनिया मे मानवता और प्रजातत्र के ठेकेदार बनकर घूमने वाले गोरे कभी समझ पायेंगे,"[110]

युद्ध यात्रा के प्रसग को अंकित करते समय कहीं कहीं पर प्रदेश विशेष की ऐतिहासिक विशेषताए भी स्पष्ट की गयी है। प्रस्तुत है ब्रह्मपुत्र नदी के तीर का इतिहास ब्रह्मपुत्र तट की यह मिट्टी कितनी उपजाऊ है। मैं उस सावले से अधेड किसान और उसके दोनों सहाकय छोकरों को देखता हूँ। दूर पर उसके घर की दो औरतें बाकियां तोड तोड कर अलग रख रही हैं। सिध, गगा, ब्रह्मपुत्र। ससार की सर्वपथम महान सस्कृति की प्रवाह धारायें। हिमालय की पुत्रियॉ। जाने किस प्रागैतिहाकिस काल से चट्टानों से दुंद्वर्ष करते हुए जो मिट्टी बहाकर लायी हैं उसी की परतों ने वह धरती बनायी, जो ससार की महानतम सभ्यता की जननी बनी।[111] और आगे चलकर लेखक इस तट पर पल्लवित विविध आयामों वाली अनेकों सस्कृतियों की चर्चा करता है, जिनका ससारभर में यथोचित सम्मान हुआ और इसी नदी के तट पर स्थित किसान को सभ्यता के एवज में संसारभर की बर्बरता का सामना करना पडा है। रौंदे हुए खेत, जले हुए गाव, पोखरों में लाखें, भालों की बायोनेटकी नोको पर टके हुए बच्चे, बलात्कार से क्षत विक्षत बधुए और कन्यायें और सामूहिक कत्ले आम "वही उसका स्वार्थ रहा है।" राजनीति और शासन व्यवस्था के साथ साथ व्यापारियों ने भी इसका खून चूसने में कोई में कोई कसर नहीं रख छोडी है।

हिंसा, अत्याचार, बलात्कार, अन्याय, शोषण, दमन के साथ साथ मनुष्य स्वभाव का एक और पहलू होता है जो इस अंधेरे में आस्था की पगडंडी को अन्वेषण करता है-निस्वार्थ रूप से हमारे देश ने बांगला मुक्तिसंग्राम के अवसर पर यहीं कर दिखाया था। सुरक्षा, न्याय, स्वतन्त्रता के लिए अपने जीवन का बलिदान करने वालों के साथ हमारे देश का सैनिक भी अपनी रायफल ले जा खडा हुआ। अनास्था और पशुता की अराजकता,

फैलाने के बावजूद हमारी आस्था मनुष्यता पर थी। भारती इसीलिए कहते है,– "इसीलिए मनुष्य की गरिमा को पुन प्रतिष्ठत करने का हर सघर्ष मुझे महाभारत लगा है, जीवन को उसकी सम्पूर्ण विविधता मे प्रस्तुत करता है वह युद्ध क्षेत्र जो यहां नहीं वह कहीं नहीं, "यत्र भारते, तत्र भारते।"[112]

हमने यह युद्ध जीता। यह विजय बहुत बिरलो को मिली है ससार में निस्वार्थ भाव से भी भला कोई देश अपने पडोसी देश के लिए अपने जवानों का खून बहाता है। इसलिए माथा उठाकर कोई भी भारतीय पूछ सकता है, जैसा कि भारती ने पूछा है– "भारतीय होने के नाते आज सारे ससार के सामने सर ऊँचा करके पूछ सकता हूॅ कि है कोई ऐसा देश, जिसके जवानों ने अपना कोई स्वार्थ आरोपित किये बिना अपने बधु देश की मुक्ति के लिए उसकी धरती को अपना रक्त दान किया हो।"[113]

इस पुस्तिका के अन्तिम तीन पृष्ठ (पृष्ठ 46, 47 एवं 48) ब्रिगेडियर क्लेअर के शब्दों में लिखे गये है। इस प्रसग में ढाका पर भारतीय फौजों का कब्जा किये जाने ओर पाकिस्तानी सैनिको के आत्मसमर्पण की घटना वर्णित है।

कुल मिलाकर "युद्ध यात्रा" में भारती ने युद्ध मैदान का सजीव चित्र तो प्रस्तुत किया ही है, साथ ही यह भी ध्यान रखा है कि यह युद्ध–यात्रा मात्र न रहकर साहित्यिक कृति हो। दूसरे शब्दों में यह एक साहित्यिक पत्रकारिता का अप्रतिम निदर्शन है।

चीन संबंधी : यात्रा संस्मरण :

डॉ0 धर्मवीर भारती का और एक यात्रा संस्मरण साप्ताहिक "धर्मयुग" में धारावाहिक रूप से सन् 1978 में प्रकाशित हुआ, जिसमें भारती अन्य भारतीय पत्रकारों के साथ चीन यात्रा पर गये थे। चीन यात्रा का यह रिपोतोर्ज "युद्ध यात्रा" की अपेक्षा अधिक रोचक और गहन बना है। चीन की भौगोलिक, आर्थिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय–तस्वीर को सही–सही रूप में प्रस्तुत करने का भारती का "चीन जैसा देखा" एक प्रमाणिक प्रयत्न है।

हमारे देश के लिए चीन की राष्ट्रीयता, चीन की साम्यवादी सभ्यता, परिश्रम में

आस्था आदि चीजें निश्चित ही आदर्श होनी चाहिए। चीन में जो भी राष्ट्रीय है, प्रत्येक चीजें निश्चित ही उसके प्रति गहरी श्रद्धा रखता है। 'चीन जैसा देखा' मे चीन यात्रा के अवसर पर भारती ने यही अनुभव किया है– "चीन में राष्ट्रीय नेता के प्रति गहरी आदर भावना है। हमारे पास की तरह उन पर गोबर उछालने की परम्परा वहा नहीं मिलती है, न ही उसका कोई गुटबाज अपने समर्थन मे उनका उपयोग कर लेता है।"[114] और राष्ट्रीयता का यह भाव किसानों मे है, वहा के शासन व्यवस्था के नौकरों में है, नारियों में है, राष्ट्रीयता की यह भावना उनमे एक आत्मसम्मान के साथ एक शक्ति भी प्रदान करती है– "चीनी किसान स्वावलंबी होने में सम्मान समझता है, सरकार की सहायता अपमान इसलिए बडे–बडे पहाडो को खोदकर वे उपजाऊ जमीन बनाते है"[115] देश, देश की मिट्टी वहाँ का परिवेश खेती आदि के प्रति सम्मान जगाना राष्ट्रीय नेताओं का बुनियादी कर्तव्य होता है। "सामान्यत किसी भी विकासशील देश में यही होता कि इस विपन्न क्षेत्र के किसान या तो शहर में मजदूरी करने चले जाते, या दूसरे क्षेत्रों के सम्पन्न फार्मो में खेतीहर मजदूर बन जाते लेकिन हर अविकसित क्षेत्र को स्वय उसके साधनों से विकसित किया जाये, उसे यथा सम्भव परजीवी न बनाया जाये, यह चेयरमैन माओं की नीति रही है।"[116]

हिन्दी, बंगला, मराठी या अन्य किसी भाषा का व्यावहारिक स्तर पर प्रयोग करना हमारे लिए असम्भव सा है और कोई उसके सम्भव होने की बात करता है तो उसे हम दकियानूसी मूर्ख करार देते है। देवी अग्रेजी के अतिरिक्त और कोई पर्याय हमारे सामने होता है, इस बात पर भारतीय बुद्धिजीवी आज तो विश्वास नहीं कर सकेगा। भारती ने चीन यात्रा के दौरान उस देश की भाषा व्यवस्था के सामने अपना मस्तक झुकाया है– "लिपि के प्रश्न पर हमारे देश में खुली बहस हो रही है, लेकिन चीनियों की देश–शक्ति और स्वाभिमान के समक्ष नतमस्तक होना पडता है कि इन तमाम बांधाओं के बावजूद उन्हें एक राष्ट्र भाषा स्वीकार करने और उसे सारे देश में रंचमात्र कठिनाई नहीं हुई।..... कितनी ही भाषायें उपभाषाए चीन में है, लेकिन उन्होने पेंकिंग के आस पास बोली जाने वाली भाषा को चीन की राष्ट्रभाषा (सम्पर्क भाषा नहीं)।.. ....अनेक उच्चधिकारी अंग्रेजी या फ्रेंच जानते हुए भी हमसे जब औपचारिक ढंग से मिले तो अपनी राष्ट्रभाषा में उन्होने

स्वागत किया। अपनी राष्ट्रभाषा में हमसे बातचीत की और दुभाषियों का प्रवन्ध हमेशा रहा जो उनके उत्तर हमें अनूदित कर बताता रहें।"[117]

इस यात्रा विवरण में चीन की आर्थिक सामाजिक व्यवस्था को भी अकित किया गया है। चीन के यातायात के साधन नागरिक सभ्यता, वेशभूषा आदि पर यहा लेखक सोचता है– "केवल मिनी बसें, खाली बसें, जिनमे लाउड स्पीकर लगे थे और लोग भरे थे और साइकिलें, साईकिले, साइकिले। सभी की एक पोशाक, नीला या खाकी, हरा या भूरा सूती बुशकोट, उसी रग का पैटनुमा पाजामा। ओहदा कोई हो, वेतन कुछ हो उम्र कुछ हो, वही बुशकोट वही पाजामा।"[118]

भारती को पेंकिग का लोक जीवन भी बड़ा अजीब सा लगा। वे लिखते है– "यह भी कोई शाम हुई कि सबने छ बजे शाम को खाना खा लिया, 8 बजे तक सारा शहर सुनसान . पेड़ बहुत है पर एक भी पक्षी का कलरव नहीं सुन पडता। सुनो भाई पेकिंग । अगर तुम इस तरह पक्षियों के संयुक्त कलरव से रहित सवेरा करते रहोगे, तो मेरा मन कैसे जुडायेगा, वहां भारत में तो मेरी किताबों के बीच गौरैया घोसला करते रहते हैं। यह भी कोई बात हुई कि चिडिया सिर्फ तुम्हारे होटल के कमरों मे लगे कलात्मक चित्रों में दिखाई दे क्योकि ये तसवीर की चिडिया अन्न नहीं खाती।"[119]

इस यात्रा में भारती चीन के विभिन्न प्रदेशों से होकर लौट आये हैं और प्रत्येक स्थान की विशेषताओं को उन्होने बखूबी अकित किया है। 'ताचाई' प्रान्त तो किसी यूरोपियां का ही उदाहरण है। वहा के नेता, वहां की जनता, किसान डाक्टर, ऊँचे–ऊँचे पहाड सब अपने–अपने कर्तव्य के प्रति पूरी तरह से सतर्क है। इस प्रांत का इतिहास खून सना है किन्तु वर्तमान ताचाई राष्ट्र, प्रेम, शान्ति, संप्रभुता का असली प्रतीक है। भारती ने ताचाई के इतिहास के बारे में लिखा है– "ऐसी ही कच्ची गुफा गृहस्थियों का एक गांव हुआ करता था ताचाई। सामन्ती सूबेदार कभी पैसे वसूल करने आता था तो ये अपनी मटरी–मुटरी लेकर गुफायें छोडकर भागते थे, बूढे मां बाप और पांच छः किलकिलाते बच्चों के साथ, गिरते पड़ते। इन्हे घेर कर, पकड़कर लाया जाता था और एक बड़े किसी बिलों–वृक्ष के नीचे तने से बांधकर उन्हें कोडे मारे जाते थे।"[120]

किन्तु वह सर्वहारा किसान आज अपनी आत्मशक्ति और राष्ट्रप्रेम को जगा चुका है, जिसके बारे में भारती ने कहा है– "कैसा अजीव है कि ग्राम स्वराज्य का आत्मनिर्भरता का जो स्वप्न हमारे गाधीजी ने देखा था, उस स्वप्न को माओं की प्रेरणा से मार्क्सवादी मुहाविरे में पूरा कर रहे थे ताचाई के चीनी किसान।" और इन्हीं किसानों के बल पर देश के नेता का मस्तक ससार भर मे ऊँचा उठता है– "वताया गया कि 1963 शताब्दी की सबसे भयकर बाढ आयी। करीब 97 प्रतिशत मकान बह गये। प्रान्त की सरकार ने चार गुना मदद् मंजूर की, लेकिन ताचाई के स्वाभिमानी किसानों ने मदद नहीं ली। दिन में खेतों से बाढ का पानी उलीचा, टूटी मेडे बनायी पौधे जमाये और रात को मकान बनाने में जुटे। फिर ताचाई को बनाकर खडा कर दिया। उसके बाद ही चेरमैन माओं ने राष्ट्र को आवहन किया कि "खेतों में ताचाई को आदर्श मानों"[122]

चीन साम्यवादियों का देश है और साम्यवाद के नाम पर वहा नेता, राष्ट्र, तानाशाही के आगे व्यक्ति दब जाता है "लेकिन इन छोटी–मोटी खामियों को नजर अंदाज कर यह तो मानना ही पडेगा कि उन्होने खेती के बारे में जो दृष्टिकोण अपनाया, जिस प्रकार हर क्षेत्र को स्वालम्बी और स्वत· परिपूर्ण बनाने की चेष्टा की, भूमि की समस्या को सुलझाया, सिचाई के साधन उपलब्ध किये, किसानों का शोषण करने वाले महाजन–व्यापारी वर्ग के बिचौलिए वर्ग को निरर्थक बनाया, अपने ही क्षेत्र के पत्थर, कोयला, चूना, सूखी पत्तियों और गोबर का उत्पादन बढाने और निर्माण करने की प्रवृत्ति को बढावा दिया, वह सचमुच प्रशसनीय है।"[123]

चीन की आर्थिक व्यवस्था कृषक व्यवस्था में किये आमूल–चूक परिवर्तनों के कारण सुधरती गयी है। लेकिन व्यक्ति के व्यक्तित्व की सत्ता, राजनीतिक वातावरण जैसी कुछ चीजें है जो टेढी खीर बन कर ही सामने आती है, यात्रा पर जाने के उपरांत भारती ने पहले ही दिन देखा था कि "दूतवासों की इमारतों का किराया और उनके चीनी कर्मचारियों का वेतन भी इस आधार पर निर्धारित है कि कौन सा देश कितना मित्र है जो मित्र है या जिनसे चीन मैत्री का इच्छुक है, उनसे उतनी ही बड़ी इमारत का ज्यादा किराया।"[124] और व्यक्ति की सत्ता की नाम की चीज वहां बहुत कम महत्व की मानी गयी है–

"संपादक और अन्य वरिष्ठ अधिकारियों या पत्रकारो मतभेद हो, तो वे आपस में बहस करके एक नतीजे पर पहुच सकते है, लेकिन वह बहस पाठ्कों के समक्ष नहीं रखी जाती।"[125] और इसीलिए 'पीपुल्स डेली' जैसे ख्याति प्राप्त अखवार के संपादक को झाडू वाला बना दिया जाता है।

रूस और चीन के आपसी तनाव का समर्थन भारती के इन यात्रा के दौरान इस प्रकार मिलता है कि "रूस और चीन में पहले मार्क्सवाद को लेकर सैद्धान्तिक मतभेद बढे। फिर हमारे व्यापार और हमारी नौसेना पर उन्होने चुपके से पूरा कब्जा बनाना चाहा। बहाना सहयोग का था। इरादा निमत्रण का था हमारे लाखों आदमी आजादी के लिए मरे। हम सब क्यों किसी के गुलाम बनें।"[126]

भारत और चीन के बीच ताजे आपसी तनाव को भूलकर नये भविष्य की इच्छा चीन में भारती के सामने वहा के लोगों ने अभिव्यक्त की। इस पत्रकार मडली के मुख्य मेजवान सिनुआ के मतानुसार– "सद्भाव मैत्री का आधार बन सकता है। आप हमारी समाज पद्धति को देखें, शायद कई चीजें आपको को पसंद आयें। कई दिशाओं में आप हमसे आगे हो सकते है। वहॉ हम आपसे सीख सकते है।"[127]

और चीन से यदि हम कुछ सीखना चाहे तो वह है चीनियों की अनुशासनप्रियता जिसका भारती ने बराबर उल्लेख किया है जैसे– "कैट्न, शाघई नानकिंग, पेकिंग जैसे महानगरों और अनेक प्रांतीय राजधानियों, छोटे–छोटे कस्बों और गावों में कही किसी आदमी को शराब पीकर धुत होते, बेकार भटकते, भीख मांगते या किसी काम के लिए बख्शीया लेते हमने नहीं देखा। होट्लों के कमरों मे ताला लगाने की कोई जरूरत नहीं थी, कोई बैरा झुक कर टिप की लालच में सलाम नहीं करता था।"[128]

अपने उत्तरदायित्व के प्रति देश के प्रति, समाज के प्रति चीनी नागरिक पूर्णतः सतर्क रहता है और किसी न किसी रूप में अपने आपकों उपयोगी सिद्ध करने की कोशिश में लगा रहता है, जिसके कारण वह अपने आप को देश का नौकर ही नहीं, मालिक भी समझता है। भारती ने इसी अर्थ में लिखा है कि चीन में "पहले केवल सामंत स्वप्न देखते थे, राजा या रानियां या करोड़पति स्वप्न देखते थे, आज एक साधारण

से साधारण किसान स्वप्न देखता है कि उसके पास कम एक साईकिल हो, एक सिलाई मशीन हो, एक रेडियों हो ।"[129]

यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि चीन के आत्मनिर्भर, सघर्षशील, साम्यवादी लोक जीवन को देखकर लेखक के मन में अपने देश की भी तसवीर उभरती जाये। अत भारती लिखते है– "भारत के स्थानीय खनिज, भारत के बिना किसी 'राजनीतिक नेतृत्व' के बार–बार उपनिवेशवाद से लोहा लेने वाले बहादुर किसान इन सब में कौन सी समृद्धि की सम्भावनायें नहीं थीं, या अब नहीं है; पर हम क्यों अभी तक भूमि समस्या नहीं सुलझा पाये क्यों किसानो के खुरदुरे मेहनती हार्थो अभी तक भूमि समस्या नहीं सुलझा पाये; क्यों किसानों के खुरदुरे मेहनती हाथों को भविष्य का एक सही नक्शा नहीं दे पायें; क्यों उनके सीने पर बैठे महाजन बिचोलियों का अर्द्ध सामंती शोषकों को निरस्त नहीं कर पाये;"[130]

भारती की विवरण शैली का एक और कौशल यह है कि वह एक साथ इतिहास, भूगोल, व्यापार, कविता आदि आयामों में क्रियाशील रहती है। चीन की याग्त्सी नदी के तट पर खडे भारती सोचते है "यांग्त्सी और गगा। याग्त्सी के निकट ही था यांगचउ, जहा सिल्क बनता था जहां से सिल्क मार्ग शुरू होता था। वहां से नौकायें सिल्क लादकर समुद्रों को पार करते भारत तक पहुँचती थी। चीन के सिल्क को चीनांशुक कहते थे और वह पूजा में पहना जाता था। कुछ नौकायें गंगा के रास्ते वाराणसी तक आती थी और वाराणसी में सिल्क की सबसे बडी हाट थी। उन नौकाओं के लिए कार्तिक में वाराणसी में आकाशदीप जलते थे।"[131]

यात्रा विवरण में लेखक यात्री के लिए इस खतरे में बचना आवश्यक होता है कि उसके यात्रा विवरण में उसका 'स्व' हावी न हो जाय। भारती कहीं कहीं पर यह भूल अनजाने कर जाते हैं और यात्रा विवरण का स्थान आत्म–निवेदन–परक कविता लेने लगती है– "कौन है जिसे ऐसी खाली–खाली शाम परदेश में अपने बचपन का गांव याद न आये। मैं खड़ा खड़ा याद करा रहा हूँ अपने उस गांव रूदौली की, जहां, हीरो बहन और

रूप्पन जीजा के यहाजा पद्मा जिज्जी के यहा जाकर ठहरता था। हमारे अलावा बस्ती के सारे घर कच्चे थे। दरवाजों पर फटे टाट के पट्टे लेकिन शाम होते ही कभी ढोलक खनकी थी और सोहर सुन पड़ते थे, कभी माधौ चौधरी बैल हकाते हुए खेत से चैती गाते हुए गुजर जाते थे और कुछ नहीं तो अजहर इक्के वाला कोई सस्ती गजल गाता हुआ इक्का खडखड़ाते आ निकलता था।”[134]

संक्षेप में चीन यात्रा विवरण से यह स्पष्ट होता है कि भारती वहा के जीवन, समाज से बहुत प्रभावित हुए थे। विशेषत उस देश में लोगों की स्थिति आत्मा निर्भरता, राष्ट्र प्रेम और उत्तरदायित्व की पहचान से।

डॉ0 भारती द्वारा अनूदित कृतियाँ

1. आस्कर वाइल्ड की कहानियाँ : 1946 ई0 में प्रकाशित प्रस्तुत अनूदित कृति में “आस्कर वाइल्ड” की कुल आठ कहानियां है। मधु कल्पनामयी, रसपूर्ण भाषा में लिखने वाले वाइल्ड की इन कहानियों को चुनते हुए भारती ने उनमें पर्याप्त विविधता रखी है। अंग्रेजी साहित्य में वाइल्ड का महत्वपूर्ण स्थान है। एक ऊँचे दर्जे का कलाकार, भाषाका सम्राट एव मानवीय अनुभूतियों का चितेरा इस रूप में वाइल्ड को मान्यता मिली है। शिल्पसज्जा, शब्दचयन, चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति और भाषा प्रवाह की दृष्टि से आज भी उसकी कहानिया बासी नहीं लगती।

इन कहानियों के अनुवाद की अपनी सीमायें भी है। उदाहरण के लिए ‘मूर्ति और मनुष्य’ कहानी ली जा सकती है। आस्कर वाइल्ड की इस कहानी का मूल शीर्षक है “हैपीप्रिन्स”। कहानी की मूल वस्तु एवं कलेवर को देखते हुए “मूर्ति और मनुष्य” जैसा शीर्षक अधिक प्रसारणशील बन जाता है, घनत्व को बलि चढाता है। इसं कहानी का एक पात्र एक गोरैया है, जिसे भारती ने स्त्रीलिंग चरित्र बना दिया है। मूल कहानी में यह पुलिंग में प्रस्तुत हुआ है। इस परिवर्तन के कारण कहीं कहीं गहरी विसंगति आ जाती है। इसलिए इस गोरैया का पीली तितिली के पीछे पीछे भटकना रस निर्माण में कुछ अर्थ नहीं रखता।[133] फिर भी आइस्कर वाइल्ड की कहानियों को हिन्दी साहित्य में आंशिक रूप में

ही क्यों न हो, लाने के लिए भारती प्रससा के पात्र हैं।

2. देशांतर (1960 ई0):

(प्र0सं0 1960) बीसवी सदी के कुल एक सौ एकसठ विदेशी कवियों की कवितओं का छायानुवाद भारती ने "देशान्तर" में 1960 ई0 में प्रस्तुत किया था। एजरा पाउड, वालेस स्टीवेंम, ई0 ई0 कमिग्ज, रूपर्ट ब्रुक, जेम्स जायस, डी0 एच0 लारेंस, टी0एस0 एलियट, डब्ल्यू, एच0 आडेन, एलिजाबेथ जेनिग जैसे विभिन्न कवि की विविध रचनायें "देशातर" के माध्यम से हिन्दी में प्रथम बार आई हैं।

भारती ने इन अनुवादों को अनुवाद न कहकर "हिन्दी छायायें" कह है[134] क्योंकि स्वयं कवि होने पर अनुवाद के समय भारती के अन्दर एक रचनात्मकता भी सक्रिय रही है। इसी अर्थ में भारती लिखते है कि "पृथक सस्करण, पृथक काव्यरुढियां, पृथक बिम्ब समूह। जोड़ने वाला तत्व बहुत क्षीण रहता है। और ऐसी स्थिति में सफल अनुवाद प्रस्तुत करें तो वह शाब्दिक अनुवाद नहीं हों पाता और शब्दिक अनुवाद प्रस्तुत करें तो वह सफल नहीं हो पाता।"[135] अनुवाद की इस कठिनाई का एक नमूना देखिए–

The brown of fog toss up to me twisted faces
from the bottom of the street and steal from a passer-by with
muddys kirts Anaimless smile the hovers in the air
and vanishes along the level of the roofs"[136]

भारती इस पद्यांश की हिन्दी छाया यों प्रस्तुत की है–

"कोहरे की भूरी लहरें ऊपर तक उछल रही हैं
सड़क के तल्ले से मुड़े हुए चेहरे
और मैले कपड़ो में एक गुजरने वाली का आसू
और एक निरूद्‌देश्य मुस्कान जो हवा में चक्कर काटती है
और छतों की सतह पर फैलती विलीन हो जाती है।"[137]

हिन्दी भाषा की या भारती की अपनी भाषा की अपनी सीमाओं के कारण मूल खड के "Twisted, muddy" जैसे शब्द बिम्ब इस छाया में पूर्णत नहीं आते, क्षीण रूप में एक छाया-भाव मात्र आ जाता है।

भारती के इन अनुवादों का स्वतन्त्र महत्व इस दृष्टि से है कि इनकों पढने वाला भी हिन्दी पाठ्क बीसवी सदी के काव्यबोध से जागतिक स्तर पर साक्षात्कार कर सकता है। भारती ने अपनी ओर से इन कविताओं की हिन्दी में लाने में कोई कसर नहीं रखी है। स्वयं कवि होने के कारण इन एक सौ एकसठ कवियों की कविताओं के अनुवादों में भारती के व्यक्तित्व की हल्की सी छाया भी मिलती है। अनुवादक का उसकी रूचि, भाषा शैली आदि अनुवाद में उतरे बिना नहीं रहता। अतः स्पष्ट है कि सभी विधाओं में लेखन करने वाले भारती अनुवाद में सफल रहे हैं।

डायरी, यात्रा-विवरण, संस्मरण, व्यंग्य, कैरीकेचर, इतिहास, सपादकीय आदि सभी साहित्य शैलियों पर भारती का पूरा-पूरा अधिकार है यह तथ्य इन निबन्धों को पढने पर पाठ्क के सामने आता है। भारती के व्यक्तित्व के अनेकों पक्ष यहां निखर आए हैं। वे अभिनेता हैं। अच्छे व्यंग्य लेखक है, उर्दू ढंग से रोमांटिक प्रेमी हैं। प्राण हथेली पर लेकर अपनी कर्तव्य भूमि के लिए युद्ध मैदान में डटे रहने वाले वीर पत्रकार हैं, समाजवादी हैं कलावादी हैं, समीक्षक हैं। संक्षेप में भारती के व्यक्तित्व के कई आयाम है। "कहनी-अनकहनी" के अनेकों निबन्ध इस बात के गवाह है कि कहीं पर पंडित नेहरू जैसे महान नेता तक से वे टकरा गये हैं। अपनी आस्था जिन पर है, उनको भारती ने सम्मान दिया है और जिनसे पटती नहीं, उनकी निष्पक्ष आलोचना भी की है। यात्रा विवरण, व्यंग्य रूपक, श्रद्धाजलि, समीक्षा विधा कोई भी हो, लिखते वक्त भारती का कवि ही प्रधान रहता है किन्तु भारती को हम निरा भावुक या रूमानी कलाकार आसानी से नहीं कह सकते। भारती का अधिकार अनेकों भाषाओं पर, अनेकों विषयों पर अनेको भाषा-शैलियों पर रहा है और केवल कवि ही इन सबको एक साथ सचालित नहीं कर सकता, विचारक होना भी इसके लिए जरूरी है। इसलिए भारती का व्यक्तित्व प्रसाद की तरह मूलतः कवित्वप्रधान होने के बावजूद अपने अन्दर बहुत कुछ समेटता चला जाता हैं।

सन्दर्भ-संकेत

1 डॉ० धर्मवीर भारती, सूरज का सातवाँ घोडा, निवेदन भाग- साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद, द्वितीया वृत्ति-1955 ई०

2 स० डॉ० लक्ष्मणदत्त गौतम, धर्मवीर भारती, लक्ष्मणदत्त गौतम का लेख 'प्रगतिवाद बनाम अतीत जीविता और रोमैटिक प्रेम पृष्ठ 45-46- कुमार प्रकाशन, 20/5 मोतीनगर, नई दिल्ली-15, प्र०स०- जुलाई 1974

3 डॉ० धर्मवीर भारती, प्रगतिवाद एक समीक्षा पृष्ठ 85- साहित्य भवन लि०, प्रयाग, प्र०सं०- 1949

4 डॉ० धर्मवीर भारती, प्रगतिवाद . एक समीक्षा, पृ० 85- साहित्य भवन लि०, प्रयाग; प्र०स०- 1949

5 डॉ० धर्मवीर भारती, प्रगतिवाद : एक समीक्षा, पृ० 89- साहित्य भवन लि०, प्रयाग; प्र०स०- 1949

6 तदैव/पृष्ठ 105- साहित्य भवन लि०, प्रयाग, प्र०स०- 1949

7 तदैव/पृष्ठ 2- साहित्य भवन लि०, प्रयाग, प्र०स०- 1949

8 डा० धर्मवीर भारती, मावमूल्य और साहित्य, पृष्ठ 122- भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र०स०- 1960

9. तदैव/पृष्ठ 122- भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र०सं०- 1960

10. डॉ० धर्मवीर भारती, मानवमूल्य और साहित्य-भूमिका भाग- भारतीय ज्ञानपीठ, काशी; प्र०स०- 1960

11 डॉ० धर्मवीर भारती, मानवमूल्य और साहित्य पृ० 23- भारतीय ज्ञानपीठ, काशी; प्र०सं०- 1960

12. सं० डॉ० लक्ष्मण दत्त गौतम, धर्मवीर भारती पृ० 29- कुमार प्रकाशन, 20/5 मोतीनगर, नई दिल्ली-15, प्र०स०- जुलाई 1974

13. डॉ० धर्मवीर भारती, मानवमूल्य और साहित्य पृ०34- भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र०सं०- 1960

14. डॉ० हुकुमचंद राजपाल, धर्मवीर भारती साहित्य के विभिन्न आयाम, पृष्ठ 229- वि०भू० प्रकाशन, साहिबाबाद; प्र०सं०- 16 जनवरी 1980

15 डॉ0 धर्मवीर भारती, मानवमूल्य और साहित्य पृष्ठ 111- भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0स0- 1960

16 डॉ0 हुकुमचद राजपाल, धर्मवीर भारती, साहित्य के विविध आयाम, पृ0 266- वि0 भू0 प्रकाशन, साहिबाबाद, प्र0स0- 16 जनवरी 1980

17 कहनी-अनकहनी/लेफ्ट रैपर, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1970

18 कहनी-अनकहनी/दूसरा सस्करण/भूमिका पृ0-1, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1970

19 ठेले पर हिमालय/पृष्ठ 25, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1958

20 तदैव/पृष्ठ 41, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1958

21 तदैव/पृष्ठ 48, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1958

22 ठेले पर हिमालय/पृष्ठ 62, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1958

23 तदैव/पृष्ठ 22, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1958

24 ठेले पर हिमालय/पृष्ठ 22; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1958

25 ठेले पर हिमालय/पृष्ठ 36, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1958

26 तदैव पृष्ठ 37, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1958

27 तदैव पृष्ठ 38, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0- 1958

28 ठेले पर हिमालय/पृष्ठ 41, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0- 1958

29 तदैव/पृष्ठ 43, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1958

30 तदैव/पृष्ठ 68, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0- 1958

31. ठेले पर हिमालय/पृष्ठ 69; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1958

32 तदैव/पृष्ठ 80, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1958

33 तदैव/पृष्ठ 80; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0- 1958

34 ठेले पर हिमालय पृष्ठ 107, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; प्र0स0- 1958

35. धर्मवीर भारती/सं0 लक्ष्मण गौतमदत्त गौतम पृष्ठ 85, कुमार प्रकाशन, 20/5, मोतीनगर, नई दिल्ली-15; प्र0सं0- जुलाई 1974

36. पश्यन्ती/पृष्ठ 9; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; प्र0सं0- 1969

37. तदैव/पृष्ठ 11; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; प्र0सं0- 1969

38 तदैव/पृष्ठ 12, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1969

39 पश्चन्ती/पृष्ठ 22, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1969

40 तदैव/पृष्ठ 31, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1969

41 तदैव/पृष्ठ 41, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1969

42 पश्यन्ती/पृष्ठ 46, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1969

43 पश्चन्ती/पृष्ठ 48-49, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1969

44 अंधायुग/पृष्ठ 129, किताब महल, इलाहाबाद, सं0-1983

45 तदैव/पृष्ठ 130, किताब महल, इलाहाबाद, सं0-1983

46 धर्मवीर भारती/सपादक लक्ष्मणदत्त गौतम/पृष्ठ 65, कुमार प्रकाशन, 20/5, मोतीनगर, नई दिल्ली-15, प्र0सं0- जुलाई 1974

47 पश्यन्ती/पृष्ठ 56, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1969

48. तदैव/पृष्ठ 63, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1969

49 तदैव/पृष्ठ 64, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0- 1969

50 पश्यन्ती/पृष्ठ 66; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1969

51 तदैव/पृष्ठ 67, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0- 1969

52. तदैव/पृष्ठ 68; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0- 1969

53. तदैव/पृष्ठ 78, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0- 1969

54 पश्यन्ती/पृष्ठ 76, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0- 1969

55 तदैव/पृष्ठ 83, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; प्र0सं0- 1969

56 तदैव/पृष्ठ 88, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; प्र0सं0- 1969

57. तदैव/पृष्ठ 88-89, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0- 1969

58. पश्चन्ती/पृष्ठ 100, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0- 1969

59 तदैव/पृष्ठ 114, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0- 1969

60. देखिए-पश्यन्ती/पृष्ठ 128; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; प्र0सं0- 1969

61. तदैव/पृष्ठ 145, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0- 1969

62 कहनी-अनकहनी/दूसरा संस्करण/पृष्ठ सं0 1-2; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; प्र0सं0- 1970

63 कहनी–अनकहनी/पृष्ठ 14, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0– 1970

64 तदैव/पृष्ठ 17, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0– 1970

65 तदैव/पृष्ठ 41-42, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली. प्र0स0– 1970

66 कहनी अनकहनी/पृष्ठ 43-44, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0– 1970

67 तदैव/पृष्ठ 45, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0– 1970

68 कहनी–अनकहनी/पृष्ठ 92, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0– 1970

69 तदैव/पृष्ठ 101; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0– 1970

70 तदैव/पृष्ठ 94-95 तथा 164,165,166,167, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0– 1970

71 तदैव/पृष्ठ 3, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0– 1970

72 कहनी–अनकहनी पृष्ठ 74, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0– 1970

73 तदैव/पृष्ठ 163, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0– 1970

74 तदैव/पृष्ठ 33; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0– 1970

75 कहनी–अनकहनी/पृष्ठ 158, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0– 1970

76 तदैव/पृष्ठ 106, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; प्र0सं0– 1970

77 धर्मवीर भारती/सं0 लक्ष्मणदत्त गौतम/पृष्ठ 71, कुमार प्रकाशन, 20/5 मोतीनगर, नई दिल्ली–15; प्र0सं0– जुलाई 1974

78 कहनी–अनकहनी, पृष्ठ 47-48, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0– 1970

79 तदैव/पृष्ठ 27, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; प्र0सं0– 1970

80. कहनी–अनकहनी/पृष्ठ 28, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0– 1970

81 तदैव/पृष्ठ 22; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; प्र0सं0– 1970

82 तदैव/पृष्ठ 88, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; प्र0सं0– 1970

83 तदैव/पृष्ठ 145; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0– 1970

84 कहनी–अनकहनी/पृष्ठ 148, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; प्र0सं0– 1970

85 तदैव/पृष्ठ 124 ; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; प्र0सं0– 1970

86. तदैव/पृष्ठ 124; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; प्र0सं0– 1970

87 तदैव/पृष्ठ 37; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; प्र0सं0– 1970

88 हिन्दी साहित्य/डा0 नगेन्द्र द्वारा सम्पादित/पृष्ठ 549, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, स0-1973

89 तदैव/पृष्ठ 10,11

90 ठेले पर हिमालय/पृष्ठ 12, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1958

91 तदैव/पृष्ठ 12, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, प्र0स0- 1958

92 तदैव/पृष्ठ 14, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0- 1958

93 तदैव/पृष्ठ 15, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1958

94 तदैव/पृष्ठ 17, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0- 1958

95 ठेले पर हिमालय/पृष्ठ 18, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0स0- 1958

96 युद्ध यात्रा, पृ0 1, नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली, सं0- 1972

97 युद्ध यात्रा/पृष्ठ 9, नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली, स0- 1972

98 युद्ध यात्रा/पृष्ठ 19, नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली, स0- 1972

99 तदैव/पृष्ठ 40, नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली, सं0- 1972

100 तदैव/पृष्ठ 9, नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली, सं0- 1972

101 तदैव/पृष्ठ 9, नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली, स0- 1972

102 युद्ध यात्रा/पृष्ठ 22, नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली, सं0- 1972

103. तदैव/पृष्ठ 19; नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली; सं0- 1972

104. युद्ध यात्रा/पृष्ठ 25, नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली, सं0- 1972

105. तदैव/पृष्ठ 12, नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली, सं0- 1972

106 तदैव/पृष्ठ 15, नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली; सं0- 1972

107 युद्ध यात्रा/पृष्ठ 22, नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली, सं0- 1972

108. तदैव/पृष्ठ 18, नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली; सं0- 1972

109. तदैव/पृष्ठ 18, नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली, सं0- 1972

110. युद्ध यात्रा–पृष्ठ 13, नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली; स0- 1972

111. तदैव/पृष्ठ 44, नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली; सं0- 1972

112. युद्ध यात्रा/पृष्ठ 44; नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली, सं0- 1972

113. तदैव/पृष्ठ 44; नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली, सं0- 1972

114 धर्मयुग/30 जुलाई 1978/अंक 29, स डॉ0 धर्मवीर भारती, बम्वई,

115 तदैव/पृष्ठ 17; स डॉ0 धर्मवीर भारती, बम्वई,

116 तदैव/पृष्ठ 29, सं डॉ0 धर्मवीर भारती, बम्बई,

117 तदैव/पृष्ठ 29, स डॉ0 धर्मवीर भारती, बम्बई,

118 धर्मयुग/30 जुलाई 1978/अक 29/पृ0 10, स डॉ0 धर्मवीर भारती, बम्बई,

119. तदैव/पृष्ठ 19, ; स डॉ0 धर्मवीर भारती, बम्बई,

120 तदैव/पृष्ठ 15; सं डॉ0 धर्मवीर भारती, बम्बई,

121 धर्मयुग/30 जुलाई 1978/अक 29/पृ0 16; स डॉ0 धर्मवीर भारती, बम्बई,

122 तदैव/पृष्ठ 17; स डॉ0 धर्मवीर भारती, बम्बई,

123 तदैव/पृष्ठ 18; सं डॉ0 धर्मवीर भारती, बम्बई,

124. तदैव/पृष्ठ 19; सं डॉ0 धर्मवीर भारती, बम्बई;

125. तदैव/पृष्ठ 12; सं डॉ0 धर्मवीर भारती, बम्बई,

126. धर्मयुग/30 जुलाई 1978/अक 29/पृ0 13, सं डॉ0 धर्मवीर भारती, बम्बई

127 तदैव/पृष्ठ 13; सं डॉ0 धर्मवीर भारती, बम्बई

128. धर्मयुग/13 अगस्त 1978/अंक 31/पृ0 40, सं डॉ0 धर्मवीर भारती, बम्बई

129. धर्मयुग/30 जुलाई 1978/अंक 29/पृ0 19, सं डॉ0 धर्मवीर भारती, बम्बई

130. धर्मयुग/30 जुलाई 1978/अंक 29/पृ0 18, स डॉ0 धर्मवीर भारती, बम्बई

131. तदैव/पृष्ठ 15; सं डॉ0 धर्मवीर भारती, बम्बई

132. तदैव/पृष्ठ 21; सं डॉ0 धर्मवीर भारती, बम्बई

133. आस्कर वाइल्ड की कहानियां/दूसरा संस्करण-1960/पृष्ठ 62; धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली,

134. देशांतर/प्रथम संस्करण-1960 पृष्ठ 5, धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली;

135. देशांतर/पृष्ठ 7; धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली,

136. देशान्तर/पृष्ठ 109; धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली;

137. देशान्तर/पृष्ठ 109, धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली;

सप्तम् अध्याय

पत्रकार भारती : हिन्दी पत्रकारिता को योगदान

छायावादोत्तर हिन्दी पत्रकारिता को समृद्ध करने वाले लेखकों में डॉ0 धर्मवीर भारती का अप्रतिम स्थान है। डॉ0 भारती ने लगभग सारी विधाओं में लिखा है। निबंध, नाटक, कविता, उपन्यास, पत्रकारिता, कहानी, आलोचना, यात्रा विवरण आदि साहित्य की अनेक विधाओं में डॉ0 भारती ने अपनी दक्षता प्रमाणित की है। अपनी समस्त कृतियों के माध्यम से भारती का स्थान अपने समकालीन लेखको की अपेक्षा शीर्ष पर रहा है। "भारती जैसे लोगों का काम है समय से लडना, समय के साँचे को जान लगाकर तोडना- फोडना। वे जमाने से बंधना नहीं चाहते। उनकी प्रतिभा जलते हुए तीर की तरह जमाने को चीरकर आगे बढ़ना चाहती है।"[1]

डॉ0 धर्मवीर भारती के समकालीन रचनाकारों में अनेक का संबंध पत्रकारिता से रहा है। अमृतराय, कमलेश्वर, मार्कण्डेय, मोहनराकेश, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, राजेन्द्र यादव आदि नाम हैं जो पत्रकारिता से जीवन-यापन या रचनात्मकता के विशेष आग्रह के कारण संपृक्त रहे। बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ0 धर्मवीर भारती द्वारा संपादित 'धर्मयुग' का स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी पत्रकारिता को अनुपम योगदान है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र द्वारा संपादित 'कवि वचनसुधा' एव 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' पं0 मदनमोहन मालवीय द्वारा संपादित 'अभ्युदय', बालकृष्ण भट्ट द्वारा संपादित 'हिन्दी - प्रदीप', बालमुकुन्दगुप्त द्वारा संपादित 'भारतमित्र', पं0 प्रतापनरायण मिश्र द्वारा संपादित 'ब्राम्हण' श्री पराडकर द्वारा संपादित 'आज', श्री गणेश शंकर विद्यार्थी द्वारा संपादित 'प्रताप', माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा संपादित 'कर्मवीर', पं0 महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित 'सरस्वती' एवं मुंशी प्रेमचन्द्र द्वारा संपादित 'हंस' की परम्परा में डॉ0 धर्मवीर भारती ने 'धर्मयुग' का संपादन करके नवलेखन को प्रोत्साहित कर साहित्य का जो उपकार किया है, उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता है।

भारती की पत्रकारिताः

डॉ0 धर्मवीर भारती की पत्रकारिता को हम तीन चरणों में बाँट सकते हैं-

(अ) अध्ययनकालीन पत्रकारिता

(ब) अध्यापनकालीन पत्रकारिता

(स) पूर्णकालीन पत्रकारिता

(अ) अध्ययनकालीन पत्रकारिताः

डॉ0 भारती ने बी0ए0 की पढ़ाई का खर्च ट्यूशन करके निकाला था। एम0ए0 की पढाई के समय भारती जी ने प0 मदनमोहन मालवीय द्वारा स्थापित एव उनके पौत्र पद्कांत मालवीय द्वारा सपादित 'अभ्युदय' में अंशकालीन पत्रकार के रूप में कार्य किया। कहा जाता है कि भारती द्वारा लिखी गई दो टिप्पणियों – लार्ड लिनलिथगो के बारे में और गॉधी जी की घडी के सबध में पर बहुत उत्तेजक और गरमागरम चर्चा हुई।[2] भारती 'अभ्युदय' में केवल दो वर्ष (सन् 1946–1947) ही रहे। पत्रकारिता का प्रशिक्षण उन्हें यहीं से मिला।

संगम में सह संपादक : भारती ने "संगम" में सह संपादक के रूप में दो वर्ष (सन् 1948–1950) तक कार्य किया। उनके साथ ओंकारशरद भी सह संपादक थे, जो लीडर प्रेस में 'भारत' के संपादक हुए। 'सगम' सचित्र साप्ताहिक पत्र था। उसका प्रकाशन 15 अगस्त 1947 से प्रारम्भ हुआ और वह सन् 1954 तक प्रकाशित होता रहा। एक अंक का मूल्य चार आने था। वार्षिक दर 12 रूपये थी। मुख्य पृष्ठ पर संपादक के रूप में श्री इलाचन्द्र जोशी का नाम था। सह संपादकों के नाम नहीं दिए जाते थे। यद्यपि सह–संपादक ही गेटअप, अनुवाद, प्रूफ संशोधन एवं संपादकीय लिखने आदि का सभी काम करते थे।[3] 'संगम' की इस अन्यायपूर्ण परम्परा को डॉ0 भारती ने 'धर्मयुग' में जाकर तोड़ा और संपादकीय विभाग के सभी सदस्यों के नाम–निर्देश करने की नूतन प्रथा प्रारम्भ की। कालांतर में उसका अनुकरण अन्य पत्रिकाएं भी करने लगी।

संगम के लेख : सन् 1948 के 'संगम' (अक्टूबर, नवम्बर, दिसम्बर)[4] के अंकों में भारती के निम्नलिखित लेख प्रकाशित हुए थे –

1. नये युग के मसीहा बापू–3 अक्टूबर, 1948
2. यूरोप की आधुनिक चित्रकला–10 अक्टूबर, 1948

3 आधुनिक मनोविकारग्रस्त चित्रकला-17 अक्टूबर, 1948

4 पुर्तगाली कविता में भारत-31 अक्टूबर, 1948

5 नरक की राजधानी में-14 नवम्बर, 1948

6 कांग्रेस की कहानी-काग्रेस अंक, 1948

नये युग के मसीहा बापू : यह लेख "सगम" के अक्टूबर 1948 के अक में प्रकाशित हुआ है। इस लेख में एक पूरे पृष्ठ पर महात्मा गाधी का छाया चित्र दिया गया है, जिनके नीचे लिखा हुआ है- "पुण्य जयंती के अवसर पर बापू को 'सगम' की श्रद्धांजलि। स्पष्ट है कि "संगम" का यह अक श्रद्धाजलि अंक है और सह-सपादक के नाते भारती ने यह समसामयिक श्रद्धांजलिपरक लेख लिखा है। लेख का प्रारम्भ गाधी जी के जीवन में घटित एक घटना से किया गया है। बात उस समय की हे जब उन्होनें अपने लडके का इलाज स्वयं करना शुरू किया और डाक्टरों की मरीज को अडा देने की सलाह अस्वीकृत कर दी। बच्चे को 104 अंश तापमान था। गांधीजी उद्‌भ्रांत से बाहर घूमने लगे। इस घटना के प्रतीकार्थ की ओर संकेत करते हुए लेखक ने उसे युग की समस्या के प्रति गांधी की गहन चिंता से कुशलतापूर्वक संबंधित कर दिया है-

"असली समस्या तो यह थी कि महज उनका बच्चा नहीं, वरन् धरती की सभी संताने बीमार है। उनकी तरूणाई में, उनकी कल्पना में, उनकी राजनीति में उनकी संस्कृति में, उनके साहित्य में, उनके धर्म में, उनकी कला में, उनके दर्शन में सभी में एक घुन लग गया है, किसी ऐसे भयंकर रोग के कीटाणु लग गए हैं, जिन्होनें उन्हें अंदर से खोखला बना दिया है, जिससे वह केवल पाशविक प्रवृत्तियों के भयानक बने कंकाल मात्र रह गए हैं। उनका संतुलन बिगड चुका है, उनका समन्वय नष्ट हो चुका है, उनकी आंखे पीली और निस्तेज है और उनकी सारी संस्कृति धीरे-धीरे दम तोड रही है। यह सवाल केवल एक सुन्दर बच्चे का नहीं था। यह सवाल मानव जीवन के चिरन्तन सौन्दर्य का था जो अमंगलकारी छायाएं मानवता की आत्मा को अपने काले पंखों से ढक रही है, उनसे छुट्कारा पाने के लिए क्या कोई भी भौतिक समाधान काफी हो सकता है।"[5]

यह भाषा-शैली अखबारी पत्रकारिता की नहीं है। इसे तो "अंधायुग" का कृति

लेखक ही लिख सकता है। सामान्य घटना को प्रतीकात्मकता की सूक्ष्म डोर से युगीन समस्या एव बापू की मसीहाई से जोड देना किसी भारती जैसे कृति लेखक के लिए ही सभव था।

यूरोप की आधुनिक चित्रकला रविवार, 10 अक्टूबर 1948 के अक में प्रकाशित यह लेख पर्याप्त अध्ययन के बाद लिखा गया है। यह सचित्र लेख है और इसमें आठ चित्र दिए गए हैं। इस लेख में भी गद्य की "भारती–शैली" वर्तमान है। रोथे–स्टीन के "एक शरद्कालीन दृश्य!" शीर्षक चित्र की प्रेरणा का उल्लेख करते हुए भारती ने लिखा है– "अब आप कल्पना कीजिए– एक शरद–काल की दोपहर, हल्की शर्बती धूप की सुनहरी चादर ओढ़े सारी धरती शान्त पडी है, दूर–दूर तक फैले खेत निस्तब्ध है, किसान अपना काम छोडकर आराम कर रहे हैं।"[6]

यूरोप की आधुनिक चित्रकला की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करने के बाद अंत में वे उसकी अस्पष्टता की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं– "यह ठीक है कि कहीं–कहीं पर यह कला, कलाकार की इतनी वैयक्तिक सम्पत्ति हो जाती है कि हम उसे नहीं समझ पाते। यह उचित नहीं, कला में सार्वभौमता तो होनी ही चाहिए, व्यक्तिगत मर्मस्पर्शिता तो होनी ही चाहिए, लेकिन हमें यह सदा ध्यान में रखना चाहिए कि जब किसी भी कला की किसी भी नई शैली का प्रादुर्भाव होता है तो प्रारम्भ के अस्पष्टता रहनी स्वाभावित होती है।"[7] यह लेख इस चित्रकला को देखने के लिए आवश्यक दृष्टिकोण की ओर संकेत करता है। कला–समीक्षक की जोरदार प्रतिभा के निर्देशन इस लेख में होते हैं।

आधुनिक मनोविकार ग्रस्त चित्रकला : यह भी सचित्र लेख है। इसमें पांच चित्र दिये गए हैं। पाश्चात्य देशों के आधुनिक चित्रकारों की कला के रहस्य का उद्घाटन करते हुए भारती ने लिखा है– "वह किसी वस्तु का यथावत् चित्रण नहीं करता वरन् उस वस्तु को देखकर, उसके चेतन या अर्द्धचेतन मन में कौन–सी भावतरंगे उठती है, वह क्या विचार करता है, इन सब तत्वों की अभिव्यक्ति, उसके चित्रण में प्रमुखता पा जाती है। इसके चित्रण का लक्ष्य वह वस्तु न रहकर उसका मन हो जाता है। इसी कारण एक साधारण व्यक्ति जब

उन चित्रों को देखता है तो वह अक्सर हतप्रभ रह जाता है और समझ नहीं पाता है कि इसके वास्तविक अर्थ क्या हैं।"[8]

लेखक ने लेख में दिए गये चित्रों की व्याख्या भी की है। पहले चित्र के सम्वन्ध में वह लिखता है– "यह एक सिह का चित्र है किन्तु ऐसा सिह जो शायद किसी जंगल में न मिले, सिवा उलझे विचारों के उन घने जंगलों में, जहाँ भूल से कोई रोशनी की किरण झाँक नहीं पाती। यह सिह वास्तव में उस कलाकार के व्यक्तित्व के उस भयानक अश का प्रतीक है, वह पशुतापूर्ण, हिस्र अंश जो मानव के व्यक्तित्व में आदिम युग से चला आ रहा है और जिससे स्वयं कलाकार भयभीत सा मालूम होता है।"[9]

लेख में "मन· तत्व" नामक एक ऊलजलूल चित्र भी दिया गया है। उसकी व्याख्या करते हुए भारती ने लिखा है कि चित्र का निर्माता मानसिक रूप से अशान्त और अव्यवस्थित था और अन्त में उसने आत्महत्या कर ली। निश्चित रूप से भारती का यह लेख किसी अंग्रेजी पुस्तक या लेख पर आधारित है।

पुर्तगाली कविता में भारतः

पुर्तगाली कवियों को भारतीय संस्कृति से कैसे अपूर्व प्रेरणा मिली थी, इस तथ्य से परिचित कराने के लिए ही यह लेख लिखा गया है। पाठकों को यह पढ़कर हर्षामिश्रित आश्चर्य होगा कि पुर्तगाल का आधे से ज्यादा ललित साहित्य भारत पर लिखा गया है।

पुर्तगाली कवि कामो (जन्म 1524 ई0) ने भारत में रहकर "लुसिकादास" नामक महाकाव्य लिखा। पुर्तगाली सेना में भरती होकर सन् 1553 ई0 में वह भारत आया था। सन् 1561 में उसका महाकाव्य प्रकाशित हुआ। अपनी मृत्यु के शताब्दियों बाद कामो पुर्तगालियों का सर्वश्रेष्ठ कवि माना गया। अपने महाकाव्य के सप्तम सर्ग में ब्राह्मणों का वर्णन करते हुए उसने लिखा है– "भारत में जो कुछ पवित्र है उन सबका मालिक ब्राह्मण है। ये लोग अपने को ब्रह्मा का वंशज बताते हैं और उनके भोजन के लिए छोटे से छोटे जीव की भी हत्या नहीं होती।"[10] एक अन्य गीत में भारतीय नारी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए वह लिखता है– "मैनें सुकुमार किसलयों की शैया पर सोया हुआ कोई गुलाब

इतना सुन्दर नहीं देखा। उसके बालों के कालेपन के कारण पुर्तगाल के लोगों की रुचि सुनहले बालों से उठती जा रही है।"[11]

जेरोनिर्मो कोतेरील नामक कवि ने दीव के घेरे के वारे में 21 अध्यायों का महाकाव्य लिखा। यह कवि भारतीय समुद्र में पुर्तगाली बेडे का अध्यक्ष था। बीसवीं शताब्दी में तो भारत ही इन कवियों की मातृभूमि हो गई। फर्नेन्डो नील, लेडी फ्लोरेशिया एवं मेरियानों ग्रेशियास ने स्वप्नों के देश भारत की बहुत प्रशशा की है। कवि फ्लोरियातों बैंटली ने भारतीय विषयों पर अपने गीत लिखे हैं। लेख के अत में भारती ने लिखा है– "सच तो यह है कि जिस तरह भारत ने 4 शती तक लगातार पुर्तगाल की सस्कृति का निर्माण किया है, उसे देखते हुए यदि हम पुर्तगाल को भारत का साहित्यिक उपनिवेश कहें तो अतिशयोक्ति न होगी।"[12] भारती की विषय प्रतिपादन की शैली तो प्रभावशाली है ही, विदेशी कविताओं का हिन्दी में अनुवाद करने की कला पर भी उनका असाधारण अधिकार है। इस प्रतिभा के दर्शन आगे चलकर 'देशांतर' नामक पुस्तक में होते हैं, जो देश-विदेश की अनूदित कविताओं का सग्रह है।

नरक की राजधानी में:

यह सचित्र लेख अमेरिका के सबसे बडे नगर न्यूयार्क के बारे में है। लेखन-शैली महत्वपूर्ण विशेषत यह है कि लेखक ने न्यूयार्क देखा नहीं है लेकिन वर्णन इस प्रकार कर रहा है, मानो आखों देखी घट्ना है, वह देखिए, वाल्ड्रोफ आस्टोरिया के जलपान गृह में बैठी हुई, मदिरापान करती हुई अधेड औरतें। उनके पास से गुजरिए, महक से आपका दिमाग घूम जायेगा, सिल्क की सरसराहट आपकी सासों को गुदगुदा देगी। और याद रखिए यह अधेड़ औरतें हैं, जवान लडकियों की बात मैं नहीं करता।[13] इस लेख के लिखते समय लेखक प्रगति वादी दौर से गुजर रहा था, इसलिए रूस के प्रति उसका कोमल कोना है– "आधी शती पहले न्यूयार्क के ये 'महा धर्मप्राय' बनिए भारत की निन्दा करते थे, और आज रूस को अधार्मिकता की बुराई करते हैं।"[14] अमेरिका के प्रति भारती के मन में तीव्र नफरत है। नीग्रो के प्रति गोरी चमडी वालों के व्यवहार के प्रति वे बहुत कटु होकर लिखते

हैं- "गोरे और काले चमडे के आधार पर बनी हुई यह चमकारों की सभ्यता। इससे अच्छी तो ऊद् बिलावों और जहरीले सांपों की सभ्यता होगी।"[15] आदमखोर जगलियों की कौम इनसे बेहतर होगी।" भौतिक सभ्यता के प्रति तीव्र आक्रोश प्रकट करते हुए भारती ने बाईविल के हवाले से उसे बेबेल कहा है और बेबेल के समान ही उसके विनाश की भविष्यवाणी की है।"[16]

कांग्रेस की कहानीः

प्रस्तुत लेख कांग्रेस की स्थापना से लेकर स्वतत्रता के प्रभात के आने तक का इतिहास है। यह विवरण जिस अभूतपूर्व साहित्यिक शैली में प्रस्तुत किया है, वह डॉ0 भारती की साहित्यिक प्रतिभा का परिचायक है। कांग्रेस के सम्बन्ध में लेखक ने निम्नलिखित विचार किसी भी गद्य साहित्य के पारखी को मंत्रमुग्धकर सकते हैं-

"कांग्रेस की कहानी, एक संस्था की कहानी नहीं है, एक दल की कहानी नहीं है, एक देश की कहानी नहीं, वह संसार के इतिहास के सबसे ज्यादा रक्तरंजित लेकिन सबसे ज्यादा भाग्यशाली युग की कहानी है, वह संसार के इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण मगर सबसे ज्यादा रक्तहीन क्रान्ति की कहानी है वह मानवता के सबसे शानदार, सबसे महान और सबसे महत्वपूर्ण आन्दोलन की कहानी है।"[17]

नेहरू और गांधी के मिलन की घटना का "भारत शैली" में वर्णन दृष्टव्य है- "फूल की पाखुरियों जैसे दुलार में पला हुआ, चन्द्रकिरन जैसा सुकोमल मगर आग की लपट की तरह तेजतर्रार जवाहर भी अपने व्यक्तित्व का सारा विद्रोह लेकर उन लपटों में कूद पड़ा। गांधी और जवाहर की भाषा अलग थी मगर लक्ष्य एक। गांधी वैष्णव सन्तों की पूजा वाणी में बोलते थे और जवाहर नये विद्रोही के अग्नि स्वर में, मगर दोनों का देवता एक भारत।"[18]

दक्षिण अफ्रीका में सफलतापूर्वक आन्दोलन चलाकर आए गांधी में लोगों को संभावनाएं दिखाई दी। इस बात को भारती ने यों रखा है- "स्वयं कांग्रेस के बडे-बड़े कर्णधार यह समझते थे कि मोटी खादी में लिपटे हुए इस दुबले-पतले व्यक्तित्व में किसी

ऐसी अनजान वशी का स्वर गूंजता है, जो भारत की आत्मा को किसी वडे महान लक्ष्य की ओर खींच रही है।"[19]

"संगम" के इन लेखों से यह स्पष्ट है कि यह कलम दैनिक समाचार पत्रों की नीरस पत्रकारिता के लिए नहीं बनी है। इसे तो साहित्यिक पत्रकारिता की ओर ही गतिशील होना चाहिए। यदि भारती ने अपनी कलम को नीरस पत्रकारिता के मोह से न वचाया होता तो वे नवलेखन के सशक्त हस्ताक्षर बनकर उसका नेतृत्व न कर पाते, जिसके आधार पर कालांतर में वे 'धर्मयुग' के सपादक बने थे।

(ब) अध्यापनकालीन पत्रकारिताः

सन् 1950 ई0 से 1960 ई0 के बीच के काल में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक के रूप में कार्य करते हुए डॉ0 धर्मवीर भारती 'नयी कविता' एवं 'निकष' नामक संकलनों से सपादक या परामर्शदाता के रूप में सम्बद्ध रहे। 'नयी कविता' एवं 'निकष' दोनों पत्रिकाओं का लेखकों एव कवियों की नई पीढी को आगे लाने में महत्वपूर्ण योगदान है।

नयी कविताः

"नयी कविता" साहित्यकारों का सहकारी प्रयास था किन्तु इसके प्रकाशन की योजना के प्रमुख सूत्रधार डॉ0 धर्मवीर भारती ही थे।[20] इसका प्रकाशन सन् 1954 से प्रारम्भ हुआ और कुल आठ अंक निकले। संपादक के रूप में डॉ0 जगदीश गुप्त अंत तक रहे। उन्हें क्रमशः डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी, विजयदेवनारायण शाही, श्रीराम वर्मा एवं प्रमोद सिन्हा ने सपादन सहयोग दिया। प्रकाशन भी क्रमश राजकमल प्रकाशन, किताब महल एव लोकभारती प्रकाशन के तत्वावधान में हुआ। प्रकाशन- व्यय आदि के लिए साहित्यकारों से चन्दा लिया जाता था। इस सम्बन्ध में डॉ0 जगदीश गुप्त का सस्मरण दृष्टव्य है- "उसके प्रकाशन के लिए जिनसे मैने चन्दा उगाहा उनमें कई कवि पिछली पीढ़ी के भी थे, हम उम्र सहयोगी और साथी तो थे ही। पन्त जी ने प्रथम अंक के लिए विशेष टिप्पणी लिखी और चेक भी दिया। महादेवी जी ने पैसा तो दिया पर इस सुझाव के साथ कि इसका नाम

"नयी कविता" न रखकर मात्र "कविता" रखा जाये। जाहिर है कि मैंने उनके पैसे का उपयोग किया और सुझाव, जिससे मैं सहमत नहीं था, अपने पास रख लिया।" धर्मवीर भारती "नयी कविता" के सूत्रधार ही नहीं थे, नयी कविता के माध्यम से वे नई पीढी पर छा गये। डॉ0 जगदीश गुप्त के शब्दों में– "अंधायुग" और "कनुप्रिया" के अश पहली बार "नयी कविता" में प्रकाशित हुए तथा बहुसख्यक कवियों पर देखते-देखते भारती का व्यक्तित्व छा गया।"[22]

"नयी कविता" के पहले ही अंक की जोरदार प्रतिक्रिया हुई और उसने "सारे हिन्दी –जगत् को जड़ से हिला दिया। "नयी कविता" और 'निकष' दोनों ही "साहित्य–सहयोग" की ओर से प्रकाशित होते थे। "नयी कविता" में प्रारम्भ में कुछ लेख रहते थे। बाद में "परिचय" के अन्तर्गत किसी एक कवि पर समीक्षात्मक लेख तथा उसकी कविताएं दी जाती थी।[24] इसके बाद "सव्याख्या" के अन्तर्गत एक कवि स्वयं अपनी कविताओं की व्याख्या करता था। तदन्तर "संचयन" के अन्तर्गत कवियों की रचनाएं संकलित रहती थी।[25] "नयी कविता" में भारती का योगदान उसी प्रकार का है जैसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का "कवि–वचन सुधा" एवं "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" में तथा जयशंकर प्रसाद का "इन्दु" में रहा है। "परिचय" के अन्तर्गत प्रस्तुत कवियों–लक्ष्मीकान्त वर्मा, सर्वेश्वर, कुँवर नारायण, विपिन कुमार अग्रवाल को आगे चलकर बहुत अधिक मान्यता मिली। लक्ष्मीकान्त वर्मा ने "नयी कविता के प्रतिमान" नामक भारी भरकम ग्रन्थ लिखकर इस काव्यान्दोलन के पीछे निहित विचारधारा को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। नयी कविता में "किचित कविता" के रूप मे जो व्यग्य परक कविताएं प्रकाशित होती थी, उन्हें ठीक ढंग से समझकर या जानबूझकर नए काव्य विरोधियों ने उसके ऊलजलूल होने की घोषणा की। प्रगतिवादी कविता के स्थान पर नई कविता को जन–मानस में प्रतिष्ठित करने में "नयी कविता" ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। आज तो नए कवि एवं उनकी कृतियाँ उन्हीं आचार्यो के विभागों में पढ़ाई जा रही है, जिन्होनें उसकी प्रगति के रथ को अवरूद्ध करने में कोई कसर नहीं उठा रखी थी।

नयी कविता का प्रभाव अन्य कवियों पर भी पडा– पत जी तक ने "कला और बूढ़ा चाँद" जैसी रचना लिखकर नयी कविता से अपनी निकटता प्रमाणित की और उसके शैली

शिल्प की विशेषताओं को अपनी परिवर्तनप्रिय प्रकृति के अनुसार अपनाने की चेष्टा की। दिनकर भी ''नील कुसुम'' में 'अगुआ' के स्थान पर कविता के ''पिछलगुआ'' बनने को तैयार हो गये।[26]

इस प्रकार ''नयी कविता'' के प्रकाशन, सपादन एवं सामग्री सकलन में भारती की मेधा का योगदान अस्वीकृत नहीं किया जा सकता।

निकषः

निकष साहित्य-सहयोग के तत्वावधान में साहित्य-भवन, लिमिटेड, प्रयाग द्वारा प्रकाशित हिन्दी के श्रेष्ठ नवलेखन का अर्द्धवार्षिक संकलन था, जिसे धर्मवीर भारती तथा लक्ष्मीकांत वर्मा संपादित किया करते थे। निकष का पहला सकलन जुलाई 1955 में निकला। इसमें प्रकाशित कमल जोशी की ''फुलवसिया'' नामक कहानी के बारे में यह कहा गया कि यह सतीनाथ भादुडी रचित 'सतीनाथ' नामक बंगला कहानी का रूपान्तर है। इस सम्बन्ध में बिहार के किन्ही रमण, सह सम्पादक 'देश' (जिसे सतीनाथ प्रकाशित हुई थी) श्री सागरमय घोष एवं 'फुलबसिया' के लेखक कमल जोशी के पत्र निकष-2 में प्रकाशित हुई थी। निकष-2 में डॉ0 लक्ष्मीनारायण लाल की कहानी 'सूने आंगन रस बरसे', स्वर्गीय फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'परती परिकथा' का एक अंश (शीर्षक 'परिवर्तन') दुष्यन्त कुमार की कविता 'सूर्य का स्वागत' आदि प्रकाशित वे रचनाएं हैं जो आगे चलकर अत्यधिक चर्चित हुई। 'निकष' के तृतीय एव चतुर्थ अक सयुक्ताक थे। इसमे डॉ0 लक्ष्मीनारायण लाल का प्रयोग सम्पूर्ण नाट्क 'मादा कैक्टस' एव कृष्णा सोबती का लघु उपन्यास 'डार से बिछुडौ' संकलित है। 'निकष' के इसी संयुक्तांक में (जनवरी, 1957) प्रारम्भ में ही स्वर्गीय सतीशचन्द्र चौबे की कविता 'रोशन हाथों की दस्तकें' सकलित है। इस कविता के देने के औचित्य के सम्बन्ध में एक सक्षिप्त टिप्पणी 'बाक्स आइटम' के रूप में दी गई है- 'इस संकलन का सभारम्भ इस कविता से करके, 'निकष' इस प्रतिभाशाली कवि का सम्मान करता है जो बाईस वर्ष की अल्पायु में इसी वर्ष, परिचित होने के पूर्व ही हमसे विदा हो गया।''

'निकष' वालों को पूजीवाद समर्थक व्यक्तिवादी कहने वालों को चाहिए कि वे इस युवा कवि की कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखे-

"सभी रोशनी देने वाले हाथ
मिले, और कसकर बॉध ले एक-दूसरे को आज
ताकि यही से मारना शुरू करें दस्तकें
विश्व के अंधेरे कपाटों पर
वे मिले-जले-कसकर बंधे रोशन हाथ।[28]

ये पंक्तियां उसी 'निकष' में छपी थी, जिसे प्रगतिवादी, पूजीवाद समर्थक कहकर आक्रोश का निशाना बनाया करते थे। निकष-2 में इस सकलन के लक्ष्योद्देश्य को स्पष्ट करने वाले चार मुद्दे दिये गये हैं-

निकष (1)- एक नये तरह के संकलन की योजना है जो वर्ष में अभी दो बार प्रकाशित हुआ करेगा, यद्यपि पाठको ने इसके प्रथम संकलन का जैसा स्वागत किया है उसे देखते हुए संभव है कि कुछ समय बाद हमें दो से भी अधिक संकलन निकालने पडे।

निकष (2)- का प्रयास यह होगा कि हिन्दी में, गद्य और पद्य में, जितनी दिशाओं में जितनी प्रवृत्तियों के अन्तर्गत जो भी नया, महत्वपूर्ण, सशक्त, मौलिक साहित्य लिखा जा रहा है, उसे एक साथ सकलित कर पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करता रहे।

निकर्ष (3)- दलों, साहित्यिक शिविरो आदि की सीमाओं को कृत्रिम और झूठा मानता है, केवल आन्तरिक साहित्यिक मूल्य को ही निर्णय की कसौटी मानता है। उसका विश्वास है कि प्रत्येक दल या शिविर में, जहां कहीं, जो भी उच्च स्तर का, मानवीय मूल्य पर आधारित साहित्य लिखा जा रहा है, वह सब अभिनन्दनीय है और हिन्दी की गौरवशालिनी परम्परा को आगे बढ़ा रहा है। 'निकष' ऐसे सभी साहित्य का स्वागत करता है।

निकर्ष (4)- का लेखक-परिवार यह मानता रहा है कि निम्न स्तर का दुरुचिपूर्ण या प्रचारात्मक साहित्य चाहे कुछ दिनों के लिए पाठक को आक्रांत कर ले, किन्तु अन्ततोगत्वा पाठक उच्च स्तर की कृतियों का इच्छुक रहा है, क्योंकि उसमें भी वे सारी

संभावनायें और सद्वृत्तियाँ निहित रहती हैं, जिन्हें केवल जगाना चाहता है। इसलिए ''निकष'' पाठ्क और लेखक के बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित करने के लिए यत्नशील है।

उपर्युक्त घोषणापत्र का तीसरा अनुच्छेद यह स्पष्ट कर देता है कि ''निकष'' संपादकों का स्पष्ट एव सुदृढ दृष्टिकोण था और वे साहित्य को दलीय राजनीति और गुटों के ऊपर मानते थे।

''निकषं 3-4'' में उन सभी लेखकों के नाम प्रकाशित किए गए हैं, जिन्होनें अपनी रचनाओं से उसे सहयोग दिया है। उस सूची के साथ निम्नलिखित पक्तियाँ भी है-

''निकर्ष'' अपने लेखक परिवार की विशालता पर गर्व का अनुभव करता है, और अपने अगले संकलनों में इसके अधिकाधिक विस्तार की कामना करता है।''

कृतियां भेजने का पता- ''धर्मवीर भारती, 22 हैमिल्टन रोड, इलाहाबाद दिया गया है तो व्यवस्था संबंधी पत्र व्यवहार का पता- ''हरिमोहनदास टंडन, कमला गली, रानीमंडी, इलाहाबाद।

''निकषे'' का प्रभाव इसी से स्पष्ट है कि उसकी प्रेरणा से दो अन्य साहित्य-संकलन प्रकाशित हुए (1) संकेत, सपादक-उपेन्द्रनाथ ''अश्क''- सहायक कमलेश्वर, मार्कण्डेय (2) हंस-संपादक-बालकृष्ण राव, अमृतराय। ''निकष'' के सपादन से प्राप्त अनुभवों का उपयोग भारती ने ''धर्मयुग'' मे जाकर किया और उसका कलेवर एव स्तर एकदम बदल डाला। ''धर्मयुग'' की सबसे बडी विशेषता यह है कि वह गुट निरपेक्षता की नीति अपनाता है और यही नीति ''निकष'' की भी थी।

(स) पूर्णकालिक पत्रकारिताः

टाइम्स ऑफ इंडिया संस्थान (बेनेट कालमैन एण्ड कम्पनी) की ओर से आए प्रस्ताव को स्वीकार कर डॉ0 धम्रवीर भारती ने अध्यापकी पेशे को नमस्कार किया और 1960 ई0 में ''धर्मयुग'' के संपादक होकर बम्बई चले गए। ''धर्मयुग'' को भारती ने अद्यतन एवं समय की सच्चाइयों का दर्पण बनाने में कोई कसर न उठा रखी। ''निकष'' के घोषणा पत्र

के चारों मुद्दे ही सभवत उनके मार्गदर्शक थे। प्रारम्भ में वे ''तीरमा'' के नाम से टिप्पणियाँ भी लिखा करते थे। पहले ''धर्मयुग'' में कवि–सम्मेलनी कवियों की कवितायें भडकदार चित्रों के साथ छपा करती थी। भारती ने पाठकों की रुचि का स्तर ऊँचा उठाया और उसमें वे सफल भी रहे। डॉ0 भारती से पूर्व धर्मयुग एव अन्य पत्रिकाओं में केवल सपादक का नाम दिया जाता था। डॉ0 भारती के सम्पादन में ''धर्मयुग'' ने कार्यालय के सभी सहयोगियों के नाम छापनें की परम्परा शुरू की और इसका अनुकरण प्राय सभी पत्रिकाए करने लगी है विशेषत बडे संस्थानों की पत्रिकाए।

''धर्मयुग'' में प्रायः दो कहानियां, एकाध धारावाहिक, उपन्यास, सामयिक विषयों पर परिचर्चा का लेख, कविताए, एकांकी, व्यंग्य, चुटकुले, फिल्मों से संबंधित उच्च दर्जे के लेख, बाल–साहित्य एवं राशि भविष्य आदि सामग्री प्रति सप्ताह आया करती थी। कभी–कभी नाटक भी धारावाहिक प्रकाशित किये जाते थे। शिवानी के प्राय· सभी उपन्यास ''धर्मयुग'' में ही धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुए हैं। विभिन्न राष्ट्रीय एवं सास्कृतिक पर्वो पर विशेषांक भी प्रकाशित की जाती थी। आगामी अक की सक्षिप्त रूपरेखा भी प्रस्तुत की जाती रही। केवल साहित्य ही नहीं क्रीडा सम्बन्धी नवीनतम तथ्यों की जानकारी भी ''धर्मयुग'' के माध्यम से पाठक को प्राप्त हो सकती थी। ''धर्मयुग'' में छपने का अर्थ है व्यापक प्रसार किन्तु किसी भी रचना को प्रसारित करने के पूर्व ''सपादकीय–विभाग'' उसकी पूरी छानबीन कर लेता था।

एक सच्चे पत्रकार की तरह, बंगला देश की मुक्तिवाहिनी द्वारा सचालित गुरिल्ला–युद्ध के समय, भारती गुप्त रूप से सन् 1971 ई0 में बगलादेश गए और अपने निरीक्षण के आधार पर एक रिपोर्ताज लिखा, जो ''मुक्तक्षेत्रे युद्धक्षेत्रे'' नाम से धर्मयुग में धारावाहिक रूप से छपकर बाद में पुस्तकाकार में प्रकाशित हुआ। बगला देश को साहित्यिकयात्रा द्वारा बंगला देश की मुक्ति में उनके द्वारा किए गए योगदान के लिए सन् 1972 में भारत सरकार ने उन्हें ''पद्मश्री'' का अलंकरण प्रदान कर सम्मानित किया।

डॉ0 धर्मवीर भारती जब 1960 ई0 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की प्राध्यापकी छोडकर ''धर्मयुग'' के संवादक होकर बम्बई गए तो उनके सामने बहुत बडी चुनौती थी।

उनसे पहले धर्मयुग के सपादक इलाचद्र जोशी और सत्यकाम विद्यालकार रह चुके थे। दोनों ही अपने समय के ख्यात और दिग्गज सपादक थे। भारती जी का उन दोनो से अलग कुछ करके दिखाना था। वह चाहते तो अपने साहित्यकर्म में प्रवृत्त रहते हुए ढर्रे का सपादन करते रहते। उनके नाम का काफी दबदबा था और उनकी साहित्यिक पहचान इस रूप में स्थापित हो चुकी थी कि वह जिससे भी रचनात्मक सहयोग मागते वह उन्हें मिल ही जाता। परन्तु भारती जी ने बंधे-बधाए स्वरूप और ढर्रे को तोडने का ही बीडा उठाया। उनकी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा की सूझबूझ ने धर्मयुग का एक अलग और विशिष्ट स्वरूप निर्मित किया। सपादन की प्रक्रिया में उन्होनें धर्मयुग का जो 'ब्लूप्रिंट' तैयार किया, उसकी दिशाओं और व्याप्तियों की संभावनाए अनत थी। साहित्य, कला, धर्म, सस्कृति, सगीत, राजनीति, इतिहास, विज्ञान, चित्रपट, क्रीडा जगत, बाल जगत, नारी ससार, कोई भी तो ऐसा विषय नहीं था जिसका उन्होनें धर्मयुग के पृष्ठों पर समावेश न किया हो। उन्होनें अपने अपने विषय में विशिष्ट और प्रख्यात मनीषियों को धर्मयुग में लिखने के लिए अनुप्राणित ही नहीं किया बल्कि उनको वांछित आदर और सम्मान देकर उनकी उपस्थिति को रेखाकित भी किया। चेतन मानव के परिवेश को सपूर्णता से विस्तार देने के निमित्त जितना कुछ पुरातन में ग्राह्य था उसे भारती जी ने धर्मयुग में सजोकर रखा ही, साथ ही नवीन की कल्पना और अपरिहार्यता को भी उन्होनें प्रमुखता देकर समाहित किया।

जब आज हम धर्मयुग की चर्चा करते हैं (क्योंकि वह भारती जी के व्यक्तित्व से अनन्यता से संबद्ध है) तो हमारे सामने यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि इस काम को पूर्णता की दिशा देने के लिए उन्होनें कितने मोर्चे तैयार किए। जो साहित्यिक विधाए साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में स्वीकृत थीं उनके साथ ही हाशिए पर पडी विधाओं की ओर भी उन्होनें उचित ध्यान दिया। हास्य-व्यंग्य, कार्टून और बाल साहित्य की स्तरीयता को उन्होनें एक बहुआयामी और नया स्वरूप दिया। उन्होनें वैचारिकता को भी खुली दिशायें दीं। किसी एक विचार या सिद्धांत की रुढ़िवादिता उन्होनें कभी स्वीकार नहीं की। किसी राजनीतिक मतवाद अथवा किसी वाद विशेष को उन्होनें कभी मान्यता नहीं दी। वह स्वय प्रगतिशील और समाजवादी वैचारिकता से जुडे हुए थे किंतु धर्मयुग को साहित्य, कला और सस्कृति का मंच

बनाते हुए भारती जी ने व्यापक स्तर पर रचनाकारों को एकजुट किया। यदि इलाहाबादी या परिमलीय धर्मयुग में स्थान पाते रहे तो साम्यवादी विचारधारा को समर्पित यशपाल जी और हरिशंकर परसाई भी धर्मयुग के पृष्ठों पर निरतर दिखलाई पडते थे। कार्टून जैसी विरल विधा को कला के शिखर पर पहुचाने का काम भारती जी ने ही पहली बार किया। निरतर तीस वर्षो तक धर्मयुग के अतिम पृष्ठ पर आबिद सुरती के कार्टूनों को जिस तरह सम्मानजनक स्थान मिला वह किसी चमत्कार से कम नहीं है। आज आबिद सुरती जैसे बडे कार्टूनिस्ट की पहचान 'ढब्बू जी' के रूप में इस पूरे देश में स्थापित हो चुकी है। यही स्थिति बाल साहित्य की विधा को लेकर है। हमारे बडे और स्वनामधन्य साहित्यकार बच्चों का साहित्य रचना एक हीनकर्म समझते थे पर भारती जी ने इस क्षेत्र में भी युगातर उपस्थिति कर दिया। कला की कोई भी विधा अजानी या अदेखी नहीं रही सभी को उनकी संपूर्णता में स्वीकृति प्राप्त होती रही। धर्मयुग हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं का वह स्वच्छ दर्पण था जिसमें हम आधुनिक साहित्य के स्वर्णयुग की छवि पाते हैं।

पत्रकार भारती की तुलना भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं मुंशी प्रेमचन्द्र की जा सकती है। भारतेन्दु और प्रेमचन्द्र ने अपनी बात कहने के लिए अपनी पत्रिकाएं निकाली। भारती ने भी 'नयी कविता' और "निकष" एव 'धर्मयुग' के माध्यम से अपनी बात कही, नवलेखन को प्रोत्साहित किया और प्रगतिवादी नारेबाजी एव एकांगी दृष्टि से साहित्य को मुक्त किया। इस प्रकार सहित्यिक पत्रकारिता को भारती का योगदान विशिष्ट है।

सन्दर्भ-संकेत

1 डॉ0 धर्मवीर भारती 'ठेले पर हिमालय', पृ0 177, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, स0- 1958

2 श्री ओंकार शरद से उपलब्ध जानकारी के आधार पर,

3 श्री ओंकार शरद से उपलब्ध जानकारी के आधार पर।

4 श्री ओंकार शरद के व्यक्तिगत पुस्तकालय से प्राप्त अक,

5 संगम, 3 अक्टूबर, 1948,

6 संगम, 10 अक्टूबर, 1948,

7 संगम, 10 अक्टूबर, 1948,

8 संगम, 17 अक्टूबर, 1948,

9 सगम/18 अक्टूबर, 1948

10 तदैव/31 अक्टूबर, 1948

11 तदैव।

12. संगम/31 अक्टूबर, 1948

13 तदैव/14 नवम्बर, 1948

14. तदैव

15. तदैव

16. "लेकिन एक दिन इस बेबेल पर कहर गिरेगा, घहरा कर प्रलय टूटेगा और उस दिन इसे चूर-चूर होने से कोई नहीं रोक पायेगा, लेकिन तब तक.. तो यह, सभ्यता, यह न्यूयार्क बढ़ता ही रहेगा, इंसानियत की छाती पर नासूर के गन्दे जख्म की तरह।"

17. संगम/कांग्रेस अंक, 1948

18. तदैव

19. तदैव

20. "नयी कविता" राजकमल-प्रकाशन से एक सहयोगी साहित्यिक प्रयास के रूप में प्रकाशित हो तथा उसका सम्पादन मैं करूँ यह प्रस्ताव भारती का था।" -डॉ0

जगदीश गुप्त/नयी कविता स्वरूप और समस्याए/पृ0 2, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्र0स0- 1969

21 तदैव, पृ0 2,

22 तदैव, पृ0 4,

23 ''नयी कविता'' स्वरूप और समस्याए/पृ0 11 भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्र0स0- 1969

24 अक तीन, 1956 में कुँवरनारायण का परिचय बालकृष्ण राव ने कराया है।

25 अक तीन, 1956 में ''सचयन'' में भारती की तीन कविताए, 'पूजा गीत' शीर्षक से प्रकाशित की गई है।

26 डॉ0 जगदीश गुप्त/नयी कविता स्वरूप और समस्याए/पृ0 96, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्र0स0- 1969

27 निकष 3-4, जनवरी, 1957।

28 निकष, 3-4 जनवरी, 1957।

अष्टम् अध्याय

उपसंहार : उपलब्धियाँ एवं निष्कर्ष

छायावादोत्तर हिन्दी साहित्य में डॉ0 धर्मवीर भारती की रचनात्मक प्रतिभा विलक्षण है। वे सशय, प्रीति, व्यक्ति-स्वातत्रय और वैष्णव भावना के अद्धितीय कवि थे। वे हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता के एक कद्दावर व्यक्तित्व थे। उनकी औपन्यासिक कृतियों मे 'गुनाहों का देवता' और 'सूरज का सातवॉ घोडा' शैली, शिल्प तथा कथ्य की दृष्टि से अनूठे हैं। उनका आलोचनात्मक लेखन भी स्पृहणीय है। ''सिद्धसाहित्य'', ''मानव मूल्य और साहित्य'', ''प्रगतिवाद एक समीक्षा'' जैसी कृतियॉ उनके विशिष्ट आलोचनात्मक प्रदेय हैं। विधा वैविध्य की दृष्टि से उनका साहित्य निश्चय ही समृद्ध है। उन्होनें सस्मरण विधा को छुआ तो उसको चमका दिया। इसी तरह उनके कहानी-सग्रह 'बद गली का आखिरी मकान-, 'चॉद और टूटे हुए लोग' क्रोश-शिला का महत्व रखते हैं। उनके द्वारा लिखित नाटक, रंगमचीय एकाकी और रेडियों एकांकी भी कम रोचक नहीं है। उनके रिपोर्ताज, इंटरव्यू, डायरी के पन्ने तथा ''ठेले पर हिमालय'', जैसे यात्रा-संस्मरण भी पाठकों द्वारा समादृत है। डॉ0 कृष्णदत्त पालीवाल ने डॉ0 धर्मवीर भारती के रचना-कर्म का मूल्यांकन करते हुए लिखा है ''स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता में डॉ0 धर्मवीर भारती की सृजनात्मकता जहाँ अत्यन्त वैयक्तिक और विशिष्ट जान पडती है, वहीं एक अत्यन्त मार्मिक ढंग से निस्सग और निवैयक्तिक भी। यह सृजन आत्मीयता, आशक्ति और गांभीर्य का एक ऐसा यौगिक घोल है जिसमें अखण्ड अपनावे का आश्वासन है और मोहभग की स्थितियों का हाहाकार भी। जीवन के रस-रंग, व्यंग्य विनोद, भोक्ता और साक्षी भाव का एक ऐसा खुलापन इस सृजनात्मकता में है कि एकालय के कठघरों को तोड़कर एक संवाद स्थापित करने में कवि को सफलता मिली है।'' अत· डॉ0 भारती के रचना-संसार में हिन्दी की नई कविता ने अपनी कुछ सर्वथा नूतन छवियों और भंगिमाओं को उद्‌घाटित होते देखा है। काव्यसंकलन के रूप में इनकी कविताएं सर्वप्रथम दूसरा सप्तक (1951 ई0) में प्रकाशित हुई। इनमें से ''थके हुए कलाकार'', ''गुनाह का गीत'', ''उदास तुम'' और ''सुभाष की मृत्यु पर'' कविताओं को प्रथम स्वतंत्र काव्य संग्रह ''ठंडा लोहा'' में सग्रहीत किया गया।

डॉ0 धर्मवीर भारती का आविर्भाव कविता के क्षेत्र में एक रोमांटिक कवि के रूप में परिलक्षित होता है। डॉ0 रघुवंश ने लिखा है ''भारती मूलत· रोमांटिक मिजाज के कवि हैं। नई कविता आंदोलन के साथ संबद्ध रहकर भी उनका सारा विकास एक सक्षम एक सक्षम

रोमांटिक कवि के रूप मे देखा जा सकता है।'' 'दूसरा-सप्तक' मे डॉ0 भारती अपने समकालीन कवियों से सर्वाधिक रोमाटिक रहे। इस काव्य संकलन में भारती के व्यक्तित्व के अनेकों आयाम प्रतिबिबित होते हैं। आस्था-अनास्था का सघर्ष, आस्था के प्रति झुकाव, रोमानियत का आकर्षण, मासलता एव सजीवता का वेहिचक अकन, प्रयोग की क्षमता जैसी प्रकृतियाँ इस संग्रह की ग्यारह कविताओं में प्राप्त होती है। मध्यवर्गीय, युवा-मानस की कुठाओं, स्वप्नभंग के दारूण-अनुभवो एव हताशाओं के साथ-साथ ''ठंडा लोहा'' में भारती का कवि पर्याप्त मात्रा में समष्टिगत समस्याओं से भी अपने आपको जोडता हुआ दिखाई देता है। भारती ने इस संग्रह की कविताओं में अपने युग की प्रचलित सभी शैलियों एव विचार-धाराओं को आत्मसात किया है। अलकार, भाषा बिम्ब-विधान आदि की दृष्टि से भी ''ठण्डा लोहा'' संग्रह भारती की पूर्ववर्ती कविताओं का अगला चरण है। ''सात गीत वर्ष'' काव्य संग्रह के माध्यम से भारती फिर एक बार इस तथ्य की स्थापना का प्रयत्न करते हैं कि प्रयोगात्मकता का मूल्य अपनी सार्थकता को बनाये रखने में है और प्रयोग की सार्थकता वांछित भाव का वहन करने में है। इस सग्रह की 51 कविताएं इस बात की प्रमाण है कि इन कविताओं के रचनाकाल में कवि को अनेक मानसिक संघर्षो से गुजरना पडा है। डॉ0 भारती के ''अंधायुग'' में नाटक और काव्य दोनों का चरम विकास देखने को मिलता है। इस कृति का नायक ''अश्वत्थामा'' भारती की हिन्दी साहित्य को बहुमूल्य देन है, इस बात को नकारा नहीं जा सकता। ''कनुप्रिया'' पुरूष और स्त्री के मानवीय संबंध सूत्रों को रूपायित करने में पूर्णत सफल है। परम्परा का पालन करते हुए राधा के व्यक्तित्व को अपने परिवेश के अनुसार ढाल देने का, तन्मयता और दायित्व बोध की ''कनुप्रिया'' एक महत्वपूर्ण उदाहरण है, प्रमाण है। व्यष्टि और समष्टि के स्तर पर जितने भी संषर्ष और विरोध झेलने होते हैं, उन सबको भारती का कवि झेलता गया है, और अंत तक वह आस्था एवं मानव-मूल्यों का पक्षधर रहा, इस बात का प्रमाण उनका समूचा काव्य-जगत् है।

उपन्यास कला के क्षेत्र में भी डॉ0 भारती सफल रहे हैं। उनके दोनों उपन्यास हिन्दी उपन्यास साहित्य में अपना स्वतंत्र स्थान रखते हैं। लोकप्रियता की दृष्टि से 'गुनाहों का

देवता' का महत्व अक्षुण्य है, तो प्रयोग की दृष्टि से ''सूरज का सातवा घोडा'' का महत्व है। भारती के उपन्यासो की अपनी सीमाये भी हैं। सबसे पहली सीमा यह है कि उपन्यासकार-भारती केवल मध्यवर्गीय समाज के पात्रों को ही अपने उपन्यासों में स्थान देते हैं। 'सती' जैसे पात्र उनके द्वारा बहुत कम निर्मित हुए हैं। फिर भी हिन्दी के रोमांटिक उपन्यासों की परम्परा मे 'गुनाहो का देवता' का स्थान महत्वपूर्ण है और वुद्धिप्रधान उपन्यासों में 'सूरज का सातवॉ घोडा' का। अत डॉ0 भारती ने इन दोनों उपन्यासों को लिखकर परम्परा तथा नूतन दृष्टि का सम्यक् बोध कराया है। 'गुनाहों का देवता' (1949) में मध्यवर्गीय जीवन की यथार्थता पारिवारिक सत्रास, अल्हड भावुकता किशोर मन की आवेगात्मक तीव्रता तथा कालेज जीवन की रग-बिरंगी कथा है तो जीवन के प्रति अडिग आस्था ही 'सूरज का सातवाँ घोडा' है।

कहानीकार के रूप में 'चॉद और टूटे हुए लोग' (1955 ई0) तथा 'बंद गली का आखिरी मकान' (1969 ई0) कहानी-संग्रह विशेष उल्लेखनीय है। प्रथम सग्रह 'चाँद और टूटे हुए लोग' पर रोमानी भावुकता प्रसाद और शरद्चन्द आदि का प्रभाव है किन्तु 'बद गली का आखिरी मकान' की कहानियॉ एकदम मौलिक और नई है। उन्हें आधुनिक संवेदना तथा शिल्प के आधार पर मोहन राकेश, कमलेश्वर और राजेन्द्र यादव को कहानियों के समक्ष रखा जा सकता है। कम लिखना लेकिन अच्छा लिखना भारती की जीवंत विशिष्टता है। उनकी 'गुल की बन्नो' चरित्र-चित्रण मानवीय संवेदना एवं यथार्थवाद की दृष्टि से हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियों में से एक मानी जा सकती है। यह कहानी चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' तथा प्रेमचन्द्र की 'कफन' कहानी की तरह एक क्लासिक कथाकृति है।

नाटककार के रूप में भारती का महत्व अप्रतिम है। 'अधायुग' के जितने प्रदर्शन हुए हैं उतने किसी भी हिन्दी नाटक के नहीं हुए हैं। महाभारत के युद्ध उपरांत की परिस्थितियों के संदर्भ से आज के विश्व के परिदृश्य को जोडने में भारती पूर्णतः सफल रहे हैं। 'नदी प्यासी थी' की रोमानियत मोहन राकेश के 'आपाढ का एक दिन' में भी मिलती है। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि भारती ने और कुछ न लिखकर केवल नाटक लिखे होते तो भी साहित्य में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहता। भारत सरकार ने सन् 1967 में उन्हें

संगीत नाट्क अकादमी का सदस्य मनोनीत करके उनकी नाट्य-कला को सम्मानित किया।

हिन्दी साहित्य के एक निष्ठावान अध्येता के रूप मे डी0 फिल् उपाधि हेतु किया गया भारती का शोध-कार्य 'सिद्ध साहित्य' के रूप में उपलब्ध है। यह कार्य गम्भीर अध्ययन से सम्पन्न हुआ है तथा आदिकालीन सिद्धों की वाणी की महत्ता को समझने में सहायक है। शोधकर्ताओं के लिए यह ग्रथ महत्वपूर्ण है। भारती जैसा कवि और ललित निबन्धकार इस नीरस और गुरुतर कार्य को कैसे सम्पन्न कर सका, इस पर आश्चर्य होता है। इस ग्रथ के द्वारा वे राहुल-साकृत्यायन, डॉ0 काशीप्रसाद जायसवाल एवं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की परम्परा में आ जाते हैं। समीक्षा ग्रथों में भारती ने साहित्यकार की स्वतंत्रता एव मानव मूल्यों की प्रतिष्ठापना पर अधिक बल दिया है। साहित्य को प्रचार का साधन बनाना भी उन्हें स्वीकार नहीं है। इसी आधार पर उन्होनें प्रगतिवाद का विरोध किया है। किन्तु जन-सामान्य की महत्ता को वे स्वीकार करते हैं। हिन्दी के अग्रणी ललित निबन्ध लेखकों में भारती की भी गणना होती है। 'ठेले पर हिमालय', 'पश्यंती' तथा 'कहनी-अनकहनी' के निबन्ध इसका प्रमाण है। इन ललित निबन्धों की कला के बीज 'संगम' (साप्ताहिक) की पुरानी फाइलों में मिलते हैं। उनमें जो भी लेख हैं, वे चाहे जिस विषय पर लिखे गए हों, ललित निबन्धों की धुन और लय से युक्त हैं। डायरी, शब्दचित्र आत्म-व्यंग्य सभी विधाओं में भारती ने प्रयोग किए हैं। रिपोतार्ज-लेखन में भी वे सफल रहे हैं। बंगला देश की यात्रा के दौरान उस देश की मुक्ति वाहिनी की गतिविधियों का जो आंखों देखा विवरण भारती ने धर्मयुग में लिखा था वह सामान्य अखबारी लेखन के स्तर का न होकर ललित कृति है, जिसमें भारती के साहित्यिक व्यक्तित्व के सभी पूंजीभूत एवं संग्रहित गुण दिखाई देते हैं। बाद में उन्होनें चीन-यात्रा पर जो रिपोतार्ज लिखा, वह भी महत्वपूर्ण है। 'अभ्युदय', 'संगम', 'नयी कविता' और 'निकष' की पत्रकारिता के उपरान्त डॉ0 भारती ने 'धर्मयुग' की पत्रकारिता को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया। पत्रकारिता में साहित्य का ऐसा मिलाप मुश्किल से मिलेगा। पत्रकार भारती की तुलना भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं जयशंकर प्रसाद से की जा सकती है। भारतेन्दु और प्रसाद ने अपनी बात कहने के लिए अपनी पत्रिकाएं निकाली। भारती ने भी 'नयी कविता' और 'निकष' के माध्यम से

अपनी बात कहीं, नवलेखन को प्रोत्साहित किया, प्रगतिवादी नारेबाजी एव एकांगी दृष्टि से साहित्य को मुक्त किया। यह सच है कि भारतेन्दु और भारती के युग मे बहुत अन्तर है किन्तु नेतृत्व प्रदान करने की क्षमता को डॉ0 भारती ने अपने इलाहावाद प्रवास के दौरान सिद्ध करके दिखा दिया था। इस प्रकार साहित्यिक पत्रकारिता को भारती का योगदान विशिष्ट है।

इस प्रकार डॉ0 धर्मवीर भारती की लेखकीय प्रतिभा ने साहित्य की प्राय सभी आधुनिक विधाओं को सम्पन्न किया है। उनकी कृतियों में केवल शिल्प और भाषा की प्रयोगशील नवीनता ही नहीं है, चिंतन और दृष्टि भी है। आम आदमी के नाम पर समांतर आंदोलन चलाकर प्रख्यात होने के इच्छुक छुटभैये लेखकों के गिरोह बनाकर प्रगतिशीलता का झण्डा फहराने के बदले डॉ0 भारती ने आम आदमी के महत्व को स्वीकार करते हुए साहित्य को राजनीतिक निर्देश देने वाली सकुचित प्रगतिशीलता का खडन किया। उन्होनें राजनीति के हाथों कत्ल होते हुए मानव मूल्यों को साहित्य में संजोने पर बल दिया है। व्यक्ति के दैनिक जीवन के सुख-दुख, हर्ष-उल्लास, प्रणय-विरह सदैव ही साहित्य के विषय रहेंगे। इनका चित्रण ही साहित्य है यही सूत्र भारती के साहित्य को समझने में सहायक है।

भारती के जीवन और साहित्य में किसी प्रकार की विसंगति नहीं है। वे प्रणय की तीन घटनाओं से होकर गुजरे हैं। सौन्दर्य और श्रृगार-भाव उन्हें प्रिय है उनका झुकाव शरत् प्रसाद एवं अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों की ओर रहा है। आस्कर वाइल्ड की कहानियों का उन्होनें अनुवाद भी किया है। वाइल्ड की भाषा शैली को अपने ढग से उन्होनें अपनाया भी है। उर्दू शब्दों के प्रति उनका गहरा लगाव है। जिसने जीवन में प्रणय और रोमान्स का भरपूर अनुभव किया हो वही ''कनुप्रिया'' जैसी कृति लिख सकता है। इसके बावजूद युगबोध के प्रति वे सजग हैं जिसका ज्वलंत उदाहरण है 'अन्धायुग'। परम्परावादी हिन्दू समाज में प्रेम की परिणति 'गुनाहों का देवता' जैसी ही होती है। यह भी सत्य है किन्तु कटु सत्य को हमारी आधुनिकतावादी दृष्टि आसानी से पचा नहीं पाती है। इसलिए हम उसे रोमानी कृति कह कर टाल देते हैं, लेकिन जीवन हमारी है चन्दन और सुधा जैसा ही। 'सूरज का सांतवा घोड़ा' की कथाओं में इसी मध्यवर्गीय पाखण्ड पर प्रहार किया गया है।

भारती में परम्परा और आधुनिकता का गहरा समन्वय मिलता हे; इसीलिए ''कनुप्रिया'' की राधा सूर की राधा न होकर ''आधुनिक राधा'' हे और अन्धा युग में कृष्ण के बदले अश्वत्थामा का चरित्र केन्द्रीय बन गया है। नाटक में उन्होने एक नयी लीक डाली, जिसका अनुकरण बाद मे मोहन राकेश ने अपने प्रथम एव द्वितीय नाटक मे किया। 'गुनाहों का देवता' की सफलता से प्रभावित होकर कमलेश्वर ने इस प्रकार की कई कहानिया और 'डाक बंगला' और 'आगामी अतीत' जैसे लोकप्रिय उपन्यास लिखें। 'सूरज का सातवॉ घोडा' के शिल्प-प्रयोग से प्रभावित होकर बाद में और भी कृतियॉ आयी। भारती ने अपने समकालीन अनेकों लेखकों को प्रेरणा दी और बहुतों को प्रकाश में लाने में मदद की।

कुल मिलाकर, कहा जा सकता है कि डॉ0 धर्मवीर भारती की रचना-यात्रा जीवन और यथार्थ की सुन्दरतम् अभिव्यक्ति है। धर्मयुग पत्रिका के प्रधान संपादक के रूप में समूचे हिन्दी जगत में उनकी एक विशेष प्रसिद्धि रही है। हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं में डॉ0 भारती का लेखन एव चितन स्वत में प्रतिमान है। उन्होनें कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, पत्रकारिता तथा आलोचना के साथ ही अनेक नूतन विधाओं को समृद्ध किया। उनके व्यक्तित्व एव कृतित्व में गगा-यमुना का मीठापन और समुदर का खारापन दोनों ही विद्यमान था। वे एक सहृदय रचनाकार एवं अनुशासनप्रिय संपादक थे। उनके लेखन की अनगिनत सीपियाँ छटपटा रही हैं, भारती हमेशा के लिए मौन हो चुके हैं-

''लहरों के नीले अवगुण्ठन में
जहाँ सिंदूरी गुलाब जैसा सूरज
खिलता था
वहाँ सैकड़ों निष्फल सीपियाँ
छटपटा रही हैं
और तुम मौन हो।''[3]

सन्दर्भ–संकेत

1 डॉ0 कृष्ण दत्त पालीवाल सारिका मे लेख, दिसम्बर 1986, वर्ष–26, अंक–416, पृ0 41,

2 डॉ0 रघुवंश भारती का काव्य, पृ0 3, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लि0, नई दिल्ली, प्र0स0– 1980

3 डॉ0 धर्मवीर भारती कनुप्रिया, पृ0 73, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली–1, सप्तम् स0– 1981

પારેશિ ૯

संदर्भ-ग्रन्थों की सूची एवं पत्र-पत्रिकाएँ

1	अज्ञेय	हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य, राधकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1967 ई0।
		तारसप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, कलकत्ता, प्रथम स0 1943, द्वितीय स0 1966।
		दूसरा सप्तक, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र0सं0 1951
		तीसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, कलकत्ता, दिल्ली, वाराणसी, द्वितीय सं0 1961 ई0।
		हरी घास पर क्षण भर, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली।
2	आचार्य नन्दपुलारे वाजपेयी	नई कविता, दि मैकमिलन कंपनी आफ इडिया लि0, प्र0सं0 1976 ई0।
		नया साहित्य . नये प्रश्न, विद्यामंदिर, बनारस-1, द्वितीयावृत्ति, 1959 ई0।
		आधुनिक साहित्य, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, द्वि0सं0 संवत् 2013 वि0।
3.	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	दिल्ली साहित्य का इतिहास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा; आठवाँ संस्करण;
4.	डॉ0 अरविन्द	सप्तक कथा, मैकमिलन इंडिया प्रेस, मद्रास, प्र0स0 1976 ई0।
5.	डॉ0 अश्विनी पाराशर	हिन्दी नई कविता : मिथक काव्य, दीर्घा साहित्य संस्थान, 25, बैग्लो रोड, दिल्ली;
6	डॉ0 इन्द्रनाथ मदान	आधुनिक कविता का मूल्यांकन हिन्दी भवन, जालंधर और इलाहाबाद, प्र0सं0, मार्च 1962।
		हिन्दी आलोचना : पहचान और परख, लिपि प्रकाशन दिल्ली, प्र0सं0 1974।
7.	डॉ0 उमाकान्त गुप्त	नयी कविता के प्रबन्ध काव्य शिल्प और जीवन दर्शन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र0सं0 1985।
8.	ऊषारानी	नई कविता पुनर्मूल्यांकन, रंजना प्रकाशन मंदिर, सुई कटरा, आगरा, प्र0सं0 1980।

9	डॉ0 कमला प्रसाद पाडेय	छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, रचना प्रकाशन, खुलदावाद, इलाहाबाद-1, प्र0स0 1972।
10	डॉ0 केदार नाथ सिह	आधुनिक हिन्दी कविता में विम्व विधान, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली-6, प्र0स0 1971।
		कल्पना और छायावाद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र0सं0 1957 ई0।
11	प्रो0 केसरी कुमार	साहित्य के नये धरातल शाखाए और दिशाए, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना, प्र0स0 1980।
		प्रसाद और उनके नाटक, प्रकाशक-सुन्दर लाल जैन प्रो0 मोती लाल बनारसी दास, बॉकीपुर, पटना द्वि0सं0 1950
12	कैलाश बाजपेयी	आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, आत्मा एण्ड संस, दिल्ली, प्र0सं0 1963
13	डॉ0 कुमार विमल	आधुनिक हिन्दी काव्य, अर्चना प्रकाशन, आरा (बिहार), प्र0सं0 1964
		छायावाद का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6, प्र0सं0 1970।
		अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, पराग प्रकाशन, पटना, प्र0सं0 1965।
14.	डॉ0 कृष्णलाल	आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, हिन्दी परिषद, प्रकाशन विश्वविद्यालय, प्रयाग, चतुर्थ सं0 1965।
		तार सप्तक के कवि काव्य-शिल्प के मान, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र0सं0 1979
15.	डॉ0 गणेश खरे	आधुनिक काव्य की प्रवृत्तियाँ : एक पुनर्मूल्यांकन, पुस्तक संस्थान, कानपुर, प्र0स0 1976।
16.	डॉ0 गुलाबराय	काव्य के रूप, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, चतुर्थ सं0 1958, सिद्धान्त और अध्ययन, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, पांचवा सं0।
17.	डॉ0 गोविन्द रजनीश	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता, मंगल प्रकाशन, जयपुर-1, प्र0सं0 1976

18	डॉ0 चन्द्रा सदायत	नयी कविता की काव्यानुभूति, धरती प्रकाशन, गंगाशहर, 1976
19	डॉ0 जगदीश गुप्त	नयी कविता स्वरूप और समस्याए, भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी-5, प्र0स0 1969
20	डॉ0 दशरथ ओझा	समीक्षाशास्त्र, राजपाल एड संस, दिल्ली, द्वि0सं0 1957
21	डॉ0 दिवाकर	प्रगतिवादोत्तर कविताए और मानववाद, दीपम् प्रकाशन, नवादा (बिहार), प्र0सं0 1980
22	डॉ0 देवराज	आधुनिक समीक्षा, राजपाल एड संस, दिल्ली-6, 1954 छायावाद का पतन, वाणी मदिर प्रेस, छपरा, 1948
23.	डॉ0 धर्मवीर भारती	सिद्ध साहित्य, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि0स0 1955
24.	डॉ0 धर्मवीर भारती	मानवमूल्य और साहित्य-भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र0सं0 1960
25	डॉ0 धर्मवीर भारती	प्रगतिवाद एक समीक्षा - साहित्य भवन लि0 प्रयाग, प्र0सं0 1949
26	डॉ0 धर्मवीर भारती	अधायुग - किताब महल, इलाहाबाद, सं0-1983 ई0
27	डॉ0 धर्मवीर भारती	ठंडा लोहा - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, द्वि0 सं0 - 1970
28.	डॉ0 धर्मवीर भारती	सात गीत वर्ष - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र0सं0 -1959
29.	डॉ0 धर्मवीर भारती	कनुप्रिया- भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली-1, सप्तम सं0- 1981
30.	डॉ0 धर्मवीर भारती	गुनाहों का देवता - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 15वां सं0- 1977
31.	डॉ0 धर्मवीर भारती	सूरज का सातवाँ घोड़ा - साहित्य भवन लि0, इलाहाबाद; द्वितीय सं0- 1955 ई0
32.	डॉ0 धर्मवीर भारती	चॉद और टूटे हुए लोग - किताब महल, इलाहाबाद; सं0- 1955 ई0
33.	डॉ0 धर्मवीर भारती	बंद गली का आखिरी मकान - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली; सं0 1969

34	डॉ0 धर्मवीर भारती	सपना अभी भी - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, स0- 1993 ई0
35	डॉ0 धर्मवीर भारती ग्रन्थावली	(सपा0) डॉ0 चन्द्र कात वादिबडेकर - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र0स0- 1998
36	नकेन	नकेन-2, परिजात प्रकाशन, पटना-1, प्र0स0 1981
37.	डॉ0 नगेन्द्र	आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियॉ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, द्वि0स0 1962
38	डॉ0 नगेन्द्र	आस्था के चरण, नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली, प्र0सं0 1969
39	डॉ0 नगेन्द्र	काव्य में उदात्त तत्व, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 1958
40.	डॉ0 नगेन्द्र	कामायनी के अध्ययन की समस्याए, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-6, सप्तीय स0, 1970
41	डॉ0 नगेन्द्र	विचार और अनुभूति, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, शरद पूर्णिमा, 1951
42	सं0 डॉ0 नगेन्द्र	हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (षष्ठ भाग) नागरी प्रचारणी सभा, काशी, 2015 वि0
43.	सं0 डॉ0 नगेन्द्र	भारतीय साहित्य संस्कृति एवं कला, प्रकाशक- एस0 चन्द्र एंड कम्पनी प्रा0 लि0, दिल्ली, प्रथम सं0 1972
44.	डॉ0 नरेन्द्र मोहन	आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रस्तुत विधान, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-6, प्र0सं0 1972
45.	डॉ0 नरेन्द्र देव वर्मा	प्रयोगवाद, अनुसंधान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर, प्र0सं0 1964
46.	डॉ0 नरेन्द्र देव वर्मा	नई कविता . सिद्धान्त और सज्जन, साथी प्रकाशन, सागर, 1968
47.	डॉ0 नरेन्द्र देव वर्मा	हिन्दी स्वच्छन्दतावाद : पुनर्मूल्यांकन, साथी प्रकाशन, सागर 1968
48.	डॉ0 नामवर सिंह	आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1, 1962

49	डॉ0 नामवर सिह	इतिहास और आलोचना, साहित्य प्रकाशन, मिण्टो रोड, इलाहाबाद, 1962
50	डॉ0 नामवर सिह	छायावाद, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6, द्वि0सं0
51	डॉ0 नामवर सिह	कविता के नये प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6, प्र0सं0 1968
52	डॉ0 नामवर सिह	वाद-विवाद सवाद, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1989
53	प्रकाश चन्द गुप्त	नया हिन्दी साहित्य एक भूमिका, सरस्वती प्रेस, बनारस, 1953
54.	प्रकाश चन्द गुप्त	आज का हिन्दी साहित्य, नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली-6, प्र0सं0 1966
55	डॉ0 प्रेमशकर	सृजन और समीक्षा, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, प्र0सं0 1987
56	पुष्पा भारती	धर्मवीर भारती की साहित्य साधना (संपा0) भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0 2001
57	डॉ0 फूल बिहारी शर्मा	हिन्दी की स्वच्छ समीक्षा, ग्रन्थायन प्रकाशन, अलीगढ, 1982
58.	डॉ0 बच्चन सिंह	आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1, प्र0सं0 1978
59.	डॉ0 बलभद्र तिवारी	आधुनिक साहित्य की व्यक्तिवादी भूमिका, नन्द किशोर एण्ड संस, चौक, वाराणसी-1, प्र0सं0 1962
60.	डॉ0 रघुवंश	भारती का काव्य, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लि0, नई दिल्ली, प्र0सं0 1980
61.	डॉ0 रघुवंश	साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्र0सं0 1983
62	डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी	हिन्दी साहित्य और संवेदन का विकास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र0सं0 1986 ई0
63	डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी	नयी कवितायें · एक साक्ष्य- लोक भारती प्रकाशन, प्र0सं0 1976

64	डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी	प्रसाद, निराला, अज्ञेय- लोक भारती प्रकाशन, प्र0सं0 1989
65	डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी	साहित्य के नये दायित्व- लोक भारती प्रकाशन, प्र0स0,
66	डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी	कविता का पक्ष- लोक भारती प्रकाशन, प्र0स0,
67	डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी	आधुनिक कविता यात्रा- लोक भारती प्रकाशन, प्र0सं0
68	डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी	तार सप्तक से गद्य कविता- लोक भारती प्रकाशन, प्र0स0 1997
69	डॉ0 रवीन्द्र कुमार	समकालीन हिन्दी कविता, राजेश प्रकाशन, दिल्ली-51, प्र0सं0 1972
70.	डॉ0 रवीन्द्र कुमार	हिन्दी के आधुनिक कवि, भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली, प्र0सं0 1964
71.	डॉ0 रवीन्द्र सहाय शर्मा	पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव, विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर 1960
72	डॉ0 राजेन्द्र मिश्र	आधुनिक हिन्दी काव्य, ग्रन्थम, फरवरी, 19, कानपुर
73.	डॉ0 रामजी तिवारी	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी समीक्षा में काव्य मूल्य, अतुल प्रकाशन, कानपुर, प्र0सं0, 1980
74.	डॉ0 रामदरश मिश्र	हिन्दी समीक्षा, स्वरूप और सन्दर्भ, मैकमिलन, हिन्दी, प्र0सं0 1974
75.	डॉ0 रामधारी सिंह 'दिनकर'	काव्य की भूमिका, उदयाचल, पटना-4, प्र0स0 1958
76.	डॉ0 रामधारी सिंह 'दिनकर'	शुद्ध कविता की खोज, उदयाचल, पटना-4, प्र0सं0 1966
77.	डॉ0 रामविलास शर्मा	संस्कृति और साहित्य, किताब महल, इलाहाबाद, 1989
78	डॉ0 रामेश्वरलाल खंडेलवाल	आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौंदर्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1958
79.	डॉ0 रामेश्वरलाल खंडेलवाल	समीक्षा के वातायन, नटराज पब्लिशिंग हाउस, होली मुहल्ला, करनाल, प्र0सं0, 1983
80.	सं0 डॉ0 रामेश्वरलाल खंडेलवाल	हिन्दी आलोचना के आधार-स्तंभ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1966

81 ललित शुक्ल — नया काव्य . नये मूल्य, दि मैकमिलन क0 आफ इंडिया लि0, द्वि0स0 1979

82 डॉ0 लक्ष्मणदत्त गौतम — धर्मवीर भारती, कुमार प्रकाशन, 20 5 मोती नगर, नई दिल्ली-15, प्र0स0 जुलाई 1974

83 डॉ0 विजय द्विवेदी — नयी कविता प्रेरणा एव प्रयोजन, प्रगति प्रकाशन, आगरा, प्र0स0 1978

84 विश्वम्भर 'मानव' — आधुनिक कवि, लोक भारती प्रकाशन, इलाहावाद-1, द्वि0 परिपवर्द्धित सं0 1965

85 विश्वम्भर 'मानव' — नयी कविता . नये कवि, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1, जनवरी, 1968

86. श्यामसुन्दर दास — साहित्यालोचन, इण्डियन प्रेस प्रा0 लि0, इलाहाबाद, तेरहवीं आवृत्ति, सं0 2016

87 शिवदान सिंह चौहान — साहित्यानुशीलन, आत्माराम एड संस, दिल्ली-6, 1955

88. शिवदान सिंह चौहान — आलोचना के सिद्धान्त, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1960

89. डॉ0 शिव प्रसाद सिंह — आधुनिक परिवेश और नवलेखन, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1970

90 डॉ0 शेरजंग गर्ग — स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य, साहित्य भारती, दिल्ली, प्र0सं0 1973

91. समीक्षा ठाकुर — संकलन संपादन : समीक्षा ठाकुर, कहना न होगा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र0सं0 1994

92 डॉ0 सच्चिदानन्द तिवारी — आधुनिक हिन्दी कविता में गीति तत्व, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1968

93 डॉ0 संतोष कुमार तिवारी — नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर, जवाहन पुस्तकालय, मथुरा, प्र0सं0 1980

94. सिद्धेश्वर प्रसाद — छायावादोत्तर काव्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1966

95. सुधीश पचौरी — नयी कविता का वैचारिक आधारन, राधकृष्ण प्रकाशन प्रा0 लि0, नयी दिल्ली, प्र0सं0 1987

96.	सुमित्रानन्दन पत	छायावाद पुनर्मूल्याकन, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र0सं0 1965
97	सुमित्रानन्दन पत	आधुनिक कवि, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सातवा संस्करण
98	सुमित्रानन्दन पंत	अणिमा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय संस्करण सं0 2020 वि0
99	डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त	आधुनिक हिन्दी कवियो के काव्य सिद्धांत, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-6, प्र0सं0 1960
100	डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त	काव्यानुशीलन (हिन्दी के प्रतिनिधि काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन) प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता-फव्वारा, दिल्ली-6, प्रथम आवृत्ति, 1956
101	सुरेश चन्द्र सहल	नयी कविता और उसका मूल्यांकन, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, प्र0सं0 1979
102.	हरिवंश राय बच्चन डॉ0 नगेन्द्र और भारत भूषण अग्रवाल	समसामयिक हिन्दी साहित्य, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली-1
103.	डॉ0 हरिचरण शर्मा	नये प्रतिनिधि कवि, पचशील प्रकाशन, जयपुर, प्र0सं0 1970
104.	डॉ0 हुकुमचन्द राजपाल	धर्मवीर भारती साहित्य के विविध आयाम, वि0भू0 प्रकाशन, साहिबाबाद, प्र0सं0, 26 जनवरी, 1980
105	डॉ0 हरिवंश पाण्डेय	धर्मवीर भारती : चिंतन और अभिव्यक्ति; अतुल प्रकाशन, कानपुर, सं0 1991
106.	डॉ0 त्रिभुवन सिंह	आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्दधारा, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-1, द्वि0सं0, 1961

हिन्दी कोश

1	सं० कालिका प्रसाद	वृहत् हिन्दी कोश, ज्ञानमण्डल लि०, वाराणसी, तृतीय संस्करण।
2	सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा	हिन्दी–साहित्य कोश, भाग–1 (पारिभाषिक शब्दावली), ज्ञान मण्डल लि०, वाराणसी, द्वितीय संस्करण।
3	सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा	हिन्दी साहित्य कोश, भाग–2 (नामवाची शब्दावली), ज्ञानमण्डल लि०, वाराणसी, प्रथम सस्करण
4	सं० डॉ० नगेन्द्र	मानविकी पारिभाषिक–कोश (साहित्य खण्ड), राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, दिल्ली 1965
5	डॉ० हरदेव बाहरी	वृहत् अंग्रेजी–हिन्दी कोश, भाग–1,2, ज्ञानमण्डल लि०, वाराणसी, 1962

पत्र–पत्रिकाएं

1.	अनुशीलन	हिन्दी परिषद–1, प्रयाग विश्वविद्यालय
2	आलोचना	राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, नई दिल्ली
3.	अवन्तिका	काव्यालोचनाक, अंक–1, जनवरी 1959 ई०, पटना
4	अभिप्राय	सपा० डॉ० राजेन्द्र कुमार, इलाहाबाद
5	अपरंपरा–1	त्रैमासिक साहित्य संकलन, 1958 ई० पटना
6	ज्योत्सना,	सं० शिवेन्द्र नारायण, पटना
7.	दस्तावेज	सं० डॉ० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, बेतिया हाता, गोरखपुर।
8.	दृष्टिकोण	मई, 1952, पटना
9.	धर्मयुग	सं० डॉ० धर्मवीर भारती, बम्बई
10.	नई धारा	सं० उदयराज सिंह, जून, 1970, पटना
11.	पाटल	अक्टूबर 1952, जनवरी, 1953, फरवरी 1953, अप्रैल 1953, मई 1953, जून एवं जुलाई 1953, पटना

12	पूर्वग्रह	अशोक बाजपेयी, भारत भवन, भोपाल
13	सारिका	स0 अवधनारायण मुदगल, वर्ष 26, अक 416, दिसम्बर 1986, नयी दिल्ली।
14	साहित्य अमृत डॉ0 विद्यानिवास मिश्र	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
15	सम्मेलन पत्रिका	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
16	साक्षात्कार	भोपाल
17	हिन्दुस्तानी पत्रिका	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद